CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१०·१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

# हमारा सांस्कृतिक साहित्य

## प्रथम भाग

## ( प्राचीन और मध्यकालीन )

[ संस्कृत, पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं के साहित्यों का
संक्षिप्त आलोचनात्मक इतिहास ]

लेखक

प्रो० जगन्नाथराय शर्मा, एम० ए०

पटना विश्वविद्यालय

प्रकाशक

न्थ माला - कार्यालय, पटना - ४

( सं० २०१० )

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मूल्य ३॥)

ग्रन्थमाला-कार्यालय, बाँकीपुर, पटना की ओर से देवकुमार मिश्र द्वारा प्रकाशित
और उन्हीं के द्वारा हिन्दुस्तानी प्रेस, बाँकीपुर, पटना में मुद्रित।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

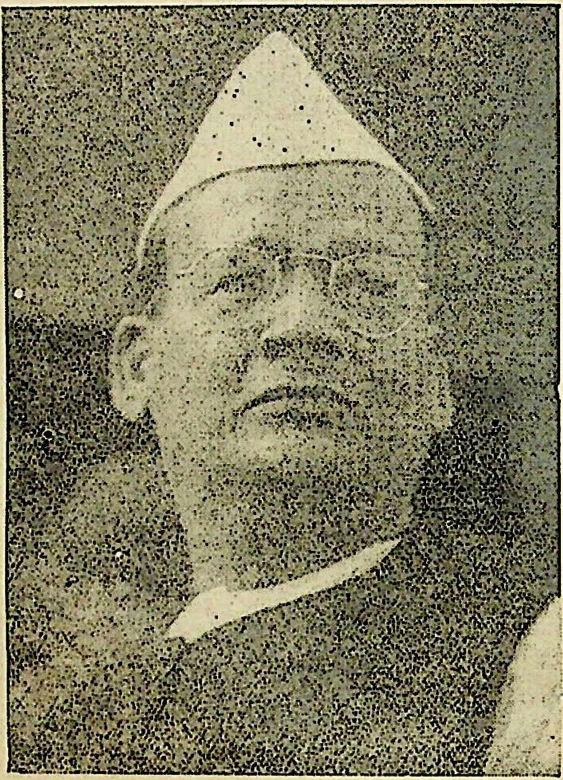

माननीय डा० श्रीकृष्ण सिंह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्वत्ता, सच्चरित्रता, देश-भक्ति, विद्या-प्रेम एवं त्याग के सजीव स्वरूप

बिहार-केशरी माननीय डा० श्रीकृष्ण सिंह जी

मुख्य-मन्त्री, बिहार

के

कर-कमलों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# प्राक्कथन

हिन्दी आज राष्ट्रभाषा के पद पर अधिष्ठित है। इस गौरव की रक्षा और वृद्धि का गुरु दायित्व हिन्दी-साहित्य के हरेक अनुरागी सेवक पर न्यस्त है। अपनी-अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार हरेक व्यक्ति राष्ट्रीय साहित्य की सेवा कर सकता है। वैदिक और लौकिक संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि भाषाओं में संरचित भारतीय सांस्कृतिक साहित्य ही हिन्दी तथा अन्यान्य आधुनिक भारतीय साहित्यों का मूल स्रोत है। परवर्ती काल में अरबी, फारसी, अंग्रेजी इत्यादि भाषाओं और साहित्यों से भी हिन्दी की पुष्टि के अनेकानेक उपादान प्राप्त हुए हैं। इन्हें अवश्य ही अपनाना चाहिए। अधिकन्तु तिब्बती, चीनी, जापानी आदि साहित्यों से भी नये उपादानों का संग्रह करना चाहिए; क्योंकि इनके साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु भूलना नहीं चाहिए कि हमारा मूल स्रोत कहाँ है। मूल से उच्छिन्न होने पर संस्कृति या साहित्य जी नहीं सकता है। प्रस्तुत पुस्तक इसी ओर हिन्दी के विद्यार्थियों की दृष्टि आकृष्ट करती है।

अध्यापक जगन्नाथ राय शर्मा जी वाणी के एकनिष्ठ सेवक हैं, भारतीय संस्कृति के एकान्त भक्त हैं। संस्कृत, हिन्दी, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और व्रज-साहित्य के अनुशीलन के द्वारा राष्ट्रीय भाषा की नीरव सेवा करना ही आपके जीवन का व्रत है। अपभ्रंश-दर्पण, व्रज-साहित्य-सौरभ, और प्रस्तुत ग्रंथ उसीके उपादेय फल हैं। व्यापक और उदारदृष्टि से भारतीय सांस्कृतिक साहित्यों का सार-मंथन करके राय जी ने इस सरल, संक्षिप्त, अपितु सारवान् ग्रंथ की रचना की है। भारतीय धर्म, दर्शन, काव्य, नाटक, अलंकार आदि उच्चांग विषयों के साथ परिचय कराने के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी होगी। भारतीय आदर्शों का वर्णन राय जी ने जिस मार्मिक और आवेगपूर्ण भाषा में किया है, उससे विद्यार्थियों के हृदय में आत्माभिमान और नैतिक चेतना अवश्य ही जागरित होगी। राय जी की यह कृति अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसका बहुल प्रचार सर्वथा वांछनीय है।

१७ मार्च, १९५३

धीरेन्द्रमोहन दत्त
[ अध्यक्ष, दर्शन-विभाग,
पटना-विश्वविद्यालय, ]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

# विषय-सूची


| विषय | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १ प्राक्कथन | ... | |
| २ प्रस्तावना | ... | |
| ३ हमारी भूमि के भिन्न-भिन्न नाम और विस्तार | ... | ३ |
| ४ वैदिक साहित्य | ... | १४ |
| ५ महाकाव्य | ... | ३८ |
| ६ पाली-साहित्य | ... | ५१ |
| ७ प्राकृत-साहित्य | ... | ५६ |
| ८ पौराणिक साहित्य | ... | ६२ |
| ९ अलंकृत काव्य | ... | ६६ |
| (क) महाकाव्य | ... | ८८ |
| (ख) खण्ड काव्य | ... | १०६ |
| (ग) मुक्तक काव्य | ... | ११५ |
| (घ) गीत-काव्य | ... | ११८ |
| (ङ) गद्य-साहित्य | ... | १२३ |
| (च) चंपू | ... | १३२ |
| (छ) रूपक | ... | १३३ |
| १० अपभ्रंश साहित्य | ... | १५४ |


RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# प्रस्तावना

बड़े खेद का विषय है कि आज हमारी शिक्षा-पद्धति सांस्कृतिक दृष्टि से बिलकुल निकम्मी बन गई है। न तो आज की पाठशालाओं या विद्यालयों में धर्म-ग्रंथों की शिक्षा दी जाती है और न छात्रों को भारतीय संस्कृति और सभ्यता के वातावरण में रखकर उनका पालन-पोषण ही होता है। उनका जन्म तो उस भूमि में हुआ है जिसके कण-कण में वैदिक ऋषियों और तपस्वियों की ध्वनि गूँज रही है; किन्तु उन्हें शिक्षा दी जाती है विदेशी वेष-भूषा और आचार-व्यवहार के आवेष्टन में। न तो उन्हें अपने संस्कारों का ज्ञान है और न ब्रह्मचर्याश्रम के उपयुक्त शिष्टाचारों का। उनका चलना-फिरना, बोलना-चालना, खेल-कूद तथा अन्यान्य छात्रोचित व्यवहार भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं होते। वे न तो किसी विदेशी संस्कृति के ही वायुमण्डल में पलते हैं और न देशी संस्कृति के ही। अतएव, वे दूसरों की संस्कृति के विकृत अंशों को अपनाकर स्वयं अपने देश-बन्धुओं के लिए भी अपरिचित से हो जाते हैं। उनके जीवन से जन-समाज के ऊपर कोई शुभ प्रभाव नहीं पड़ता; वरन् वे तरह-तरह के विदेशी धर्म के सिद्धान्तों और राजनीतिक एवं सामाजिक वादों को अपनाकर एक विचित्र प्रकार के जीव बन जाते हैं। इसलिए मेरे विचार में यह बात आयी कि यदि सर्वसुलभ हिन्दी भाषा में अपने सांस्कृतिक-साहित्य की रूप-रेखा प्रस्तुत कर दी जाय तो अपने भावी छात्रों और नवयुवकों का यह विचित्र जीवन बहुत-कुछ भारतीयता के रंग में रँग जाय। इसी लक्ष्य को सामने रखकर यह छोटा-सा ग्रंथ लिखा गया है। यद्यपि इस ग्रंथ को भारतीय साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसमें उन्हीं ग्रंथों की चर्चा की गई है जो हमारे सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित कर सके हैं और करते हैं फिर भी संस्कृत साहित्य के इतिहास-प्रेमियों के लिए भी यह ग्रंथ बहुत कुछ उपयोगी सिद्ध होगा।

हमें अब यह देखना है कि संस्कृति क्या वस्तु है और उसका सभ्यता से क्या सम्पर्क है। इन दोनों में कहाँ तक साम्य और अन्तर है, इस पर भी विचार करना आवश्यक है। हमारी समझ में संस्कृति और सभ्यता एक ही वस्तु के बाहरी और भीतरी स्वरूप हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Nagaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



शब्द का अर्थ है संस्कार अर्थात् स्वाभाविक वस्तु में लोक-रुचि या लोक कल्याण के अनुकूल परिष्कार। सभ्यता का अर्थ है नागरिकता। जिस प्रकार नागरिक लोग ग्रामीणों से अधिक शिक्षित, संगठित और समृद्ध होते हैं उसी प्रकार सभ्य लोग असभ्यों से अधिक शिक्षित, संगठित और समृद्ध होते हैं। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जहाँ संस्कृति का सम्बन्ध लोक रुचि या लोक-कल्याण से है वहाँ सभ्यता का सम्बन्ध समृद्धि और बाह्य सुखों के उपभोग से है। जो समाज सुसंस्कृत होगा, उसमें सभ्यता तो अवश्य ही होगी; किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि किसी सभ्य समाज में सुसंस्कृत पुरुष अवश्यमेव रहें। इसलिए सभ्यता के रहने पर भी संस्कृति का ज्ञान और तदनुकूल आचरण नितान्त आवश्यक है। आज की पाश्चात्य जातियाँ सभ्यता की दृष्टि से संसार की अन्य जातियों से बहुत आगे बढ़ी हुई हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। इन्होंने बहुत कुछ भौतिक उन्नति की है, वाणिज्य-व्यवसाय में अलौकिक दक्षता प्राप्त की है, सामाजिक स्वतन्त्रता भी उनमें पर्याप्त है और राजनीतिक दृष्टि से भी वे संसार की अन्य जातियों से बहुत आगे हैं। बाह्य या भौतिक दृष्टि से उनका जीवन बहुत कुछ सुखी है। उनलोगों ने दूसरे देशों को वशीभूत कर लिया है। समय और स्थान की दूरी पर विजय प्राप्त कर ली है। संसार के नवीन-नवीन भागों में अपने उपनिवेशों की स्थापना कर बहुत कुछ भौतिक लाभ उठा रहे हैं; किन्तु आध्यात्मिकता अर्थात् समस्तलोक-कल्याण की दृष्टि से वे एशिया के बहुत से देशों से, विशेषतः भारत से, बहुत पीछे हैं। उनकी सभ्यता उनकी संस्कृति में स्वार्थ का बीज वपन कर चुकी है, अतएव अत्यन्त सभ्य होते हुए भी वास्तविक सांस्कृतिक दृष्टि से वे बहुत पिछड़े हुए हैं। अतएव यह आवश्यक है कि हम सभ्य ही न होकर सुसंस्कृत भी न बनें। हमारी सभ्यता के साथ-साथ संस्कृति भी ऊँची हो। हम केवल भौतिक कल्याण के ही अभिलाषी न हों, अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए अपनी संस्कृति के अनुकूल विषय-वासनाओं से रहित आध्यात्मिक जीवन भी व्यतीत करें।

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक मनुष्य को समय-समय पर आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। उसे यह देखना चाहिए कि हमारे हृदय में अभी तक कितनी दुर्वासनाएँ भरी हुई हैं। और हमने उनमें से कितने के ऊपर विजय प्राप्त की है। इन दुर्वासनाओं के ऊपर विजय प्राप्त करने के साधनों का पूर्ण विवेचन हमें अपने प्राचीन ऋषियों और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



धार्मिक नेताओं के उपदेशों में मिलता है। अतएव संस्कृति के पूर्ण ज्ञान के लिए हमें अपने पूर्वजों की कृतियों का अध्ययन और मनन करना पड़ेगा। इसके बिना हमारी यथार्थ संस्कृति हममें आ नहीं सकती। अतएव हमारी दृष्टि में अपने सांस्कृतिक साहित्य से अनभिज्ञ रहना मानव-जीवन के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। अतः अपने देश के विद्यार्थियों, नवयुवकों या सर्वसाधारण के समक्ष अपने सांस्कृतिक साहित्य का यह संक्षिप्त परिचय उपस्थित करते हुए हमें संतोष और आनन्द का अनुभव हो रहा है; किन्तु साथ ही इस कृति की त्रुटियों को देखते हुए कुछ भय और संकोच के भाव भी मन में आ रहे हैं। आशा है, सहृदय सज्जन इसके दोषों पर दृष्टिपात न कर यदि इसमें कुछ गुण हों तो ग्रहण करेंगे। यह सांस्कृतिक साहित्य न तो संस्कृत भाषा और न भारतीय वाङ्मय ही का क्रमबद्ध इतिहास है। इसमें प्राचीन और मध्यकालीन प्रमुख सांस्कृतिक ग्रंथों का परिचय तथा संक्षिप्त समालोचना है। इसका दूसरा भाग आधुनिक काल की भिन्न-भिन्न लोक-भाषाओं के सांस्कृतिक साहित्य का परिचय और विवेचन होगा।

अब हमें यहाँ यह देखना है कि हमारे सांस्कृतिक साहित्य का स्वरूप क्या है। इसका प्रारम्भिक स्वरूप तो ब्रह्मनिष्ठ वैदिक ऋषियों की अलौकिक आत्माओं का दिव्य संगीत है। उसका उत्तरांश उस संगीत की व्याख्या और उसके आध्यात्मिक सिद्धान्तों का मनोरंजक विवेचन है। उसके बाद का साहित्य ( महाकाव्य ) हमें नैतिकता और मानव-जीवन के आदर्श की पराकाष्ठा पर ले जाता है जहाँ पर मानव विकसित होकर देवता बन जाता है। देवता ही क्यों, वह ईश्वर का पूर्ण अवतार बन जाता है। उसके तीसरे स्वरूप ( पाली-प्राकृत ) में महात्मा बुद्ध और भगवान महावीर के अमर सन्देश सुनाई पड़ते हैं, जो सांसारिक वासनाओं का परित्याग कर त्याग, तपस्या और सदाचार की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा और शक्ति देते हैं। उसके चौथे स्वरूप अर्थात् लौकिक-संस्कृत-साहित्य से हमें लौकिक और पारलौकिक जीवन की झलक और भुक्ति से होते हुए मुक्ति का मार्ग मिलता है। उसके पाँचवें रूप अर्थात् अपभ्रंश-साहित्य से हमें आधुनिक संस्कृति और साहित्य के उद्गम का संकेत मिलता है और इसलिए आज उसका अध्ययन हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक भारतीय के लिये—चाहे वह किसी जाति या धर्म का हो—भारतीय सांस्कृतिक साहित्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



का अध्ययन अनिवार्य है। उस सांस्कृतिक साहित्य के अध्ययन के लिए उसके भिन्न-भिन्न कालों की प्रवृत्तियों से परिचित होना परम आवश्यक है।

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय साहित्य का निर्माण चार भिन्न-भिन्न भाषा-समुदायों में हुआ है और ये हैं—

(१) वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य,

(२) पाली साहित्य,

(३) प्राकृत साहित्य, और

(४) अपभ्रंश साहित्य।

हमने इन चार भाषा-समुदायों में 'समुदाय' शब्द का प्रयोग इसलिए किया है कि ये भाषायें एक होने पर भी अनेक रूपों की हैं। वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के रूप में तो भेद है ही, पाली भाषा भी भिन्न-भिन्न प्रकार की थी। संयोग से आज उसके बहुत-से रूप हमें प्राप्त नहीं हैं। प्राकृतों के तो अनेक रूप प्रसिद्ध ही हैं जिनमें वररुचि के अनुसार महाराष्ट्री, शौरसेनी, पैशाची तथा मागधी प्रमुख हैं। अपभ्रंश भाषायें भी उतनी ही थीं जितनी प्राकृत भाषायें। अतएव यह समग्र साहित्य अनेक भाषाओं से होकर आया है। केवल भाषा ही नहीं वैदिक धर्म के भिन्न-भिन्न रूप भी भिन्न-भिन्न विशेषताओं और नामों के साथ इस साहित्य में अभिव्यंजित हुए हैं। शैलियों और काव्य गुणों की अधिकता का तो कोई ठिकाना ही नहीं। इस बहुरूपी और बहुमुखी साहित्य का अध्ययन भी अल्पवय या अल्पाध्ययनवाले पुरुष के लिए असम्भव है। उसी असम्भावना को आंशिक रूप में मिटाने के लिए इस ग्रन्थ के रूप में यह छोटा-सा प्रयत्न किया गया है।

भारतीय साहित्य का काल-विभाजन कुछ असम्भव-सा है। इसके कारण दो हैं। बहुत से लेखकों ने तो अपने या अपने समय के सम्बन्ध में कोई चर्चा ही नहीं की है। प्राचीन काल से आज तक संस्कृत भाषा में भारतीय साहित्य का कोई प्रामाणिक इतिहास लिखा ही नहीं गया है। ऐसी परिस्थिति में इसके लेखकों के काल और स्थान की चर्चा कठिन है। काल-विभाजन में दूसरी कठिनाई यह है कि अन्यान्य साहित्यों में जहाँ एक प्रवृत्ति के खतम होने पर दूसरी प्रवृत्ति का प्रारम्भ होता है, वहाँ भारतीय साहित्य में जितनी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, निरन्तर चलती रहती हैं। फिर भी कुछ साहित्यिक प्रवृत्तियों या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भाषाओं के विकास की दृष्टि से हम इस साहित्य के तीन प्रमुख काल-भेद बतला सकते हैं—

*१. वैदिक काल—आदिकाल से १००० वर्ष ई० पूर्व तक।

२. महाकाव्य काल—१००० वर्ष ई० पू० से ५०० वर्ष ई० पूर्व तक।

३. अलंकृत काव्य काल और पौराणिक काल—५०० वर्ष ई० पूर्व से १५०० ई० तक।

---

* संस्कृति साहित्य के आदिकाल ( वैदिकाल ) के प्रारम्भ के समय के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। इस सम्बन्ध में श्री ए० डी० पुसाल्कर के निम्नाङ्कित वाक्य द्रष्टव्य हैं :—

"Lokmanya Tilak put the hymns of the Reg-veda on astronomical grounds as far back as 6000 B. C. ( Orion Page 206 ) while Dr. Jacohi placed the beginning of the vedic civilization at about 4500 B. C. & considered the Rigveda hymns as the ripe, perhaps even late fruit of the age, Dr. Buhlar found the estimates of the age of the veda made by Dr. Jacohi and Tilak as "not primafacie incredible, The mittani inscriptions and the recent discovery of Tokharian to the N. E of the punjab and of Nasili in Hittite Cappadocia show that the age of the vedas is considerably prior to 2500 B. C. Though the earlier date assisged by Dr. A. C. Das, ( Viz. 25000 B. C. ) is generally not accepted on accounts of its failure to take into consideration other evidences, there appears to be some reason in prof Venkateshwaras estimate of 11000 B. C. as denoting the beginning of the vedic age on astronomical, historical, and cultural data."

Mohenjo—Daro and Rigveda
Bharat-Kaumudi.
Part II Page 552-53

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वैदिक-काल के भी तीन भेद स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं—संहिताकाल, ब्राह्मण और आरण्यक काल, तथा उपनिषत् काल। महाकाव्य-काल के भीतर रामायण और महाभारत के मूल रूप की समग्र रचना हुई है। अलंकृत काव्य काल के भीतर समग्र लौकिक संस्कृत साहित्य तथा पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की कृतियों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार यह प्राचीन भारतीय साहित्य अनेक सहस्र वर्षों का है और उसका न मालूम कितना अंश लुप्त हो चुका है। फिर भी जो कुछ अवशिष्ट है, उसीका अध्ययन करना मनुष्य के लिए असंभव है। कोई भी मनुष्य कितना भी प्रतिभाशाली क्यों न हो, इस विशाल साहित्य का ठीक-ठीक अध्ययन करने में दस-बीस जीवन में ही सफल हो सकता है।

भारतीय साहित्य का यथार्थ स्वरूप क्या है और साहित्य किन गुणों के रहने से आनन्ददायक हो सकता है इस विषय का बहुत-कुछ विवेचन हो चुका है। जिन ग्रन्थों में इन विषयों का विवेचन होता है, उन्हें अलंकार शास्त्र कहा गया है। अलंकार की परिभाषा दण्डी के अनुसार बड़ी विस्तृत है। वह कहता है—"काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ानेवाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।" इस अलंकार शास्त्र पर लगभग दो सौ सज्जनों ने अपनी लेखनी उठाई है। इनके अतिरिक्त और कितनों ने इसपर लिखा होगा, यह हमें पता नहीं। इन लेखकों में भामह, दण्डी, उद्भट, धनंजय, रुद्रट, आदि अलंकार पक्ष के माने जाते हैं। कुन्तक वक्रोक्ति पक्ष के आचार्य हैं। ध्वनिकार आनंदवर्द्धन अभिनवगुप्त और मम्मट ध्वनि पक्ष के आचार्य हैं। महिम-भट्ट ध्वनि के खण्डन और अनुमितिवाद के मण्डन से साहित्य में प्रसिद्ध हो गये हैं। मम्मट ने जहाँ रसवाद की नींव डाली है वहाँ विश्वनाथ उसके पूर्ण परिपोषक होकर आये हैं। इस प्रकार काव्य में पहले-पहले अलंकारवाद, उसके पश्चात् वक्रोक्तिवाद, रीतिवाद, ध्वनिवाद, और रसवाद का प्रचार होता गया है। इस विषय का पूर्ण क्या संक्षिप्त विवेचन भी प्रस्तुत विषय से कुछ दूर पड़ता है। अतएव इसका विस्तार यहाँ नहीं किया जाता।

किसी भी साहित्य का दर्शन से अपरिहार्य संबंध है, विशेषतया सांस्कृतिक साहित्य और दर्शन में तो बहुत-कुछ साम्य भी है। भारतीय दर्शनों की संख्या १६ है; किन्तु इनमें छः प्रसिद्ध हैं जिन्हें वेद को प्रमाण मानने के कारण आस्तिक दर्शन कहते हैं। प्रथम दर्शन पूर्वमीमांसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



के नाम से प्रसिद्ध है। इस शास्त्र के प्रवर्तक जैमिनि ऋषि हैं। इसके अनुसार बिना किसी बाहरी फल की कामना के कर्त्तव्य बुद्धि से नित्य कर्म के अनुष्ठान से मोक्ष प्राप्त होता है। मीमांसा का मुख्य अभिप्राय यज्ञादि वैदिक अनुष्ठानों की तात्त्विक विवेचना है। उसके अनुसार कर्म मोक्ष की प्राप्ति में प्रधान कारण है और आत्मज्ञान सहकारी कारण। अतः कर्त्तव्यशास्त्र की दृष्टि से मीमांसा ज्ञानकर्म-समुच्चय को मानती है। सांख्यशास्त्र के रचयिता कपिलऋषि हैं। सांख्यशास्त्र के अनुसार संसार में कोई नई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती; केवल वस्तुओं के रूप ही परिवर्त्तित होते रहते हैं। संसार में जितना जड़ जगत् दिखाई देता है या जिसको हम नेत्रों से देख भी नहीं सकते, वह प्रकृति है। उसके गुण सत्, रज और तम हैं। ये तीनों गुण मूल द्रव्य या प्रकृति में आरम्भ से ही रहा करते हैं। ये गुण कभी अलग-अलग नहीं रह सकते। सांख्यवादी लोग प्रकृति के परे चेतन तत्त्व को पुरुष मानते हैं। प्रकृति एक है; किन्तु पुरुष अनेक और इन दोनों से बढ़कर ईश्वर, काल, स्वभाव या और कोई भी तत्त्व नहीं है। मनुष्य तरह-तरह की समाधियों की अवस्थाओं को पार करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है। न्याय और वैशेषिक के रचयिता गौतम और कणाद हैं। इन दोनों के सिद्धान्तों से बहुत कुछ साम्य है। वे संसार के भिन्न-भिन्न पदार्थों को भिन्न-भिन्न कोटियों में बाँटते हैं और उनका पूर्ण ज्ञान होने पर मनुष्य को मुक्ति की प्राप्ति होना बतलाते हैं। योगदर्शन पतंजलि ऋषि का सिद्धान्त अभिव्यक्त करता है। वे सांख्य शास्त्र की अन्य बातों को स्वीकार करते हैं; किन्तु वे ईश्वर का अस्तित्व भी मानते हैं। उनके अनुसार मनुष्य भिन्न-भिन्न आसनों तथा प्राणायाम के द्वारा परमात्मा के चरणों में चित्त एकाग्र कर मोक्ष का भागी बनता है। वेदान्त या उत्तरमीमांसा के आचार्य बादरायण व्यास हैं। उनके वेदान्त सूत्रों पर भिन्न-भिन्न आचार्यों ने टीकाएँ तथा भाष्य लिखे हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध हैं स्वामी शंकराचार्य। ये अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन करते हैं। उनका कहना है कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है और दृश्यमान जगत् मिथ्या है। इनका कहना है कि चित्त को शुद्ध करने के लिए कर्म करना आवश्यक है; किन्तु जब चित्त शुद्ध हो जाय और परमात्मा में जीव की एकत्व बुद्धि निश्चित हो जाय तब सभी कर्मों का त्याग कर देना चाहिए। बिना संन्यास के मोक्ष असंभव है। शंकराचार्य के इस मत का खण्डन रामानुज, माध्व, निम्बार्क तथा वल्लभ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



इन चार वैष्णव आचार्यों ने बड़े जोर-शोर से किया है; किन्तु ग्रंथ-विस्तार के भय से उनका यहाँ विवेचन नहीं किया जाता।*

अत्यन्त प्राचीनकाल से ही आर्यों का समग्र-जीवन धर्ममय रहता चला आया है। वर्णभेद की चर्चा ऋग्वेद में ही प्राप्त हो जाती है। चाहे आज उससे लाभ हो या हानि, यह एक निश्चित तथ्य है कि आर्य जीवन का प्राचीनकाल से यह एक अटल सिद्धान्त रहता चला आया है। इस सिद्धान्त से उन्हें दो लाभ हुए हैं—प्रत्येक वर्ण की वृत्ति-व्यवस्था तथा उसकी शिक्षा-दीक्षा का तदनुसार प्रारंभ और अन्त। इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक युग की कई ऐसी कहानियाँ मिलती हैं जिनसे भिन्न-भिन्न वर्णों में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह प्रचलित होना सिद्ध होता है। इस संबंध में बहुत-कुछ उदारता थी; किन्तु कालक्रम से वैवाहिक सम्बन्धों में ज्यों-ज्यों उच्छृंखलता बढ़ती गई, शास्त्रकार इस विषय में अनुदार बनते चले गये। संभवतः यही अनुदारता आज वर्ण-विभाग के प्रति असंतोष का कारण बन रही है। चार वर्णों की भाँति चार आश्रमों का सिद्धान्त भी वैदिक युग से ही चला आता है। इस सिद्धान्त में कभी कोई दोष नहीं हो सकता। दुःख की बात है कि आज इस सिद्धान्त का पालन ठीक-ठीक नहीं किया जाता। आज की विद्या केवल रोटी कमाने के लिए है; किन्तु प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम में विद्या की प्राप्ति निर्हेतुक थी। यह प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य थी। आज शिक्षा का जो स्वरूप है वह सोलहो आने विदेशी है। लड़कों से फीस लेना, उन्हें विदेशी कोट-पैंटों से सजाना, बड़े-बड़े शहरों में भौतिक और नैतिक अपवित्र वातावरण में विद्याध्ययन करने के लिए वाध्य करना भारतीय संस्कृति की परम्परा से पूर्णतया प्रतिकूल है। शिक्षकों को भी राष्ट्रीय शासकों का गुलाम बना देना विदेशी सरकार के द्वारा दिया हुआ प्रसाद है। हमारे यहाँ न तो वशिष्ठ और न विश्वामित्र किसी सरकार के गुलाम थे और न उन महान् कुलपतियों के कोई अध्यापक ही। नालन्दा और तक्षशिला की परम्परा भी बहुत कुछ ऐसी ही थी। राष्ट्र का गुरु किसी का गुलाम नहीं हो सकता। यह उसके गौरव के विपरीत है। 'सेवा श्ववृत्तिराख्याता' अर्थात् नौकरी कुत्ते की वृत्ति के रूप में प्रसिद्ध है। जो शिक्षक इस सेवा का दास बन गया, वह श्ववृत्ति से वञ्चित कैसे

---

*षड्दर्शनों तथा वेदान्त के भिन्न-भिन्न भेदों के लिये लेखक का अयोध्याकाण्ड (राम चरितमानस) सटीक तथा व्रजसाहित्य-सौरभ देखिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



रहेगा ? इसी श्ववृत्ति का परिणाम है कि कितने सच्चरित्र, विद्वान्, धर्मात्मा और योग्य शिक्षक खुशामद से अनभिज्ञ रहने के कारण अपनी योग्यता के अनुकूल उच्च पदों पर पहुँचने से वंचित रह जाते हैं।

प्रत्येक आर्य के जीवन को सुसंस्कृत करने के लिए हमारे यहाँ जन्म से मृत्यु तक ४० संस्कार हैं जिनमें १६ प्रमुख हैं। इन सभी संस्कारों का वर्णन वैदिक युग में गृह्य सूत्रों में किया गया था। आगे चलकर मनु, याज्ञवल्क्य आदि १८ स्मृतिकारों ने राष्ट्र के प्रत्येक स्तर अर्थात् राजा से लेकर रंक तक तथा सद्यःजातशिशु से लेकर मरणासन्न पुरुष तक का कर्त्तव्य-निर्णय तथा संस्कार-विधान किया है। संभव है, आज के युग में उनमें से कुछ उपयोगी न हों; किन्तु उनका सर्वथा त्याग करना समाज की जड़ पर कुठाराघात करना है। हमारा समाज सम्मिलित कुटुम्ब की पद्धति पर निर्मित हुआ है। हमारे विवाह-संबंध जन्म-जन्मान्तर के लिए होते हैं, अतः वे आध्यात्मिक हैं। देश के ईमानदार और योग्य शासकों के प्रति भक्ति, गुरुजनों के समक्ष प्रणति, समवयस्कों से स्नेह, छोटों के प्रति सत्कार की भावना ये सब हमारी संस्कृति के स्तम्भ हैं। ईश्वरानुराग, प्रत्येक प्राणी के प्रति स्नेह, प्रत्येक जड़ और जंगम वस्तु और जीव में अपने प्रभु का अवलोकन आर्य संस्कृति का मेरुदण्ड है। जो कुछ साहित्य इस ग्रंथ में वर्णित हुआ है उससे ये तथा अनेक सूक्ष्म बातें जिनका यहाँ वर्णन नहीं हो सका है, स्पष्ट हो जायँगीं। आशा है, भारतीय साहित्य और भारतीय संस्कृति के अनुरागी युवती-युवक इस संक्षिप्त साहित्यिक परिचय या विवेचन से समुचित लाभ उठायँगे तथा मूल साहित्य के अध्ययन और अनुशीलन की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

अन्त में, हम पं० देवकुमार मिश्र जी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इसे इतना शीघ्र एवं सुन्दर ढंग से प्रकाशित किया है। प्रूफ देखने की उदारता दिखा कर किशोर-संपादक पं० रघुवंश पाण्डेय जी ने मुझे चिरकृतज्ञ बना लिया है। इस ग्रंथ की प्रेस काँपी तैयार करनेवाले श्री सुमन जी एवं सुरेश प्रसाद गुप्त भी धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है, इस ग्रंथ से उदार पाठकों की, अपने धर्म और संस्कृति के मूलग्रंथों का परिचय प्राप्त करने की, इच्छा पूर्ण होगी।

—जगन्नाथ राय शर्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# हमारा सांस्कृतिक साहित्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# हमारी भूमि के भिन्न-भिन्न नाम और विस्तार

हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति इतनी प्राचीन हैं कि उसके समय-समय के नामों और विस्तारों का ठीक-ठीक पता चलाना भी कठिन है। इतिहास, भूगोल, गणित, साहित्य, ज्योतिष तथा भूगर्भशास्त्र से सहायता लेकर अनेक प्रतिभाशाली अन्वेषकों ने भारत की प्राचीनता, विस्तार, संस्कृति एवं सभ्यता का अनुमान करने का प्रयत्न किया है; पर अब तक भी यथेष्ट सफलता नहीं मिल सकी है।

भारत का निश्चयात्मक इतिहास आज से लगभग २६०० वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ था। इसके पहले का इतिहास प्राचीन संस्कृत-साहित्य और खुदाई में प्राप्त हुई सामग्रियों के आधार पर लिखा गया है। भगवान् बुद्ध से पहले के समय को प्रागैतिहासिक काल कह सकते हैं। भारतीय इतिहास प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक इन दो बड़े भागों में बाँटा जा सकता है। प्रागैतिहासिक काल के तीन बड़े विभाग हो सकते हैं—ऋग्वैदिक काल, ब्राह्मण काल और महाकाव्य काल। इसी प्रकार ऐतिहासिक काल के भी बौद्ध, पौराणिक, मुसलिम, बृटिश, तथा आधुनिक पाँच युग हैं। यहाँ उक्त कालों के भारत के भिन्न-भिन्न नामों और विस्तारों की चर्चा की जायगी।

**ऋग्वैदिक काल—**

कौन-सी जाति भारतवर्ष में सबसे पहले रहती थी, इसका निर्णय करना कठिन है। यह भी ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता कि उस समय उसका नाम क्या था और उसका विस्तार कितना था। कुछ लोगों का विश्वास है कि भारतवर्ष में सबसे पहले हबशी जाति का निवास था। उसके बाद मुण्डा, मंगोल तथा द्राविड़ जातियों का निवास बतलाया जाता है। भारत एक बहुत बड़ा देश है। यह एक महादेश के समान है। इसमें एक ही समय में भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न जातियों का निवास तथा भिन्न-भिन्न सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का विकास संभव है। अतएव यह न समझना चाहिये कि ये जातियाँ अवश्य ही एक दूसरे के बाद ही भारत में आयीं। यह भी समझना ठीक न होगा कि आर्य इन जातियों के रहते समय भारत के किसी भाग में न रहे हों और ये अवश्य ही कहीं बाहर से आक्रमणकारी के रूप ही में आये होंगे।

आर्य प्रारम्भ से ही भारतवर्ष के निवासी हैं या कहीं बाहर से आये हैं, यह विषय अत्यन्त विवादास्पद है। कुछ विदेशीय तथा भारतीय विद्वानों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


विचार है कि आर्य भारत के आदि निवासी नहीं हैं। ये कहीं-न-कहीं भारत के बाहर ही पैदा हुए, और काल-क्रम से मध्य एशिया से होते हुए भारत में आये। इस अनुमान का एकमात्र कारण है पारसी, ग्रीक, लैटिन ट्यूटनिक, केल्टिक और स्लैवनिक जातियों की भाषाओं में आश्चर्यजनक समता। प्रारम्भिक सम्बन्धों या अनुभवों की व्यञ्जना करनेवाले शब्द, इन सभी जातियों की भाषाओं में परस्पर मिलते-जुलते पाये जाते हैं। ये शब्द हैं पिता, माता, पुत्र, पुत्री, ईश्वर, हृदय, आँसु, पशु, वृक्ष, श्वान, और गाय इत्यादि। उदाहरणार्थ संस्कृत 'माता' लैटिन 'मेटर' अँगरेजी 'मदर' तथा संस्कृत 'सूनु' प्राचीन उच्च जर्मन 'सुनु' और अँगरेजी 'सन' ये सब शब्द इन जातियों के प्राचीन सम्बन्ध के द्योतक हैं। इसी सम्बन्ध के कारण विद्वानों ने इन जातियों का मूल एक मानकर उनके प्राचीन निवास और भाषा की खोज करने का प्रयत्न किया है। इन विद्वानों ने आर्यों का आदि-निवास उत्तर यूरोप, मध्य-एशिया, तथा रूस का दक्षिण भाग बतलाया है। भारतीय विद्वानों में से लोकमान्य तिलक ने आर्यों का मूल-निवास उत्तर ध्रुव के पास बतलाया और डाक्टर अविनाशचन्द्र दास ने भारतवर्ष का उत्तर-पश्चिम भाग, डाक्टर पी० गाइल्स के अनुसार भारत, पामीर, उत्तर यूरोप, दक्षिण रूस तथा उत्तर ध्रुव आर्यों का आदि-निवास नहीं हो सकते। उनके अनुसार आर्यों का आदि-निवास यूरोप का वह भाग था जहाँ आज कल हंगरी, आस्ट्रिया और चेकोस्लाविया नामक देश हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यों के आदि निवास के सम्बन्ध में कई प्रकार के मत हैं। इनमें से किस पर विश्वास किया जाय, यह एक समस्या है। किन्तु भाषा-सम्बन्धी इस समता के अतिरिक्त आर्यों के बाहर से आने का कोई भी प्रमाण हमारे साहित्य में उपलब्ध नहीं होता। उक्त डाक्टर ए० सी० दास के अनुसार आर्यों के बाहर से आने की बात अप्रामाणिक है। उनका मत संक्षेप में यों है :—

ऋग्वेद के मंडल ७ सू० ९५ मंत्र २ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सरस्वती नदी उक्त मन्त्र के रचना-काल में समुद्र में गिरती थी; किन्तु इस समय यह समुद्र में नहीं गिरती; क्योंकि समुद्र आज इसके मुहाने से सैकड़ों मील दूर हट गया है। इससे यह अनुमान होता है कि इस मन्त्र के रचना-काल में भारत का रूप कुछ और ही था। भूगर्भ-शास्त्र के अनुसन्धानों से यह बात सही सिद्ध होती है कि भारत के रूप में समय-समय पर बहुत कुछ परिवर्त्तन हुए हैं। भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार किसी अत्यन्त प्राचीन काल में राजपूताने से लेकर अरावली पर्वत के पूर्व तक कोई समुद्र था, जो राजपूताना-समुद्र कहा जाता था। यह बात दस हजार वर्षों से भी पहले की हो सकती है। इस मन्त्र के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी ऋचाएँ हैं जिनसे सिद्ध होता है कि तत्कालीन भारत कुछ और ही था। उस समय के आर्य अपनी निवास-भूमि को सप्तसिन्धु कहते थे। इसका अर्थ है सात नदियों का देश। यह देश सिन्धु और सरस्वती नदियों के आस-पास था। गंगा और यमुना की चर्चा भी यदाकदा की गयी है; किन्तु ये प्रधान नदियाँ नहीं मानी गयीं। वैदिक आर्यों ने गंगा-यमुना से पूर्व की किसी नदी या पूर्व भारत के किसी प्रदेश की वेदों में कुछ भी चर्चा नहीं की है। 'कीकट' देश का नाम ऋग्वेद मंडल ३ सू० ५३ मंत्र १४ में आया है। पीछे से कीकट को मगध माना गया है; किन्तु मगध का ज्ञान तत्कालीन आर्यों को था, यह बात सम्भव नहीं प्रतीत होती। जब वे कीकट के पश्चिम के प्रदेश पांचाल और कोशल को नहीं जानते तो कीकट को कैसे जान लेते ? अतः कीकट संभवतः सप्त-सिन्धु के ही किसी भाग का नाम रहा होगा, जो पीछे से मगध का वाचक बन गया होगा। दक्षिण-भारत का अस्तित्व भी वैदिक ऋषियों को ज्ञात नहीं था।

ऊपर कहा जा चुका है कि कतिपय विद्वानों का मत है कि आर्य बाहर से आये। वे यूरोप या अन्य स्थानों से चलकर भारत पहुँचे और सप्त-सिन्धु में ठहर गये। आक्रमणकारी होने के कारण इस देश के पहले के निवासी उनसे लड़ पड़े और उन्हें इन लोगों से घोर युद्ध करना पड़ा। अन्त में विजयी होकर वे आगे बढ़े। अतएव पूर्वीय प्रान्तों को उन्होंने पीछे से जाना। इसीलिये वेदों में उन्होंने उनकी चर्चा न की। किन्तु यह बात ठीक नहीं, यथार्थ में आर्य कहीं से आये नहीं थे, वे सप्त-सिन्धु के आदिम निवासी थे। पूर्व के प्रान्त उस समय थे ही नहीं। उस समय उन प्रान्तों के ऊपर समुद्र लहरा रहा था। पश्चिम में भी राजपूताना का समुद्र था। ऋग्वेद मंडल १० सू० १३६ मंत्र ५ से यह स्पष्ट है कि सप्त-सिन्धु के दोनों ओर समुद्र थे। आगे चलकर ऋ० मंडल ६ सू० ३३ मंत्र ६ तथा ऋ० मंडल १० सू० ४७ मंत्र २ से यह पता चलता है कि सप्त-सिन्धु के चारों ओर समुद्र थे। पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में तो समुद्र थे ही, उत्तर में भी भूगर्भ-शास्त्र के अनुसार एक समुद्र था जो तुर्किस्तान से साइबेरिया तक विस्तृत था। इन बातों से यह पता चलता है कि आर्य सदैव से भारत के ही निवासी थे, और भारत केवल सप्त-सिन्धु मात्र था। शेष भारत जलमग्न था। सम्भव है, भारत से ही आर्य जाति संसार के अन्यान्य देशों में फैली हो, और यही कारण है कि भिन्न-भिन्न देशों के आर्यों की भाषा में इतना साम्य है।

हिन्दी-कवि 'प्रसाद' भी यही बात मानते थे। उन्होंने लिखा है कि :—

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्म-भूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वस्तुतः विचार करने पर आर्यों के बाहर से आने की बात जी में नहीं ठहरती। यदि यथार्थ में ये बाहर से आये होते तो इस प्रत्यक्ष सत्य का अपने विस्तृत साहित्य में कहीं तो उल्लेख करते। पर उन्होंने ऐसा कहीं भी नहीं किया है। कम-से-कम जहाँ से वे आये थे, उसे अपना धर्म-स्थान या तीर्थ तो मानते रहते। आर्य जैसी कृतज्ञ जाति का अपनी धर्म-भूमि भूल जाना सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है। अतएव आर्यों के बाहर से आने की बात तब तक सत्य नहीं मानी जा सकती जब तक आर्य-साहित्य में इसका उल्लेख नहीं दिखला दिया जाता या निश्चित शास्त्रीय प्रमाणों के द्वारा उसे सिद्ध नहीं कर दिया जाता। केवल भाषा-विज्ञान के आधार पर इस सम्बन्ध में अंतिम निर्णय करना कथमपि मान्य नहीं हो सकता। अतएव सप्त-सिंधु को आर्यों का मूलस्थान मानने के प्रतिकूल कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध न होने से हमें उसे ही उनका मूलस्थान मानना पड़ता है।

ब्राह्मणकाल—ऋग्वेद काल में आर्य लोग सप्तसिंधु में थे; किंतु उनकी सभ्यता का केन्द्र क्रमशः पूर्व की ओर आ रहा था। उनका प्रथम सभ्यता-केंद्र पश्चिम सप्त-सिन्धु में 'पञ्चजनाः' के प्रदेश में था। उक्त काल में ही वे सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच में बसने लगे थे। किन्तु इस ब्राह्मण-काल में ये पूर्व की ओर अर्थात् कुरुक्षेत्र में आ गये। इसकी सीमाएँ यों थी, दक्षिण में खाण्डव वन, उत्तर में तुर्घना और पश्चिम में परिणाह था। अब पश्चिम की चर्चा कम होने लगी। पूर्व के प्रान्त जैसे कोशल, विदेह, मगध और अंग की चर्चा विशेष होने लगी। विन्ध्य के दक्षिण में आन्ध्र, मूर्तिवास, पौंड्र और शबर जातियों का निवासस्थान बतलाया गया है। इस समय तक आर्य-सभ्यता विन्ध्य के दक्षिण नहीं गयी थी। ब्राह्मणकालीन भारत का विस्तार नवीन राज्यों और जातियों का आश्रय बना। अब अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु, क्रिवि, पुरु और भरत की चर्चा नहीं सुन पड़ती। इस समय कुरु, और पांचाल लोगों को ही सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। कुरु-वंशियों की समृद्धि परीक्षित और जनमेजय के समय में सबसे बढ़कर थी। इनकी राजधानी आसन्दीवन्त थी। इनके राज्य में दो और बड़े नगर थे, यशनार और कारोती। अथर्ववेद के अनुसार यह प्रान्त बड़ा ही समृद्ध था। छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों के अनुसार ये दोनों देश ओले या टिड्डियों के कारण विनष्ट हो गये थे। किन्तु कुरु-पांचालों का सम्मिलित ऐश्वर्य बहुत दिनों तक स्थायी रहा। यह एक विस्तृत भू-भाग था जिसमें काम्पिल्य, कौशाम्बी तथा परिचक्र जैसे नगर थे।

ब्राह्मण-काल में आर्यों के पूर्व बढ़ने की कथा शत-पथ ब्राह्मण में मिलती है। इसके अनुसार माठव विदेघ (जो पीछे विदेह का राजा हुआ) सारस्वत प्रदेश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



से सदानीरा ( गंडक ) पार कर विदेह पहुँचा। ब्राह्मणों से पता चलता है कि इस समय आर्यों के तीन राज्य पूर्व में स्थापित हुए—कोशल, काशी और विदेह। इस युग के दो दार्शनिक महाराज प्रसिद्ध हैं—काशी के अजातशत्रु और विदेह के जनक। इस समय के विद्वान् ब्राह्मणों में याज्ञवल्क्य और श्वेतकेतु थे, जो उन राजाओं के सहायक और उपदेशक थे।

आर्य-सभ्यता के बाहर मगध और अंग के प्रदेश थे। गोप ब्राह्मण में अंग और मगध का उल्लेख मिलता है। मागधों को व्रात्य कहा गया है और उन्हें प्राकृतभाषी बतलाया गया है। इस समय का समग्र सभ्य भारत निम्नलिखित प्रान्तों का था, उशीनर, वत्स, मत्स्य, कुरु, पांचाल, काशी और विदेह। ब्राह्मण-काल में सारस्वत प्रदेश से ब्रह्मावर्त या मध्यदेश की, और फिर मध्यदेश से आर्यावर्त की भावना का विस्तार हुआ। आर्यावर्त का पूरा विस्तार अभी तक समग्र उत्तर भारतव्यापी न था, केवल ऊपर कहे गये प्रान्त ही उसके भीतर आते थे।

**महाकाव्य-काल**—इस समय के प्रधान प्रान्तों में कोशल, मिथिला, कुरु, उत्तर पांचाल, दक्षिण पांचाल, मगध, काशी, कान्यकुब्ज, मधुवन, माहिष्मती, अंग, विशाला और केकय थे।

भारत का यह विस्तार रामायण के अनुसार था। महाभारत के अनुसार इन देशों के अतिरिक्त वंग, दशार्ण, पुलिंद, चेदि, पौंड्र, आवंती, भोजकट, किष्किन्धा तथा मद्र भी आर्यों द्वारा शासित थे। इस प्रकार समग्र आर्यावर्त्त के अतिरिक्त दक्षिण के भी कई प्रान्त महाकाव्यकालीन भारत के अंग थे।

ऋग्वेद के समय में आर्य लोग अपनी भूमि को सप्तसिन्धु कहा करते थे। ब्राह्मण-काल में इसकी सीमा विस्तृत हो गयी। अतएव ऋषियों ने इसे ब्रह्मावर्त कहा। मनु के अनुसार यह देश, सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच में था। आगे चलकर जब ऋषियों ने इस देश के बाहर अपने आश्रम बनाये तो यह नाम उपयुक्त नहीं जँचा। अतएव उन्होंने ब्रह्मर्षि देश के भीतर कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शूरसेन नामक देशों को रक्खा, किन्तु इसके पश्चात् भी आर्य आगे ही बढ़ते गये, और वे उस देश में पहुँचे, जिसके उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विंध्य पर्वत, पूर्व में प्रयाग और पश्चिम में सरस्वती नदी थी। अब समग्र भारत दो भागों में बँट गया, आर्यावर्त्त और म्लेच्छ-देश। मनु के अनुसार आर्यावर्त्त वह देश था, जो हिमालय, विंध्य, वंगोपसागर और अरब समुद्र के बीच में था। इसके बाहर म्लेच्छ-देश था, जो दक्षिण में द्राविड़ देश कहलाता था। इसके अतिरिक्त सतलज और सिंध के बीच का देश भी म्लेच्छ-देश ही कहलाता था। संभवतः यहाँ भी द्रविड़-सभ्यता का विस्तार था। मोहेंजोदड़ो की खुदाई में जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वस्तुएँ मिली हैं, वे इन्हीं द्राविड़ों के पूर्व पुरुषों की सभ्यता की द्योतक हैं। किंतु उनपर आर्य सभ्यता की छाप भी अवश्य पड़ी होगी, क्योंकि उनके गृह-देवताओं में त्रिनयन शिव की मूर्ति योगासन लगाकर बैठी हुई, पशुओं से घिरी हुई, पायी गयी है। कुछ लोग शिव या रुद्र की इस मूर्ति को देखकर यह मान बैठते हैं कि आर्यों ने अनार्यों के रुद्र देव को अपने देवताओं के बीच में स्थान दिया है। किन्तु यथार्थ में अनार्यों ने आर्यों से ही रुद्रदेव की भावना ग्रहण की थी ; क्योंकि रुद्र आर्यों के अत्यन्त प्राचीन देवता हैं; और ऋग्वेद में यह स्पष्ट कहा गया है कि रुद्र और अग्नि अभिन्न हैं। इस प्रकार महाकाव्य-काल तक आर्य-भारत की सीमा अभी बहुत कुछ संकुचित थी इस बात का प्रमाण वैदिक ग्रंथों या महाकाव्यों में नहीं मिलता कि उस समय समग्र देश का नाम क्या था ; किन्तु पुराणों के अनुसार समग्र देश का नाम 'भारत' अत्यन्त प्राचीन है, इस बात की विस्तृत चर्चा पौराणिक समय पर विचार करते समय की जायगी।

**बौद्ध-काल**—अब तक जो कुछ लिखा गया है उससे स्पष्ट है कि महाकाव्य काल की समाप्ति के समय भारत की सीमा क्या थी तथा आर्य इसके किन-किन प्रदेशों में रहते थे। यद्यपि आर्य प्रधानतया तो आर्यावर्त्त में ही रहा करते थे, तथापि उनके ऋषि-मुनि आर्यावर्त्त के बाहर दक्षिण के घोर जंगलों में आश्रम बनाकर रहा करते थे। इन्हीं ऋषियों को राक्षस पकड़कर खा जाया करते थे। ऐसे ही ऋषियों के अस्थि-संचय को दण्डकारण्य में देखकर रामचन्द्र ने राक्षसों को नष्ट करने का प्रण किया। भगवान रामचन्द्र के बाद दक्षिण भारत में आर्य-सभ्यता का विस्तार शीघ्रता से होने लगा। अतः बौद्ध-काल में प्रायः समग्र भारत में आर्यों का गमनागमन तथा निवास हो चुका था। बौद्ध-काल में सोलह महाजन-पदों का उल्लेख प्राचीन पालि ग्रन्थों में पाया जाता है।

ये महाजनपद निम्नलिखित हैं :—

अंग, मगध, काशी, कोशल, वज्जि, मल्ल, चेटि, या चेदि, वंश या वत्स, कुरु, पांचाल, मच्छ या मत्स्य, सूरसेन, अस्सक या अश्मक, अवन्ती, गान्धार, और काम्बोज। इनके अतिरिक्त शिवि-दशार्ण तथा वंग के नाम भी पाये जाते हैं। इन आर्य प्रदेशों के अतिरिक्त अनार्य प्रदेशों के नाम भी मिलते हैं जैसे—द्राविड़ एवं गौड़। इस समय के प्रधान नगरों में कलिंग की राजधानी दन्तपुर, अश्मक की पोतन, अवन्ती की माहिष्मती, सौवीर की रोरुक, विदेह की मिथिला, अंग की चंपा, काशी की वाराणसी थी। इनके अतिरिक्त राजगृह, श्रावस्ती, साकेत और कौसम्बी भी प्रसिद्ध नगर थे। बौद्धयुग में अशोक का साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत हुआ। उसने कलिंग को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस समय केवल भारत में ही नहीं, भारत के बाहर के देशों में भी बौद्धधर्म के प्रचारक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भेजे गये। वैदिकधर्म के बौद्ध एवं जैन रूप समग्र भारत में फैल गये। इस प्रकार आर्य-संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण हो गया।

**पौराणिककालः—**

पुराणों की चर्चा वैदिक ग्रंथों में भी पायी जाती है। अतएव पौराणिक काल बौद्ध काल के भी पीछे था यह समझना उचित नहीं होगा। पुराणों की बहुत-सी कथाएँ और ऐतिहासिक तथ्य बौद्ध काल के बहुत पहले के हैं, फिर भी वह पौराणिक काल बौद्ध काल के पीछे इसलिए रक्खा गया है कि आजकल प्राप्त होनेवाले पुराणों में बौद्ध काल के पीछे की बहुत-सी बातें मिला दी गयी हैं। यथार्थ में इस काल को सनातन वैदिक धर्म का नवजागरण काल कहना पौराणिक काल कहने से अधिक उपयुक्त होगा। भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर बड़े ही क्रान्तिकारी महात्मा थे। उन्होंने जीव-दया और वासना-क्षय की भावनाओं की पराकाष्ठा कर दी। यदि भारतीय जनता उनके धर्मों के यथार्थ मर्म को समझ पाती, तो आज संसार में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा, विलासिता, एवं स्पर्द्धा की भावना न होती। सभी सब में अपनी ही आत्मा का दर्शन करते और संसार स्वर्ग बन गया रहता; किन्तु नासमझ जनता ने उनकी शिक्षाओं की पर्वाह न कर केवल बाह्याचारों को ही ग्रहण किया। परिणाम यह हुआ कि भगवान् बुद्ध और महावीर का नाम लेकर गर्हित-से-गर्हित कार्य किये जाने लगे। यही कारण है कि भावुक एवं श्रद्धालु सनातन वैदिक धर्मियों ने अपने प्राचीन धर्म का आश्रय लेना ही उत्तम समझा। गुप्त सम्राटों ने उन महात्माओं के अहिंसा-धर्म को ग्रहण किया और इस नव जागरण में पर्याप्त सहायता पहुँचायी। इसी समय पुराणों की पुनरावृत्ति हुई। अतएव यह काल पुराणकाल कहा गया है। इस काल का आरम्भ मौर्य्य-साम्राज्य के अन्त से होता है और वह मुसलिम युग के पहले तक चलता रहता है। इस काल में शुंग वंश, गुप्त वंश एवं हर्ष के साम्राज्य बड़े ही गौरवशाली हुए और प्रायः समग्र देश में आर्य-सभ्यता का विस्तार हो गया। इस समय के भारत के विस्तार के सम्बन्ध में पुराणों ने निम्नलिखित बातें कहीं हैं—

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतंनाम भारती यत्र संततिः॥

विष्णु पुराण अंश १ अ० ३ श्लो० १

आयतो ह्याकुमार्या वै चागंगा प्रभवाच्च वै।
पूर्वे किराताः ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः

ब्रह्माण्ड पुराण अ० १६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भावार्थ यह कि समुद्र से उत्तर तथा हिमालय से दक्षिण देश को भारत कहा जाता है। उसमें भरत की संतति रहती है। यह देश गंगोत्तरी से लेकर कुमारी अंतरीप तक विस्तृत है। इसके पूरब में किरातों तथा पश्चिम में यवनों का देश है।

इसका नाम भारत क्यों है ? इसका उत्तर नीचे के श्लोकों में दिया गया है।

अथाहं वर्णयिस्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः।
भरणात् प्रजनाच्चैव मनुर्भरत उच्यते ॥
निरुक्त बचनैश्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम्।
यतःस्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः ॥

मत्स्य पुराण अ० ११४—श्लो० ५ और ६

अर्थात् इस देश की प्रजा भरत की संतान कही जाती है। कारण यह है कि प्रजा के उत्पन्न करने और उसका पालन करने के कारण स्वयं मनु ही भरत कहे जाते हैं। इसीलिए उनकी संतान का देश भारत कहा जाता है। इस देश के निवासी स्वर्ग, मोक्ष तथा इनके मध्य की दशाएँ अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त कर सकते हैं।

इस देश के भारत कहलाने का दूसरा कारण यह है कि मनु के पुत्र प्रियव्रत के दश पुत्र हुए जिनमें से तीन ने तो शासन करना अस्वीकार कर दिया ; क्योंकि वे योग-साधन के प्रेमी थे। शेष सातों में से प्रत्येक को एक-एक द्वीप शासन के लिए बाँट दिया गया। इनमें से अग्नीध्र को जम्बू द्वीप मिला।

अग्निपुराण के अनुसार अग्नीध्र के पुत्र ऋषभ की पत्नी मरुदेवी थीं, जिनकी सन्तान सम्राट् भरत थे। इनके नाम से ही यह भारत कहलाने लगा।

( देखिए भरताद् भारतं-वर्षम् ) अग्निपुराण अ० १११

भरत की २३वीं पीढ़ी में विश्वज्योति और उनके ९९ भाई हुए, जिन्होंने इस देश की इतनी उन्नति की कि यह भारतवर्ष कहलाने लगा। अग्निपुराण का यह कथन गरुड़पुराण, ब्रह्मपुराण तथा लिङ्गपुराण भी मानते हैं ; किन्तु उनके अनुसार अग्निपुराण की वंशावली में कुछ गड़बड़ी है। उनके अनुसार मनु के पुत्र प्रियव्रत, प्रियव्रत के अग्नीध्र—अग्नीध्र के नाभि और नाभि तथा उनकी पत्नी मरुदेवी के पुत्र ऋषभ हुए। इन्हीं ऋषभ नामक योगी राजर्षि के प्रतापी पुत्र भरत हुए जिनके नाम पर यह देश भारत कहलाने लगा। प्रमाण के लिए निम्न श्लोक देखिये।

हिमाद्रेः दक्षिणं वर्षं भरतायन्यवेदयत् ।
तस्मात्तु भारतंवर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥

लिं० पु० अ० ४७—श्लो० २३-२८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अर्थात् ऋषभ देव ने हिमालय के दक्षिण का देश भरत को दिया। अतएव उन्हीं के नाम से पण्डित लोग वह देश भारत समझते हैं। पौराणिकों ने समग्र पृथ्वी को जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक, और पुष्कर इन सात द्वीपों में बाँटा है। जम्बूद्वीप के इलावृत, भद्राश्व, हिरण्मान, भारत, हरि, केतुमाल, चम्पक, कुरु तथा किंपुरुष ये नव खंड बताये हैं। भारत इन्हीं द्वीपों में से एक है, और भरत की संतानों की निवास-भूमि होने के कारण भारतवर्ष कहलाता है।

इसकी महिमा विश्व के सभी देशों से बढ़कर है। अन्यान्य देश भोग-भूमि कहे गये हैं; किन्तु यह कर्मभूमि है, यहाँ जन्म प्राप्त करना हँसी-खेल नहीं। विष्णु-पुराण कहता है।

अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।
कदाचित् लभते जन्तु मांनुष्यं पुण्य संचयात्॥

विष्णु पु० अं० २ अ० ३ श्लो० २३

भावार्थ यह है कि इस देश में सहस्रों सहस्र जन्म के बाद बहुत पुण्य-संचय करके जीव मनुष्य का जन्म पाता है। औरों की तो बात ही क्या, देवगण भी यहाँ मानव-जन्म पाने के लिए तरसते रहते हैं।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरास्ते।

वि० पु० अं० १ अ० ३ श्लो० २४

कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात्।
क्षणायुषां भारत-भूजयो वरम्॥
क्षणेन मर्त्येन कृतः मनस्विनः
सन्न्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः॥

भागवत पु० स्कं० ५ अ० ४९ श्लो० २३

अर्थात् देवता भी यह गीत गाया करते हैं कि भारत भूमि के निवासी धन्य हैं। वही भूमि स्वर्ग और अपवर्ग का मार्ग है। वहीं के निवासी आगे चलकर देवता होंगे या मोक्ष प्राप्त करेंगे।

जिन लोकों में जाकर लोग एक कल्प तक भी जीवित रहते हैं वहाँ भी जाना अच्छा नहीं—क्योंकि वहाँ जाने पर एक कल्प के बाद ही सही, किन्तु पुनर्जन्म अवश्य होगा। परन्तु भारतवर्ष में जन्म लेकर एक मुहूर्त भी भगवान् को अपने कर्म समर्पित कर और उनका ध्यान कर जीव सदा के लिए मुक्त हो सकता है।

इस समय के भारत का विस्तार विष्णुधर्मोत्तर पुराण के गिनाये हुए प्रान्तों से समझा जा सकता है। पांचाल, कुरु, मत्स्य, यौधेय, पटच्चर, शूरसेन, अंजन,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



पन्न, सुह, मगध, चेदि, काशी, विदेह, कोशल, कलिंग, वङ्ग, पुण्ड्र, विदर्भ, मूलक, विन्ध्य-प्रदेश, पुलिंद, अश्मक, जीमूत, नरराष्ट्र, कर्णाटक, भोजकट, अम्बष्ठ, द्रविड़, नाग, कम्बोज, स्त्रीमुख, शक, स्त्रीराज्य, सिन्ध, म्लेच्छ, नास्तिक्य, यवन, पट्टमान, औषध, मांडव्य, तुषार, मुलिक मुख, खश, महाकेश, महानासा, लम्पग, तालनाग, गान्धार, हिमालय-प्रान्त, त्रिगर्त, मीन, कौभूत, ब्रह्मपुत्र, सतीगण, अभिसार और कश्मीर।

इस सूची में कुछ ऐसे प्रान्त हैं जिनका आधुनिक नाम नहीं मालूम है, फिर भी इससे एक बात निश्चित है कि भारत को पौराणिकों ने अपने वृहत्तर रूप में देखा था और उन सब पर अपनी संस्कृति की छाप डालने का सतत प्रयत्न किया था।

## मुसलिम कालीन भारत—

हिन्दू नव जागरण-काल मौर्य साम्राज्य के पतन से प्रारम्भ होकर सम्राट् हर्ष के समय तक उन्नति करता गया; किन्तु हर्ष के पश्चात् उसका ह्रास प्रारम्भ हुआ। यह पतनकाल भी ६५० ई० वर्षों से १२०० ई० तक अर्थात् ५५० वर्षों तक रहा। इस समय जो राजपूत राजे हुए वे बहादुर होते हुए भी पारस्परिक प्रेम और एकता से पराङ्मुख थे। उनकी सबसे बड़ी कमजोरी थी विलासिता। आसाम, नेपाल और कश्मीर की तो बात ही नहीं, वे सिन्धु और पश्चिमी पंजाब भी खो बैठे। यहाँ तक कि ईसा की बारहवीं सदी के अन्त में उन्होंने दिल्ली और कन्नौज भी खो दिये। मुसलमान बादशाहों ने दिल्ली के सिंहासन को छीन तो लिया, पर वे निश्चिन्त होकर कभी शासन न कर सके—और न तो उनका साम्राज्य कभी मौर्य, शुङ्ग या गुप्त-साम्राज्य के समान समृद्ध, सुखी तथा विस्तृत ही हो सका। अन्त में फूट और विलासिता के शिकार होकर तथा महाराणा प्रताप, राजा छत्रसाल तथा छत्रपति शिवाजी के आक्रमणों से जर्जर होकर वह भी नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इस समय एक बार और हिन्दू-राष्ट्र का नवजागरण महाराष्ट्र जाति की छत्रच्छाया में होने ही वाला था कि बीच में विलायती जातियों ने सहसा प्रकट होकर उसके अंकुर कुचल डाले। इन जातियों में दो प्रमुख थीं—फ्रांसीसी और अँग्रेज। अँग्रेज अधिक शक्तिशाली और कूटनीतिज्ञ निकले। अतः १७५७ ई० से ही जड़ जमाते हुए १९४७ तक उन्होंने एक विशाल साम्राज्य बना रक्खा था। मुसलिम युग में भारत का नाम हिन्दुस्तान रक्खा गया था, यथार्थ में हिन्दू शब्द सिन्धु का फारसी रूप है और 'स्तान'—'स्थान' का अपभ्रंश है। सिन्धु के पूर्व रहनेवाली जाति का नाम विदेशियों ने हिन्दू रक्खा था, अतः हिन्दुओं के स्थान को हिन्दुस्तान कहना उचित ही था। मुसलिम राज्य का जो विस्तार अधिक-से-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


अधिक मुगल शासन-काल में था उसमें निम्नाङ्कित प्रदेश सम्मिलित थे :—

काबुल, पंजाब, कश्मीर, मुल्तान, दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद, अजमेर, गुजरात, मालवा, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, खानदेश, बरार और अहमदनगर।

## ब्रिटिश काल :—

अँग्रेजी राज्य की बात तो अभी कल की है। इसका विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं। इस राज्य में समग्र भारत बलुचिस्तान, सीमाप्रान्त, बर्मा, तथा सीलोन तक सम्मिलित थे। इन प्रान्तों के अतिरिक्त अफगानिस्तान, कश्मीर, नेपाल, भूटान, इत्यादि देशों पर भी अँग्रेजों का विशेष प्रभुत्व था; किन्तु इतना बड़ा साम्राज्य अधिकृत कर के भी वे जनता की अनुमति के बिना उसपर शासन नहीं कर सके। यह आज के युग और जन-जागरण के प्रभाव की प्रबलता का सूचक है।

## आधुनिक काल—

जाते-जाते भी अँग्रेज इस देश में पूरी-पूरी फूट पैदा कर गये हैं। भारत के कुछ प्रान्तों-जैसे सीमाप्रान्त पच्छिम पंजाब, बलुचिस्तान, सिन्ध, पूर्व बंगाल और आसाम का कुछ भाग राष्ट्रीय मुसलमानों के विरोध करने पर भी वे शासन करने के लिए मुसलिम लीग को देते गये हैं। इन प्रान्तों का समूह 'पाकिस्तान' कहलाता है। इन प्रान्तों के दो भाग हैं—पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान।

पश्चिमी पाकिस्तान में तो हिन्दू प्रायः हैं ही नहीं, पूर्वी पाकिस्तान में भी उनका जीवन सर्वथा निरापद नहीं है। इधर भारत के मुसलमान, हिन्दुओं से भी बढ़कर सुखी और स्वाधीन हैं। वे प्रत्येक प्रान्त के मंत्रिमंडल में तो हैं ही अखिल भारतीय मंत्रिमंडल में भी उनके दो मंत्री हैं जिनमें से मौलाना अबुलकलाम आजाद तो समग्र भारत के शिक्षा-मंत्री ही हैं।

कश्मीर की समस्या अभी उलझी ही हुई है। अँग्रेज और अमेरिकन उसको अपने दाँव-पेच का अखाड़ा बनाये हुए हैं। इस देश का नाम अँग्रेजी में इण्डिया ही रक्खा गया था जो इंडस अर्थात् सिन्धु शब्द से बना है। आज यह देश 'भारत' के नाम से प्रसिद्ध है; किन्तु अविभक्त भारत से भिन्नता दिखलाने के लिए इसको 'भारतीय संघ' कहा जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# वैदिक साहित्य

ऋग्वेद—भारतीय ऋषियों ने प्रकृति की सारी शक्तियों में पुरुष ( ब्रह्म ) की सत्ता देखी। उन्हें सारा जगत एकमात्र ब्रह्म की विभूतियों से परिपूर्ण दिखाई पड़ा। अखिल-विश्व-व्यापी परमात्मा के प्रतीक पृथ्वी पर अग्निदेव माने गये। इसीलिए अपनें उपभोग्य पदार्थों में से कुछ अंश परमात्मा को समर्पित करने के विचार से ऋषियों ने उन्हें अग्निदेव को समर्पित करना आरम्भ किया। यज्ञों की उत्पत्ति का यही मूल कारण है। अग्नि में हवन करने के पूर्व ब्रह्म को या ब्रह्म के भिन्न-भिन्न अंग देवों को यज्ञ में बुलाने के लिए कुछ आह्वानात्मक मन्त्र उच्चारण करने की आवश्यकता थी। इन्हीं मन्त्रों से ऋग्वेद का स्वरूप निर्मित हुआ। यज्ञों की विधियों के वर्णन से यजुर्वेद बना। यज्ञों में संगीतपूर्ण मन्त्रों के पाठ की आवश्यकता हुई। ऋग्वेद के संगीतपूर्ण पद सामवेद में रक्खे गये। इस प्रकार वेदत्रयी का निर्माण हुआ। आगे चलकर इन्हीं के आधार पर दार्शनिक तत्त्वों एवं तन्त्रमन्त्रों की व्याख्या करनेवाले मंत्रों से अथर्ववेद बना। इस प्रकार वेद अर्थात् ज्ञान एक होकर भी ऋक्, यजु, साम एवं अथर्व इन चार रूपों में प्रकट हुआ। इन्हें ही वेदों की संहिताएँ कहा जाता है। वेदों को संहिता के रूप में विभाजित करने का कार्य महर्षि वेदव्यास ने किया। यज्ञों की विधियों, यज्ञ करने से लाभ इत्यादि की व्याख्या से पूर्ण ग्रंथ ब्राह्मण कहे गये। ब्रह्म के स्वरूप की मीमांसा एवं उनकी प्राप्ति के साधन पर विचारकरनेवाले ग्रंथ आरण्यक और उपनिषद् कहे गये। इस प्रकार सारा वैदिक साहित्य संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् इन चार भागों में विभक्त हुआ। जिनमें शीर्षस्थान ऋग्वेद का है।

वैदिक साहित्य के अध्ययन में सहायता देने के लिए छन्द, ज्योतिष; व्याकरण, निरुक्त, शिक्षा एवं कल्प नामक ग्रंथों की सृष्टि हुई। इन ग्रंथों की संज्ञा वेदांग हुई और विशाल वैदिक साहित्य से प्राचीन संस्कृत भाषा समृद्ध और गौरवशालिनी बन गयी। यह ऋग्वेद दश मंडलों में विभक्त है। प्रत्येक मंडल में कतिपय अनुवाक्, प्रत्येक अनुवाक् में कतिपय सूक्त, और प्रत्येक सूक्त में कतिपय मन्त्र हैं। अध्ययन की सुविधा के लिये वेदों को अष्टक, अध्याय, वर्ग और मन्त्र के रूप में बाँटा गया है।

शौनक ऋषि के अनुसार समग्र ऋग्वेद में १०५८०½ मंत्र, १५३८२६ शब्द और ४३२००० अक्षर हैं। चौदह प्रधान छन्दों का उसमें प्रयोग हुआ है। ऋषियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


को वेदमन्त्रों की अनुभूति मात्र हुई है। केवल भाषामात्र उनकी है। अर्थ ज्ञानस्वरूप ब्रह्म है। इसलिए वे इन मन्त्रों के स्रष्टा नहीं द्रष्टा हैं। इन मंत्रद्रष्टाओं में गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज और वशिष्ठ के नाम उल्लेखनीय हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों में जिन देवताओं की स्तुतियाँ हैं उनमें इन्द्र, वरुण, अग्नि सोम, सविता और विष्णु प्रधान हैं। ये सभी एक ही ब्रह्म की विभिन्न विभूतियाँ हैं। प्रत्येक ऋषि मनुष्य है। अपनी समाधि अवस्था में अपने वातावरण से ऊपर उठकर वह वेदमन्त्रों की रचना करता था। किन्तु मनुष्य स्वभाव के कारण वह बहुत-सी आख्यायिकाओं, घटनाओं और समस्याओं का वर्णन वेद में अंकित कर देता था। इस प्रकार वेद विशुद्ध ज्ञानात्मक होने पर भी कितनी ही कथाओं के भंडार बन गये हैं। ऋग्वेद के धर्म का स्वरूप व्यावहारिक है। वह सर्वोपयोगी है। वह समग्र मानवता का धर्म है। वह देश और काल के बंधन से रहित है।

कात्यायन ऋषि ने वेद के देवता, छन्द और ऋषि का अर्थ इस प्रकार किया है—यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता। यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः। अर्थात् जिनके द्वारा मन्त्र कहे गये हैं वे ऋषि, मंत्र में जिनकी स्तुतियाँ हैं वे देवता, तथा अक्षरों का परिमाण छन्द कहलाता है। अर्थज्ञान की लालसा रखनेवाले ऋषि देवताओं का चिन्तन छन्दों के द्वारा किया करते थे। ऋषि का यथार्थ अर्थ है द्रष्टा अर्थात् देखनेवाला। इस सम्बन्ध में सायणाचार्य कहते हैं—अतीन्द्रियस्य वेदस्य परमेश्वरानुग्रहेण प्रथमतो दर्शनाद् ऋषित्वम्। अर्थात् अतीन्द्रिय वेद ( ज्ञान ) का परमेश्वर के अनुग्रह से प्रथम दर्शन करने के कारण ये ऋषि या द्रष्टा कहे गये हैं।

वैदिक देवताओं में अग्नि ही सर्वप्रधान हैं; क्योंकि वे यज्ञ के आधारस्वरूप हैं। वे ही सभी देवताओं के पास आहुतियाँ पहुँचाते हैं। उनके बिना देवों और मानवों का सम्बन्ध ही असम्भव है। वे अपने तीन रूपों में तीनों लोकों में निवास करते हैं। पृथ्वी पर अग्नि, आकाश में विद्युत्, तथा स्वर्ग में सूर्य वही हैं। अग्नि ब्रह्म के तेज के प्रतीक हैं; अतः सर्वश्रेष्ठ हैं। वैदिक देवताओं में द्वितीय स्थान इन्द्र का है। समग्र ऋग्वेद के चौथाई मन्त्रों में केवल इन्द्र की प्रशंसा है। इन्द्र ब्रह्म के पराक्रम के प्रतीक हैं। वेदों के अनुसार वे पृथ्वी और द्यौः से उत्पन्न तथा जन्मकाल से ही सोमरस का पान करनेवाले हैं। वे परम प्राचीन होने पर भी युवा, शक्तिशाली, युद्धप्रिय, अक्षय, सर्वजयी, असीम बुद्धि-सम्पन्न तथा सर्वदा अजेय हैं। उनके अंग सुंदर हैं एवं वे शिरस्त्राण धारण करते हैं। उनकी भुजाएँ सुनहली हैं और वे वज्रधारी हैं। उनके घोड़े हरे रंग के और रथ सोने का है। वे देवराज हैं। विष्णु के साथ रहकर वे संसार के सभी उपद्रवी-राक्षसों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


का विनाश करते हैं और तीनों लोकों में सुशासन एवं सुव्यवस्था कायम रखना उनका काम है।

वृत्र, अहि, शुष्ण, नमुचि एवं संवर नामक असुरों का उन्होंने अपने पराक्रम से विनाश कर डाला और लोकों को उनके उत्पीड़न से बचाये रक्खा। इन दोनों के अतिरिक्त विष्णु, सविता और वरुण भी अत्यन्त प्रभावशाली देवता हैं। यद्यपि इनके संबंध में थोड़े ही मंत्र कहे गये हैं तथापि उन्हीं से इनका अद्भुत प्रभाव प्रकट है।

ऋग्वेद ने उषा सुन्दरी के निखरे सौन्दर्य का अत्यन्त मनोहर चित्र खींचा है। अतएव वह धार्मिक ही नहीं उच्चकोटि का साहित्यिक ग्रंथ भी है। ऋग्वेद[1] से यह प्रकट है कि उसके द्वारा वर्णित देवताओं का अंतिम तत्त्व एक ही है। उसे विद्वानों ने भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। इन्द्र, अग्नि, वरुण और मरुत तथा अन्यान्य देवता उस एक ही ब्रह्म के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। इसी प्रकार हंसवती ऋचा[2] में भी एक ही तत्त्व का भिन्न-भिन्न रूपों में भिन्न-भिन्न स्थानों में निवास बताया गया है।

इन मंत्रों से स्पष्ट है कि वेदों ने परमात्मा को सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी बताया है। उनके अनुसार एक ही पुरुष पूर्ण एवं सनातन है। वही सत, वही चित और वही आनन्द है। इसी ब्रह्म और उसकी सृष्टि की व्याख्या करना ऋग्वेद का लक्ष्य है।

## सामवेदः—

वेदानां सामवेदोऽस्मि। अर्थात् मैं वेदों में सामवेद हूँ।

—श्रीकृष्ण ( गीता अध्याय १०, श्लो० २२ )

ऋग्वेद को सभी वेदों से महत्त्वपूर्ण बताया जा चुका है। निस्संदेह, वह सर्वप्रधान है भी। इसका ज्वलंत प्रमाण यही है कि सामवेद में केवल ७५ मंत्रों को छोड़कर शेष सभी ऋग्वेद के ही हैं। फिर ऐसी दशा में भगवान् ने वेदों में सामवेद को ही अपनी आत्मा बतलाकर उसे प्रधानता क्यों दी? इसका उत्तर देना कठिन है। पर हम कुछ अनुमान मात्र कर सकते हैं। मेरा अनुमान यह है कि या तो सामवेद ऋग्वेद से प्राचीन है या उसमें ईश्वर की, ताल-लय-समन्वित गीतों में स्तुतियाँ रहने के कारण उसकी प्रधानता है। किंतु, जहाँ कहीं वेदों की गणना की गयी है, वहाँ ऋग्वेद का ही प्रथम नाम लिया गया है। अतः सामवेद ऋग्वेद से प्राचीन नहीं मालूम पड़ता। केवल भवविभूति भट्टाचार्य अपनी साम-

---

१ ऋ० मं० १ सू० १६४ मंत्र ४६। २ ऋ० मं० ४ सू० ४० मंत्र ५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



वेद संहिता के छंद-आर्चिक की भूमिका में सामवेद को ऋग्वेद से प्राचीन बतलाते हैं। वे कहते हैं :—

"आगे की भूमिका में मैं सामवेद की प्राचीनता का प्रतिपादन करूँगा। इसके लिए दोनों वेदों के मंत्रों की तुलना करूँगा और अपनी टिप्पणियों में इस बात की ओर मैंने इंगित भी कर दिया है।"

मुझे यह भूमिका दृष्टिगोचर न हुई; अतः उनके प्रमाणों के संबंध में इस समय कुछ नहीं कह सकता। मेरी समझ में सामवेद का महत्त्व उसकी प्राचीनता और मौलिकता में नहीं, वरन् संगीतात्मकता और सरसता में है।

प्राचीन अनुश्रुतियों के अनुसार सामवेद की एक सहस्र शाखायें थीं। इनमें से आजकल केवल तीन ही प्राप्य हैं—कौथुम शाखा बंगाल और गुजरात में, जैमिनीय शाखा कर्णाटक में तथा रणायनीय शाखा महाराष्ट्र और मद्रास में। कौथुम शाखा भी यथार्थतः रणायनीय ही का एक भेद है। अतः आजकल मुख्य शाखाएँ रणायनीय एवं जैमिनीय ही हैं। इनमें पाठ भेद होना तो सर्वथा स्वाभाविक ही है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सामवेद कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं। इसके अधिकांश मंत्र ऋग्वेद के ही हैं। यज्ञ के समय चार पुरोहितों को चार काम सौंपे जाते थे। 'होता' ऋग्वेद के मंत्रों का उच्चारण करता था और अग्नि में बलि देता था। 'उद्‌गाता' बैठकर सामवेद के संगीत गाता था। यजुर्वेद का ज्ञाता 'अध्वर्यु' वेदी की रचना करता था, अग्नि प्रज्वलित करता था तथा अन्यान्य यज्ञीय सामग्रियों को एकत्र करता था। अथर्ववेद का ज्ञाता 'ब्रह्मा' समग्र यज्ञ-विधि की देख-भाल करता था और जहाँ कहीं गलती होती थी, उसे ठीक करता था। इससे स्पष्ट है कि यज्ञ-काल में भक्ति-भाव से विह्वल होकर परमात्मा और उनकी विभूतियों का लय-ताल के साथ गान करना सामवेदियों का कर्तव्य था। इसी भक्ति-भावना और संगीत पर मुग्ध होकर 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' की घोषणा करनेवाले गीताकार ने वेदों में सामवेद को ही प्रधानता दी है।

सामवेद संहिता के दो भाग हैं—पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। पहले को छः प्रपाठकों में बाँटा गया है। इनमें से प्रत्येक में दश-दश मंत्रों के दश-दश समूह हैं। केवल अन्तिम प्रपाठकमें नव ही समूह हैं। पूर्वार्चिक को छन्द, छन्दसी या छन्दसिका भी कहते हैं। पूर्वार्चिक के छन्दों को निम्नलिखित पाँच भागों में बाँटा गया है—आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान, आरण्य और शुक्रिय। इनमें क्रमशः अग्नि, इन्द्र, मरुत तथा परब्रह्म की स्तुतियाँ हैं। अन्तिम दो आरण्य और शुक्रिय इसलिए कहे जाते हैं कि उनमें परमात्मा की स्तुतियाँ क्रमशः अरण्य एवं शुक्र के द्वारा की गयी



RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हैं। उत्तरार्चिक में कई भाग हैं, जिनमें दशरात्र, संवत्सर, ऐकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त और क्षुद्र आदि विषयों की चर्चा की गयी है। सामवेद का गान उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित से युक्त है। इसके गाने में पंचम, मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, धैवत एवं निषाद, इन सातों स्वरों का प्रयोग करना पड़ता है। मेरे पास जो सामवेद संहिता है, उसमें छंद आर्चिक में ६३०, उत्तरार्चिक में १२२३ मंत्र हैं। इस प्रकार सामवेद की मंत्र-संख्या ऋग्वेद की मंत्र-संख्या का लगभग पंचमांश है। इस वेद के विषयों के सम्बन्ध में इसके अंग्रेजी अनुवादक रेवरेण्ड जे-स्टेवेंशन का कहना है कि इस संहिता के मन्त्र सोमयाग में ही गाये जाते थे। उन विभिन्न देवताओं की इसमें प्रशंसा है जो यज्ञ में आकर उसे अलंकृत करते थे। इसके अतिरिक्त यजमानों और उनके सम्बन्धियों की समृद्धि के लिए उन देवों से इसमें प्रार्थना भी की गयी है, जो इस यज्ञ से सम्बन्ध रखते थे।

इस वेद की धर्मभावना ऋग्वेद से भिन्न नहीं। इसमें इन्द्र, अग्नि तथा पवमान आदि देवताओं की स्तुतियाँ अवश्य की गयी हैं; पर यहाँ भी भिन्नता में एकता की भावना वर्त्तमान है। कुछ उदाहरण लेने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी:—

यज्जायथा अपूर्व्यं मघवन् वृत्रहत्याय।
तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तम्भसा उतोदिवम्॥

हे अनादिरूप इन्द्र, वृत्र को मारने ने लिए ज्योंही आपका जन्म हुआ, त्योंही आपने पृथ्वी और आकाश दोनों ही को दृढ़ कर दिया।

—(सामवेद—६-२-७)

त्वमिमा ओषधीः सोमविश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वंगाः।
त्वमाततनोरुर्वान्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वितमो ववर्थ॥

हे सोम! इस भूमि पर वर्त्तमान सभी औषधियों को तूने उत्पन्न किया। तू ने ही जल और गौओं को उत्पन्न किया। तू ने ही विस्तृत व्योम को फैलाया और तू ने ही सारे अन्धकार को अपनी ज्योति से नष्ट किया।

—(सामवेद—६-३-३)

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मेचक्षुरमृतं म आसन्।
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वं॥

मैं जन्म से ही परमात्मस्वरूप अग्नि हूँ। घृत (प्रकाश) ही मेरा नेत्र है, नाना कर्म-फल-रूपी अमृत मेरे मुख में है। अपने को तीन रूपों में विभक्त करके जगत् को रचनेवाला जगत्प्राण मैं ही हूँ। वायुरूप में अंतरिक्षव्यापी मैं ही हूँ। अजस्र ज्योतिरूपी आदित्य मैं ही हूँ। और जो कुछ भोग्य-पदार्थ है, वह मैं ही हूँ।

—(सामवेद—६-३-१२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ऊपर इन्द्र, अग्नि और सोम, इन तीन देवों का वर्णन उद्धृत किया गया है। इन तीनों देवताओं को सामवेद का सर्वप्रधान देव माना जाता है। इन तीनों के स्वरूपों पर ध्यान दीजिये।

इन्द्र की स्तुति में 'अपूर्व' शब्द पर, सोम की स्तुति में 'त्वम् विश्वाः ओषधीः अजनयत्' पर तथा अग्नि की स्तुति में 'त्रिधातु' शब्द पर ध्यान दीजिये। इन्द्र के पहले कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ, तो सर्वप्रथम उत्पन्न होनेवाला होने से वह ब्रह्म ही है। सारी ओषधियों को जन्म देनेवाला सोम 'ब्रह्म' के सिवा और क्या है? 'त्रिधातु' शब्द की व्याख्या के लिए सायणभाष्य ही उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा। वह यों है—त्रिधातुः प्राणापान व्यानात्मकः त्रिधा वर्त्तमानोऽर्को' अर्चनीयो यः प्राणोऽस्ति सोऽप्यहमेवास्मि। तथा रजसः अन्तरिक्षस्य—विमानः विशेषेण माता (परिच्छेता) वायुश्चाहमस्मि किं च अजस्रं ज्योतिः नैरन्तर्येण तापकः सूर्यश्चाहमस्मि। किं बहुना, आज्यपुरोडाशादिरूपं यदेतद्धविरस्ति तदुपलक्षितं तत्सर्वमप्यहमस्मि। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इति श्रुतेः तमनेकधारूनैः सर्वात्मकत्व प्रतिपादनेन, परब्रह्मत्वमुक्तं भवति। अर्थात् प्राण, अपान एवं व्यान-स्वरूपी त्रिधा अर्चनीय प्राण मैं ही हूँ। आकाश का विशेष रूप से नापनेवाला वायु मैं ही हूँ। और निरन्तर तपनेवाला सूर्य मैं ही हूँ। और अधिक क्या कहा जाय, हवि-रूप में भोग्य-पदार्थ भी मैं ही हूँ। यहाँ समग्र विश्व ब्रह्म है, यही सिद्ध होता है। अग्नि अनेक रूप में वर्त्तमान रहकर सर्वात्मक रूप में प्रतिपादित होता है; अतः इसका परब्रह्म होना सिद्ध है। उपर्युक्त मंत्रों पर विचार करने से यह सिद्ध हो जाता है कि इंद्र, सोम और अग्नि केवल भिन्न-भिन्न नाम मात्र हैं। उनका अधिष्ठाता एक ही तत्त्व है और वह है परब्रह्म। इस प्रकार सामवेद भी ऋग्वेद के समान भिन्न-भिन्न देवों के रूप में केवल एक ही तत्त्व की अर्चना करता है और वह है परम पुरुष या ब्रह्म।

इस अद्वैतवाद का बीज हमें ऋग्वेद में अनेक स्थलों में प्राप्त होता है। देवों के बाह्य एवं अंतः स्वरूप के रहस्य की व्याख्या निम्नलिखित मंत्र में प्राप्त होती है।

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्॥

अर्थात् मानव-शरीर को जलानेवाले अग्निदेव दूर चले जायँ। वे अश्रद्धेय वस्तु का वहन करनेवाले हैं। ये अग्नि उन लोगों के पास जायँ, जिनके देवता यम हैं। यहाँ भी एक अग्नि हैं। ये ही विचार-पूर्वक देवों के पास हमारा हवि ले जायँ।

(ऋग्वेद दशम मंडल, सूक्त १६ मंत्र ९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



यहाँ अग्नि के दो स्वरूप बतलाये गये हैं। उनका वाह्यरूप या भौतिकरूप जो वस्तुओं को जलाता है, इस मंत्र के द्रष्टा को अभीष्ट नहीं। वह तो उस अंतः स्वरूप की आकांक्षा करता है, जो अग्नि के वाह्यरूप का कारण है। सारांश यह कि प्रत्येक देवता का अंतःस्वरूप एक ही है। केवल उनके भौतिकरूप भिन्न-भिन्न हैं। देवताओं के दृश्य भौतिकरूप के भीतर अदृश्य अभौतिक या आध्यात्मिक स्वरूप की भावना ऋग्वेद एवं सामवेद दोनों में ही समान रूप से पायी जाती है और यही वेदांत के अद्वैतवाद का मूल है। निष्कर्ष यह कि शुद्ध ब्रह्म दृश्य और द्रष्टा की समष्टि अथवा उसके कारण रूप हैं। वेदों का साहित्यिक सौन्दर्य असीम है; किन्तु उसे मनुष्य दीर्घकालीन अध्ययन के उपरांत ही प्राप्त कर सकता है। साधारण संस्कृत-ज्ञान से उसका रस लेशमात्र भी नहीं मिलता; अनुवाद में तो वह आ ही नहीं सकता। भला जीवन्मुक्त त्रिकालदर्शी महात्माओं की रचनाओं का मर्म विषयासक्त, अज्ञ एवं अल्प-बुद्धि मनुष्य अपनी गिनी मात्राओं में कैसे व्यक्त करेगा ? फिर भी, सर्वव्यापी पुरुष ( ब्रह्म ) की महिमा के संबंध में पाँच मंत्रों का पद्यात्मक अनुवाद पाठकों के मनोविदोनार्थ यहां उपस्थित किया जाता है:—

इस जड़-चेतन-मय-जग में, है एक ज्योति ही छायी।
उसके सिर, लोचन, पग जो, अति ही असंख्य हैं भाई !
सारा ब्रह्मांड उसी में, उसके ऊपर वह छायी।
प्रत्येक जीव के उर में, मैंने उसकी छवि पायी॥
है एक भाग ही उसका, इस सकल विश्व में पाया।
जो जड़-चेतन वन सब में, है एक समान समाया॥
जो हुआ कभी था, होगा, या आज बना है जग में।
प्रज्वलित दीखती प्रतिपल, वह एक ज्योति ही सब में॥
सारी जगती महिमा है, उस एक पुरुष की न्यारी।
इससे विभिन्न सत्ता है, उसकी विशाल सुखकारी॥
जग-कार्य उसी कारण का, यह व्यक्त रूप उसका ही।
वह निर्मल शुद्ध सरस है, इच्छानुकूलतनुग्राही।
उससे सारी रचना है, वह है सब का हितकारी।
शतशः प्रणाम उसको हैं, हो तन्मय बुद्धि हमारी॥

—( सामवेद, पूर्वार्चिक ५—४—२ से ७ तक )

## यजुर्वेदः—

यजुर्वेद की दो संहिताएँ हैं—शुक्ल और कृष्ण। कृष्ण संहिता प्राचीन तथा शुक्ल संहिता उसकी अपेक्षा अर्वाचीन है। किसी-किसी के मत से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



तो वह अथर्ववेद से भी पीछे की है। क्योंकि अथर्व के मन्त्र उसमें संगृहीत हैं।[1] कृष्ण यजुर्वेद में बहुत-सी ऋचाएँ ऋग्वेद तथा कुछ अथर्ववेद से ली गयी हैं। ये ऋचाएँ छन्दोबद्ध हैं। इन मंत्रों या ऋचाओं के लगभग बराबर ही 'यजुः'—अर्थात् गद्यात्मक यज्ञ-नियमों (Prose Sacrificial Formulas) की संख्या है। साथ-ही-साथ ब्राह्मणों अर्थात् ऐसे व्याख्यानों का समावेश भी उसमें है जो उसके मंत्रों की कभी व्याख्या करते हैं और कभी उसका ठीक-ठीक उपयोग बतलाते हैं। इस प्रकार यह संहिता भिन्न-भिन्न प्रकार की बातों से भरी है और इसका समझना छात्रों के लिए कठिन है। इसीलिए यह कृष्ण संहिता के नाम से प्रसिद्ध है। पर शुक्ल यजुर्वेद में से ब्राह्मण भाग शतपथ ब्राह्मण के रूप में एकदम पृथक् कर दिया गया है। अतः उसका समझना आसान है। इसीलिये वह संहिता शुक्ल या प्रकाशपूर्ण कही गयी है।

कृष्ण यजुर्वेद की कई शाखाएँ हैं, जिनमें कठ, कपिष्ठल, कालाप या मैत्रायणीय तथा तैत्तिरीय आदि प्रसिद्ध हैं। किन्तु, जिस प्रकार ऋग्वेद की सभी शाखाओं में शाकल शाखा का ही सबसे अधिक प्रचार है उसी प्रकार यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का ही आधुनिक काल में सर्वाधिक प्रचार है। मैत्रायणी संहिता श्री श्रोडर (Shroeder) के द्वारा सन् १८८१ से १८८६ तक में प्रकाशित की गयी थी। इसमें ४ काण्ड और ५४ प्रपाठक या अध्याय हैं। उन्होंने ही काठक संहिता भी प्रकाशित की थी। इन दोनों संहिताओं में काफी पाठ-भेद हैं। तैत्तिरीय संहिता भिन्न-भिन्न स्थानों से कई बार प्रकाशित हुई है। इसमें ७ काण्ड और ४४ प्रपाठक हैं और यह कदाचित् मैत्रायणी संहिता से अर्वाचीन है। इसका प्रत्येक प्रपाठक कई अनुवाकों में विभक्त हैं। कात्यायन की सर्वानुक्रमणी के समान कृष्ण यजुर्वेद की कोई सूची न होने के कारण दोनों का यथार्थ भेद बतलाना कठिन है। किंतु तैत्तिरीय संहिता की पद संख्या बतलायी जा सकती है। इसकी पद-संख्या ११०२९६ तथा अनुवाक-संख्या ६५१ है।

डाक्टर मैकडानेल के अनुसार ऋग्वेद का सम्पादन जिस भूमि में हुआ था उससे पृथक् भूमि में यजुर्वेद का सम्पादन हुआ था तथा दोनों में भिन्न-भिन्न सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का चित्र मिलता है। किंतु उनके इस कथन में केवल आंशिक सत्य है। ऋग्वेद-काल में ही आर्य यमुना के निम्न भाग तथा सरयू तट तक बस चुके थे। मत्स्यों और चेदियों का उल्लेख ऋग्वेद में भी स्पष्ट रूप में किया गया है। ऋग्वेद-काल में ही चंद्रवंशी आर्य सारस्वत प्रदेश में बस चुके थे तथा चेदि और मत्स्य देशों में प्रविष्ट हो चुके थे। ऋग्वेद-काल के

1. The white Yajurveda. by griffith Introduction XVIII.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अंतिम भाग में आर्य-सभ्यता का केन्द्र सारस्वत-प्रदेश ही था और उक्त वेद में सरस्वती का वर्णन कतिपय सूक्तों में पाया जाता है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज से लगभग ३१०० वर्ष पूर्व वेदव्यास के द्वारा ऋक्, साम एवं कृष्ण यजुर्वेद का संपादन कुरु-पंचाल देश में किया गया था।

पर कुछ लोग यह कह सकते हैं कि ऋग्वेद की भाषा से यजुर्वेद की भाषा नवीनतर है; किंतु इस तर्क में भी विशेष तत्त्व नहीं। कारण यह है कि ऋग्वेद के अन्तिम सूक्तों की भाषा यजुर्वेद की भाषा से विशेष प्राचीन नहीं। इसके अतिरिक्त पद्य की भाषा गद्य की भाषा से सदा प्राचीन रहती है। ऋग्वेद केवल पद्यमय है; अतः उसकी भाषा तो प्राचीन होनी ही चाहिये। गद्य प्रधान होने के कारण समय-समय पर परिवर्तित होती हुई यजुर्वेद की भाषा यदि अपना प्राचीन रूप खो दे तो आश्चर्य ही क्या है। ऋग्वेद की सभ्यता और यजुर्वेद की सभ्यता में बहुत कुछ साम्य है। देवता वे ही हैं; पर अन्तर यह है कि उषा का वर्णन अब नहीं मिलता और रुद्र की लोकप्रियता बढ़ी हुई दिखाई पड़ती है। यजुर्वेद में तो एक समग्र अध्याय ही रुद्राध्याय है और रुद्र का रूप सर्वदेवमय एवं सर्व शक्तिमान् प्रतीत होता है। अतः साम्य अधिक है; पर अन्तर भी कुछ-न-कुछ अवश्य ही है यह कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

यजुर्वेद का प्रधान लक्ष्य है यज्ञ-संपादन की विधियों का सांगोपांग वर्णन। दैनिक, पाक्षिक, मासिक एवं वार्षिक यज्ञों की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विधियों का उल्लेख करके इसमें पूरे विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। पर इसमें नरमेध का तो नामोल्लेख भी नहीं है। हाँ, इसके अन्तिम भाग में अश्वमेध का प्रसंग अवश्य प्राप्त होता है। यह यथार्थ अश्वमेध है या सूर्योदय का आलंकारिक वर्णन, यह नहीं कहा जा सकता।

इस संहिता के विषय बड़े ही मनोरंजक और कौतूहलपूर्ण हैं। इन पर पूरा-पूरा मनन कर इनके सम्बन्ध में अन्वेषण करने की आवश्यकता है। इसमें यत्र-तत्र ऐतिहासिक राजाओं तथा घटनाओं का उल्लेख है। इसमें अश्वमेध यज्ञ के अंत में एक प्रार्थना दी गयी है, जो प्रायः सभी यज्ञों के अन्त में पढ़ी जाती है। वही प्राचीन, आर्यों की राष्ट्रीय प्रार्थना है। वह यों है—आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् अस्मिन् राष्ट्रे राजन्य इषव्यः शूरो महारथो जायताम् दोग्ध्री धेनुः वोढानड्वान् आशुः सप्तिः पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवा अस्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलिन्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्। अर्थात् हमारे ब्राह्मण-समाज में ब्रह्मतेजसम्पन्न ब्राह्मण उत्पन्न हों, हमारे राष्ट्र में क्षत्रिय धनुर्वेद में प्रवीण, वीर तथा महारथी उत्पन्न हों, गायें दूध देनेवाली हों, बैल हल खींचने में समर्थ हों,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अश्व शीघ्रगामी हों, स्त्रियाँ सुन्दर एवं सती हों, सभी वर्णों के युवक रथारोहण-निपुण, विजयाभिलाषी तथा सभाओं में भाग लेने योग्य हों, इस यज्ञ के यजमान को वीर पुत्र प्राप्त हो, आवश्यकतानुकूल वर्षा हो, ओषधियाँ फलवती हों और हमें जीविका और कल्याण की प्राप्ति हो। भला इससे अधिक किसी राष्ट्र को चाहिये ही क्या? ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णों का प्रत्यक्ष उल्लेखकर शेष बातों से अन्यान्य वर्णों की भी इच्छापूर्त्ति की कामना की गयी है। क्या आज भी यह हमारे राष्ट्र की राष्ट्रीय-प्रार्थना बनने योग्य नहीं है?

शुक्ल यजुर्वेद कृष्ण यजुर्वेद से नवीन है। शुक्ल संहिता के सम्बंध में महाभारत में एक कथा मिलती है। याज्ञवल्क्य के मामा तथा गुरु वैशम्पायन उनसे एक बार किसी कारण से रुष्ट हो गये। उन्होंने उन्हें अपना पढ़ाया हुआ ज्ञान लौटाकर अपना विद्यालय छोड़ देने का आदेश दिया। याज्ञवल्क्य ने वैशम्पायन के पढ़ाये हुए मंत्र उगल दिये जो अंगारों के समान प्रज्वलित हो उठे। वैशम्पायन के दूसरे शिष्यों ने तितिर का रूप धारण कर उन मंत्रों को ग्रहण कर लिया और तभी से उन मंत्रों का संग्रह तैत्तिरीय शाखा के नाम से विख्यात हुआ। सूर्य की उपासना कर याज्ञवल्क्य ने १५ नवीन मंत्रों की रचना की। एक नवीन विद्यालय स्थापित कर शिष्यों को पढ़ाने लगे। उन्होंने ऋग्वेद से मन्त्र लेकर उसमें अपने मन्त्र तथा कृष्ण यजुर्वेद के मन्त्र मिलाकर केवल ऋक् और यजुः भाग से पूर्ण शुक्ल संहिता की रचना की। ब्राह्मण भाग एकदम ऋचाओं से पृथक करके उसका नाम शतपथ ब्राह्मण रखा। इस प्रकार यजुर्वेद के संपादक वेदव्यास नहीं, उनके शिष्य वैशम्पायन के शिष्य एवं भागिनेय याज्ञवल्क्य हैं, अतः यह संहिता कृष्ण संहिता के पीछे की है।

इस संहिता की दो शाखायें हैं—माध्यन्दिन और काण्व। किन्तु उनमें उल्लेखनीय अन्तर नहीं प्रतीत होता। शुक्ल संहिता ४०अध्यायों में विभक्त है। इसका एक सुन्दर अँगरेजी अनुवाद महीधर भाष्य के अनुसार सन् १८९९ ई० में श्री राल्फ टी० एच० ग्रिफिथ ने किया था। उनके अनुसार इसमें १९७५ तथा चरणव्यूह के अनुसार १९०० मन्त्र हैं। कदाचित् चरणव्यूह के पीछे उसमें कुछ मन्त्र नवीन मिला दिये गये थे। डा० मैकडानेल के अनुसार इसके प्रथम १८ अध्याय ही प्राचीन हैं। पर श्रीयुत वैद्य प्रथम २५ अध्यायों को प्राचीन बतलाते हैं। इस संहिता की पद-संख्या २९६२५ तथा अक्षर संख्या ८८८७५ है। अतः इसका विस्तार कृष्ण संहिता का तृतीयांश तथा ऋग्वेद का प्रायः पंचमांश है।

इस संहिता का विषय-क्रम प्रायः कृष्ण संहिता के विषय-क्रम के समान ही है। प्रथम दश अध्यायों में पार्वण ( पाक्षिक ) यज्ञों का तथा बाद के ८ अध्यायों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



में यज्ञीय अग्नि की वेदी का वर्णन है। १६ से २१ अध्यायों में सोम अधिक पीने का प्रायश्चित्त वर्णित है। यही सौत्रामणि यज्ञ के नाम से प्रसिद्ध है। २२ से २५ अध्यायों में अश्वमेध यज्ञ की चर्चा है। शेष अध्यायों में भिन्न-भिन्न विषयों की बातें कहीं गयी हैं। १६वाँ अध्याय समूचा रुद्राध्याय है। इसमें रुद्र के शिव, ईशान एवं महादेव ये तीन नाम नहीं मिलते। लिंग-पूजा का भी उल्लेख नहीं है। ३०वें अध्याय में पुरुषमेध या नरबलि का वर्णन है। श्री ग्रिफिथ का कहना है कि अश्वमेध के समान यह भी एक आलंकारिक वर्णन है और अश्व के स्थान पर मनुष्यों को यज्ञस्तम्भ में बाँध कर फिर छोड़ दिया जाता था।[1] इस यज्ञ में पशुओं के स्थान में १८४ मनुष्य यज्ञयूप में बाँधे जाते थे। ये भिन्न-भिन्न वर्ण और पेशे के होते थे।

इस काल की यज्ञक्रिया में और ऋग्वेद काल की यज्ञक्रिया में वाह्यभेद भले ही कम हो पर आन्तरिक भेद बहुत-ही अधिक था। ऋग्वेद काल में यज्ञ क्रिया गौण थी। ऋषियों की हार्दिक भक्ति से पूर्ण स्तुतियाँ ही प्रधान थीं। थोथे कर्म-कांड ने हृदय पर अधिकार नहीं किया था। पशुवलि या तो थी ही नहीं या बहुत थोड़ी थी। पर शुक्ल यजुर्वेद-काल तक अश्वमेध और नर-मेध तक की नौवत आ पहुँची थी। अश्वमेध यज्ञ में (२३वें अध्याय के २० से ३१ मन्त्र तक में) अश्लीलता की पराकाष्ठा हो गयी है। यदि इस प्रकार का आचरण राजमहिषी द्वारा कराया जाता था तो वह यजुर्वेदकालीन आर्यों के नैतिक पतन का ज्वलंत प्रमाण है। केवल यज्ञ-सामग्री की पूर्णता तथा मंत्रोच्चारण की शुद्धता पर ही अधिक ध्यान रहता था। मन्त्रों के अर्थ और उनमें वर्णित देवों के प्रति भक्ति-भावना गौण हो चली थी। देवता भी यज्ञक्रिया के अधीन ही माने जाने लगे थे। महामहिम इन्द्र भी शतक्रतु बन चुके थे। देवों के देवत्व की यज्ञाधीनता का इससे सुंदर वर्णन क्या होगा? मन्त्रों के अर्थमाहात्म्य पर ध्यान न देकर केवल उच्चारण-शुद्धता ही माहात्म्य का कारण मानी जाने लगी थी। यजुर्वेद में अनावश्यक शब्दों का प्रचुर प्रयोग देखकर चकित रह जाना पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ कि अथर्व वेद में जादू-टोने के निरर्थक शब्दों से पूर्ण मन्त्र संगृहीत हुए। साथ ही गंभीर तत्त्वचिंतन की ओर भी लोगों की प्रवृत्ति हो गयी। कर्मकांड से विरक्त होकर लोग उसका विरोध करने लगे। निस्संदेह क्षीणप्राण हिंसापूर्ण एवं कभी-कभी अश्लील क्रिया-कलाप से ऊबकर लोगों ने ज्ञानकांड का आश्रय लिया और भगवान् बुद्ध की प्रतिक्रिया ने इसमें बहुत सहायता पहुँचाई। कर्मकांड ने विकृत होकर अपनी मृत्यु का अपने आप आह्वान किया।

1 'White yajurveda' Book the thirtieth foot note.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



## अथर्व वेदः—

अथर्ववेद अन्यान्य तीन वेदों से पीछे का है। अथर्ववेद का नामकरण एक अत्यन्त प्राचीन ऋषि के नाम पर हुआ है, जिनके संबंध में ऋग्वेद में लिखा है कि उन्होंने ही सबसे पहले अरणियों को रगड़कर अग्नि उत्पन्न की। सबसे पहले मनुष्यों और देवों में यज्ञ का संबंध उन्होंने ही स्थापित किया तथा अपनी अलौकिक शक्ति के बल से अपने विरोधी राक्षसों पर विजय प्राप्त की। इस अथर्वन ऋषि का संबंध भृगुवंशी तथा आंगिरसवंशी ऋषियों से था, और कहा जाता है कि इन्हीं लोगों को अथर्व वेद का सबसे पहले ज्ञान हुआ। इन्हीं लोगों ने इस वेद के मंत्रों का संग्रह कर इसका नाम अथर्वाङ्गिरस अथवा भृग्वङ्गिरस रक्खा। गोपथ-ब्राह्मण में यही वेद अथर्व वेद या आङ्गिरस वेद के नाम से विख्यात हुआ।

इस संहिता का एक और नाम है—ब्रह्मवेद। इसकी व्याख्या कई प्रकार से की गयी है। पहली व्याख्या यह है कि ब्रह्मवेद 'ब्रह्मा' का वेद है। ब्रह्मा यज्ञ का सर्व-श्रेष्ठ पुरोहित है, जिसका काम यज्ञ के सभी अंगों का निरीक्षण एवं सुधार करना है। दूसरे-दूसरे पुरोहित जैसे होता, अध्वर्यु और उद्गाता उसकी अधीनता में ही यज्ञ-क्रिया का सम्पादन करते हैं। दूसरी व्याख्या यह है कि ब्रह्म का अर्थ है प्रार्थना। इस प्रार्थना में ही शाप, आशीर्वाद तथा मोहन-मारणादि के लिए देवताओं से स्तुति आदि का भी अंतर्भाव समझा जाता है। तीसरी व्याख्या यह है कि यह वेद ब्रह्म (सर्व व्यापीपरमात्मा) का ज्ञान देकर जीवात्मा को जन्म-मरण से मोक्ष प्रदान करता है। अंशतः तो सभी व्याख्यायें ठीक हैं; पर दूसरी व्याख्या अधिकांश में सत्य प्रतीत होती है।

अथर्व वेद को भी कुछ लोग ऋग्वेद के समान प्राचीन बतलाते हैं; पर यह बात सर्वांश में सत्य नहीं। संभव है, अथर्व वेद की कुछ ऋचाएँ उतनी ही प्राचीन हों, जितनी ऋग्वेद की। पर, इस वेद की अन्यान्य बातें निस्संदेह बहुत पीछे की हैं और इसका संपादन भी बहुत पीछे हुआ है। दोनों संहिताओं के विषयों में बड़ा अन्तर है। ऋग्वेद में सजीव एव स्वाभाविक भावों की भरमार है। उसमें प्रकृति तथा प्रकृति में व्याप्त ब्रह्म के प्रेम की पराकाष्ठा है। किंतु अथर्व वेद में इसके प्रति-कूल भूत-प्रेतों तथा जादू-टोनों के भय का साम्राज्य है। ऋग्वेद की जनता को हम स्वतंत्र और कर्त्तव्यपरायण पाते हैं। किंतु अथर्व वेद-कालीन जनता अन्धविश्वासों की जंजीर में बेतरह जकड़ी मिलती है। पर यह भी संभव है कि इन दोनों वेदों के मंत्र समकालीन हों। ऋग्वेद जहाँ दिव्य-ज्ञान-संपन्न महर्षियों की सम्पत्ति हो, वहाँ अथर्व वेद निम्नकोटि की असभ्य या अर्द्धसभ्य जनता में प्रचलित हो। इसलिए अथर्ववेद बहुत दिनों तक वेद समझा ही न जाता था। केवल त्रयी-विद्या ही चिर-काल तक धर्म का आधार समझी जाती थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



इस विशालकाय ग्रन्थ के विषय भिन्न-भिन्न हैं। बहुत-से विषय तो हमारी समझ में आते ही नहीं, कुछ विषयों के पढ़ने में आनन्द नहीं मिलता ; पर इसमें ईश्वर के सम्बन्ध में कहीं-कहीं इतनी सुन्दर और महत्त्वपूर्ण बातें कही गयी हैं, जो सर्वथा असाधारण हैं। इसके अतिरिक्त इसमें तत्कालीन समाज के श्रम, रुचि, आशा, निराशा, दुःख और शोक के इतने सजीव चित्र मिलते हैं जो ऋग्वेद में भी नहीं मिलते। राजाओं के पारस्परिक वैमनस्य, युद्ध एवं विजयों के अतिरिक्त इसमें तत्कालीन साधारण आर्य-जीवन का जन्म से मृत्यु तक का बड़ा ही मनोहर वर्णन मिलता है। कृषकों एवं ऋषि-महर्षियों के जीवन के अतिरिक्त नारी-जीवन के कुछ वर्णन भी हमें इसमें उपलब्ध होते हैं। कहीं तो किसी युवक पर मुग्ध किसी कुमारी के मंत्र-प्रयोग मिलते हैं, कहीं पतिंवरा के प्रयत्न दृष्टिगोचर होते हैं, कहीं विवाह की बारात की सजधज का वर्णन है, कहीं विवाहित वधू का गृह-प्रवेश है, तो कहीं उसको स्वस्थ, समृद्ध एवं सुरक्षित रखने के अनेक यंत्र-मंत्रों का वर्णन है। कहीं वह अपने क्रुद्ध पति को प्रसन्न करने या बदला लेने की चेष्टा में निमग्न दीख पड़ती है, तो कहीं सौतों या पति की उपपत्नियों के नाश के लिए यत्नशील है।

अथर्ववेद का प्रकाशन सर्वप्रथम सन् १८५६ ई० में प्रो० राथ और प्रो० ह्विटनी के द्वारा बर्लिन में किया गया था। इसके पीछे इसके अनेक आंशिक अनुवाद अनेक स्थानों से कतिपय सज्जनों द्वारा प्रकाशित किये गये। श्री ग्रिफिथ ने १८६४ ई० में, दो खंडों में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। इस वेद के चार प्रपाठक एवं बीस कांड हैं। प्रथम प्रपाठक में पहले सात कांड, दूसरे में ८ वें से १२ वें तक, तीसरे में १३ वें से १८ वें तक तथा चौथे में अन्तिम दो कांड हैं। अन्तिम दो कांड खिला वा पीछे से संगृहीत भाग हैं। प्रथम ७ कांडों में विभिन्न विषयों के छोटे-छोटे सूक्त हैं। इनको निम्नलिखित क्रम से रक्खा गया है। प्रथम कांड में चार मंत्र के, द्वितीय में ५ के, तृतीय में छः के, चतुर्थ में ७ के, पाँचवें में ८ के, छठे में ३ के, और सातवें कांड में १ से लेकर ११ मंत्रों तक के सूक्त हैं। आठवें से बीसवें कांड तक में बड़े-बड़े सूक्त हैं, जिनमें से कुछ में तो ८० मंत्र तक हैं। पहले १३ कांडों में विभिन्न विषयों के मंत्र हैं, जिनमें प्रधानतया प्रार्थनाओं और जादू टोने के मंत्र हैं, १४ वें में विवाह पद्धति का वर्णन है, १५ वें में व्रात्यों या भ्रमणशील यतियों का वर्णन है। १६ वें और १७ वें में फिर जादू-टोने की बात है और १८ वें में अन्त्येष्टि क्रिया और पितरों के तर्पण का वर्णन है। १६ वें और २० वें कांडों में ऋग्वेद से लिए गये मंत्र हैं, जिनके विषय भिन्न-भिन्न हैं। स्थान-स्थान पर प्रायः सभी कांडों में सृष्टि-सम्बन्धी तथा रहस्यपूर्ण आध्यात्मिक विषयों के मंत्र मिलते हैं, जिनमें उन धार्मिक एवं दार्शनिक तत्त्वों के बीज हैं, जो आगे चलकर ब्राह्मण एवं उपनिषदों में विस्तार से वर्णित हुए हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अथर्ववेद का ऐतिहासिक महत्त्व बहुत अधिक नहीं। फिर भी इसके मंत्रों की रचना एक लंबी अवधि तक होती रही। अतः उनसे सामाजिक जीवन के कुछ मनोरंजक चित्र अवश्य प्राप्त होते हैं। पंचम कांड के २२ वें सूक्त से पता चलता है कि आर्य लोग मगध और अंग तक फैल चुके थे। 'तक्मन्' के नाम से ज्वर का वर्णन किया गया है। उसे पूर्व में मगध और अंग तथा पश्चिम में गांधार, मूजवत् तथा बाह्लीक देश में चले जाने का आदेश है। इससे स्पष्ट है कि आर्य उपर्युक्त देशों तक फैल चुके थे। इसी मंत्र में तक्मन् से प्रार्थना की गयी है कि तुम किसी मोटी शूद्रा के पास चले जाओ। संभवतः इसका प्रकोप शूद्रों पर ही अधिक होता था। उपर्युक्त सूक्त तथा कुछ दूसरे सूक्तों से भी यह पता चलता है कि इस समय के आर्य चार वर्णों में विभक्त थे। चौथे कांड के २२ वें सूक्त में इन्द्र से प्रार्थना की गयी है कि क्षत्रियों और वैश्यों को समृद्धि प्रदान कीजिए। इसी प्रकार १६ वें कांड के ६ ठें सूक्त में कहा गया है—'प्रिय सर्वस्य उत शूद्र उत आर्ये' अर्थात् सबका प्रिय हो—शूद्रों का भी और आर्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) का भी। इससे सूचित होता है कि मंत्र-द्रष्टा ब्राह्मण सभी का कल्याण चाहते थे। पर ब्राह्मणों के ऊपर कुछ राजाओं का प्रकोप था। ५ वें कांड के १६ वें सूक्त का ६ ठा मंत्र है :—

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति।
परावत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते॥

जो उग्र राजा ब्राह्मणों पर अत्याचार करता है, उसका राष्ट्र नष्ट हो जाता है; क्योंकि जहाँ ब्राह्मणों पर अत्याचार होता है, वह राष्ट्र टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। गो-वंश परम पूज्य दृष्टि से देखा जाता था। उसका कान ऐंठना भी भारी अपराध समझा जाता था। उसकी हत्या करनेवाले और उसके बाल-बच्चों को तो आजन्म भिक्षुक होने का घोर शाप दिया गया है। सामाजिक प्रथाओं में विवाह का वर्णन वैसा ही है, जैसा ऋग्वेद में। थोड़े से महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होते हैं। दुलहिन का पाणिग्रहण वर इस वेद के अनुसार अपने घर पर लाकर नहीं करता था जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है; बल्कि उसके पिता के घर पर जाकर करता था। अथर्व वेद में विवाह के समय वर दशपुत्र पाने की प्रार्थना नहीं करता, जैसा ऋग्वेद में है। १८ वें कांड में अंत्येष्टि क्रिया का वर्णन यम-लोक की प्रशंसा के साथ प्रारंभ होता है। इस सूक्त के मंत्र अधिकांश में ऋग्वेद से ही लिए गये हैं, पर बहुत-से नवीन मंत्रों का भी उसमें समावेश है। मृत-शरीर प्रायः जलाये जाते हैं, पर अनग्नि-दग्धों का वर्णन भी मिलता है। जलती हुई चिता पर पति के साथ विधवा के चढ़ने का भी उल्लेख इसमें पाया जाता है। इस वेद की सूक्त-संख्या लगभग ७३० और मंत्र-संख्या प्रायः ६००० है। इस वेद में भी यजुर्वेद के समान गद्य और पद्य दोनों ही पाये जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



## ब्राह्मण और आरण्यक

**इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रंथो वेदयति स वेदः।**

इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के निवारण के लिए जो ग्रंथ उपाय बतलाते हैं वे वेद कहे जाते हैं।

सायणाचार्य

( ऐतरेय ब्राह्मण-भाष्य की भूमिका में )

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

( ऐतरेय ब्रा० भा० पृ० १ )

जो उपाय प्रत्यक्ष या अनुमान से नहीं जाना जाता उसे वेदों से ही जाना जाता है, बस यही वेदों की वेदता है।

वेदों में संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों की गणना की जाती है। संहिताएँ चार हैं, ऋक्, यजुः, साम और अथर्व। ब्राह्मण अनेक हैं; किन्तु उनमें निम्नलिखित प्रधान हैं:—

(१) ऋग्वेद के ऐतरेय और सांख्यायन या कौषीतकी।
(२) सामवेद के ताण्ड्य या पंचविंश और तल्वकार या जैमिनीय।
(३) कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय; शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ।
(४) अथर्व वेद का गो पथ।

ब्राह्मणों के ही अंतिम अंश को आरण्यक तथा आरण्यकों के अंतिम अंशों को उपनिषद् कहते हैं। इस प्रकार एतरेय उपनिषद् और एतरेय आरण्यक, ऐतरेय ब्राह्मण के, कौषीतकी आरण्यक, और कौषीत उपनिषद् कौषीतकी ब्राह्मण के, तैत्तिरीय तथा महानारायण उपनिषद् और तैत्तिरीय आरण्यक तैत्तिरीय ब्राह्मण के भाग हैं। शतपथ ब्राह्मण का चौदहवाँ अध्याय एक आरण्यक है। जिसका शेषांश बृहदारण्यक उपनिषद् है। छान्दोग्य उपनिषद् जिसका प्रथम भाग एक आरण्यक है ताण्डय महा ब्राह्मण का ही एक अंश है, इसी प्रकार जैमिनीय उपनिषद् और आरण्यक का संबंध जैमिनीय ब्राह्मण से हैं।

उपनिषदों की पूर्ण संख्या १०८ है। इनमें से ऋग्वेद के १०, सामवेद के १६, कृष्ण यजुर्वेद के ३२, शुक्ल यजुर्वेद के १९ तथा अथर्ववेद के ३१ बतलाये जाते हैं। पर यथार्थ में इनमें से अधिकांश अर्वाचीन हैं। प्रमुख और प्राचीन उपनिषद् केवल ११ हैं। जिनमें से कतिपय का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

ब्राह्मण-ग्रंथों का समय मैकडानेल के अनुसार ८०० बी० सी० से ५०० बी० सी० तक है। ये प्रधानतया गद्य में ही लिखे गये हैं। इनमें कहीं-कहीं पद्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भी पाये जाते हैं। ब्राह्मणों का विषय कर्मकाण्ड है। आँगन में कहाँ और किस प्रकार यज्ञवेदी बनानी चाहिये, कुश कहाँ पर किस ढंग से रखना चाहिये, किस यज्ञ में किस प्रकार की आहुति किस ढंग से देनी चाहिए, इत्यादि बातों के साथ-साथ तत्कालीन प्रसिद्ध लोक-कथाओं का भी उनमें उल्लेख किया गया है। इन्हीं कथाओं के आधार पर आगे चलकर समग्र पौराणिक साहित्य का विकास हुआ। यद्यपि ब्राह्मणों का प्रधान लक्ष्य कर्मकाण्ड-निरूपण ही है, तथापि इनमें व्याकरण, भाषा-शास्त्र, दर्शन, और आयुर्वेद इत्यादि विषयों की अस्पष्ट आलोचना मिलती है। इन्हीं के आधार पर भारतवर्ष का सारा दार्शनिक साहित्य निर्मित हुआ है। बौद्ध और जैन यद्यपि इन ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों को प्रमाण नहीं मानते तथापि उनका धार्मिक साहित्य इनसे बहुत कुछ प्रभावित है।

ब्राह्मणों की रचना ऐसे समय में हुई थी जब राष्ट्र का सारा प्रयत्न यज्ञों में ही केन्द्रित था। इसीलिये इनमें यज्ञों के उद्गम, महत्व, लाभ और विधियों का ही वर्णन मिलता है। सम्भवतः यह युग बहुत दिनों तक चलता रहा। यद्यपि ये ब्राह्मण, भाषा शैली और विषय निरूपण की दृष्टि से एक ही ढंग के हैं तथापि उनमें अपेक्षाकृत प्राचीनता और नवीनता स्पष्ट लक्षित होती है। यजुर्वेद के गद्यभाग के पश्चात् पंचविंश और तैत्तिरीय ब्राह्मणों की रचना हुई थी। यह बात उनकी शब्दावली और रचनाशैली से स्पष्ट प्रतीत होती है। इनके पश्चात् जैमिनीय, कौषीतकी और ऐतरेय ब्राह्मण रचे गये होंगे। इन तीनों के बाद का ब्राह्मण शतपथ है। इसकी भाषा, शैली और विषय सभी उपर्युक्त ब्राह्मणों से विकसित और नवीन हैं। ब्राह्मणों में सबसे पीछे के हैं गोपथ और सामवेद के छोटे-छोटे ब्राह्मण।

ब्राह्मणों में जो पद्य पाये जाते है वे गाथाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन गाथाओं के अतिरिक्त इस काल की एक महत्वपूर्ण कविता है सुपर्णाध्याय। इसमें वैदिक संहिताओं के अनुकरण का प्रयत्न किया गया है।

इन्हीं ब्राह्मणों से आरण्यकों का विकास हुआ है। आरण्यकों की रचना उन लोगों के लिए हुई है, जो गार्हस्थ्य-जीवन त्यागकर ब्रह्म की खोज में वनवासी हो चुके हों। इन ग्रंथों की पवित्रता और रहस्यात्मकता ऐसी मानी जाती थी कि उनका अध्ययन-अध्यापन कार्य ग्रामों में गृहस्थों के बीच न होकर जंगलों में वानप्रस्थों और संन्यासियों के बीच हुआ।

ब्राह्मणों में कुछ बड़ी ही मनोरंजक कहानियाँ पायी जाती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण कहानी शुनःशेप की है। यह कहानी उक्त ब्राह्मण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



की सप्तम पंचिका के तृतीय अध्याय में कही गयी है। यह कहानी संक्षेप में यों है—

"इक्ष्वाकु वंश के वेधा राजा के पुत्र (वैधस ऐक्ष्वाक) हरिश्चन्द्र के सौ रानियाँ थीं, किंतु उनके कोई पुत्र न था। अतएव उन्होंने चिन्तित होकर नारद ऋषि से पूछा कि हे महाराज! पुत्र-प्राप्ति से क्या लाभ है? उन्होंने उत्तर दिया कि पुत्र-प्राप्ति से मनुष्य पितृ-ऋण से मुक्त हो जाता है। पुत्र मनुष्य को अमरता प्रदान करनेवाला है। वह अपना नया अवतार है। संसार के सभी प्राणियों में पुत्र सर्वाधिक प्यारा है। पिता के लिये पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का प्रकाश है।" इतना कहकर उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र को पुत्र-प्राप्ति के लिये वरुण की आराधना करने का उपदेश दिया। वरुण के प्रसन्न होने पर, हरिश्चन्द्र ने पुत्र होने पर वरुण के लिये बलिप्रदान करने का वचन दिया। जब हरिश्चन्द्र को पुत्र हुआ तो उन्होंने वरुण को तरह-तरह के बहाने बनाकर बलि देने में देर की। इसी बीच में हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित सयाना होकर जंगल में भाग गया। हरिश्चन्द्र को इस प्रकार बलि-प्रदान करने में देर करते देखकर वरुण उनपर क्रुद्ध हुए जिससे हरिश्चन्द्र रुग्ण हो गये। उनको उदर-वृद्धि का रोग हो गया। इन्द्र के बहकाने से रोहित जंगल-ही-जंगल घूमता फिरता रहा। अंत में रोहित की अजीगर्त ऋषि से भेंट हुई जो दरिद्रता के कारण जंगल में मारे-मारे फिर रहे थे। रोहित ने अजीगर्त से अपने बदले में वरुण को बलि देने के लिये उनके तीन पुत्रों में से किसी एक को मांगा। उन्होंने अपने मँझले पुत्र शुनःशेप को सौ गायों के मूल्य पर बेंच दिया। रोहित शुनःशेप को लिये हुए अपने पिता हरिश्चन्द्र के पास पहुँचा। वरुण ने भी शुनःशेप को रोहित के बदले बलि लेना स्वीकार कर लिया। किंतु कोई उस ब्राह्मण बालक को यज्ञ-यूप में बाँधने के लिए तैयार नहीं हो रहा था, तब सौ गायें और लेकर उसके पिता ने ही उसे यज्ञ-यूप में बाँधना तथा फिर सौ गायें और लेकर उसे मारना भी स्वीकार किया। अपने लोभी पिता को, चमकते हुए कृपाण से अपना वध करने को, उद्यत देखकर शुनःशेप भयभीत और दीन हो गया। उसने धैर्य धारण कर सारे वैदिक देवताओं की स्तुति की। अन्त में जब उसने उषा की प्रार्थना की तो उसकी एक जंजीर टूट गयी और राजा का रोग भी हटने लगा। तीन मंत्रों का उच्चारण करते-करते वह बंधनमुक्त हो गया और राजा भी सर्वथा रोग रहित हो गये। राजा के यज्ञ में होता का काम करनेवाले सुप्रसिद्ध विश्वामित्र ऋषि ने उसे गोद लेकर अपना पुत्र बना लिया।

शुनःशेप की कहानी बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद में भी कुछ मंत्र शुनःशेप के पाये जाते हैं। सम्भवतः वे मंत्र किसी ऐसे ही मौके पर रचे गये होंगे; किन्तु विन्टरनीज के अनुसार ऋग्वेद का शुनःशेप कोई और था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



शतपथ ब्राह्मण में पुरुरवा और उर्वशी का आख्यान कहा गया है। यही आख्यान कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक का आधार है। इसी ब्राह्मण में महाप्रलय का वर्णन है। मनु उस प्रलय से कैसे बचे और उन्होंने किस प्रकार मानव सृष्टि चलायी ये सभी बातें वहाँ कही गयी हैं। हिन्दी-कवि जयशंकर प्रसाद ने इसके आधार पर कामायनी काव्य की रचना की है। शतपथ ब्राह्मण में शकुन्तला और दुष्यन्त की प्रेम-कहानी पहले पहल मिलती है। इसी के आधार पर कालिदास ने अपना अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक लिखा है। इन कहानियों के अतिरिक्त ब्राह्मणों में मन और वाक् के विवाद की कथा, यमयमी की आख्यायिका तथा सृष्टि-क्रम के कतिपय मनोरंजक वर्णन प्राप्त होते हैं।

ऋग्वेद के ब्राह्मणों में ऐतरेय बड़ा है। इसमें चालीस अध्याय हैं। इसमें पाँच-पाच अध्यायों की आठ पत्रिकाएँ हैं। इस ग्रंथ के रचयिता महीदास ऐतरेय कहे जाते हैं। इस ग्रंथ के विषय सोमयज्ञ, अग्निहोत्र और राजसूय यज्ञ हैं। ऋग्वेद का दूसरा ब्राह्मण कौषीतकी या सांख्यायन है। इसमें ३० अध्याय हैं। इसके पहले छः अध्यायों में अग्निस्थापन, अग्नियज्ञ, दर्शपूर्ण मास इत्यादि तथा शेष २४ अध्यायों में सोमयज्ञ वर्णित है जो वर्णित है जो ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ही है।

सामवेद के ब्राह्मणों में ताण्ड्यय या पंचविंश ब्राह्मण में २५ अध्याय हैं। इसका एक और अध्याय है जिसे जोड़ने पर इसे षड्विंश ब्राह्मण कहा जाता है। इस छब्बीसवें अध्याय का नाम अद्भुत ब्राह्मण है। इसमें जादू-टोने और शकुनों का वर्णन है। जैमिनीय ब्राह्मण धर्म के इतिहास की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है; किंतु दुर्भाग्य से यह पूर्णरूप में प्राप्त नहीं है।

कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण तैत्तिरीय है। इसमें केवल पुरुष-मेध का वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण शतपथ है। इसमें सौ अध्याय हैं। यह सभी ब्राह्मणों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि इसका विषय महध्वपूर्ण और भाषा-शैलीसुंदर एवं विकसित है। इसकी दो शाखायें है काण्व और माध्यंदिन। माध्यंदिन में चौदह काण्ड हैं। इस ब्राह्मण में सौ अध्याय हैं और इसके रचयिता महाज्ञानी याज्ञवल्क्य महर्षि हैं। इसमें भी तरह-तरह के यज्ञों का वर्णन है।

भिन्न-भिन्न ब्राह्मणों के विषय प्रायः मिलते-जुलते हैं। हाँ, भाषा और शैली में बहुत कुछ भिन्नता पायी जाती है; क्योंकि वे भिन्न-भिन्न कालों में लिखे गये हैं। प्रत्येक ब्राह्मण के विषयों के वर्णन में एक भेद अवश्य पाया जाता है जो ध्यान देने योग्य है। वह यह है कि ऋग्वेद में होता, सामवेद में उद्गाता और यजुर्वेद में अध्वर्यु की प्रधानता होने से इनके ब्राह्मणों में भी उनमें से प्रत्येक के महत्व को ध्यान में रखते हुए विषयों का वर्णन हुआ है। स्थान-स्थान पर इन ब्राह्मणों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



शब्दों की व्युत्पत्ति या निरुक्त पर भी विवेचन मिलता है। ये ब्राह्मण और आरण्यक भाषा-शास्त्र, ज्योतिष, इतिहास, साहित्य, धर्म, राजनीति, और तत्त्वज्ञान इन सभी विषयों का ज्ञान प्रदान करते हैं। अतः इनका अध्ययन करना प्रत्येक संस्कृति, धर्म और इतिहास के प्रेमी का कर्त्तव्य है।

## उपनिषद्

वैदिक-साहित्य आर्य-साहित्य का प्राण है। वही वह बीज है, जिससे समग्र आर्य-साहित्य-रूपी वृक्ष उत्पन्न हुआ है। इसी वृक्ष की विविध शाखाएँ विश्व के असंख्य देशों में अपनी छाया से जनता को शांति एवं शीतलता प्रदान करती हैं। अतः यदि विश्व-साहित्य के उत्कृष्ट अंशों की ओर हम दृष्टि डालें, तो हमें वैदिक-साहित्य के ही अनमोल रत्न वहाँ भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में जगमगाते दीख पड़ेंगे। इस वैदिक साहित्य की मुकुट मणियाँ हैं उपनिषदें। विश्व का सारा दर्शनशास्त्र इन्हीं की परमोज्वल प्रभा से प्रकाशित है।

वैदिक-साहित्य के दो विभाग किये गये हैं—कर्म-काण्ड और ज्ञान-काण्ड। संहितायें और ब्राह्मण कर्मकाण्ड के अन्तर्गत हैं। संहिताओं के मंत्रों का उच्चारण कर यज्ञ में आहुतियाँ डाली जाती हैं और ब्राह्मणों में यज्ञों के भेद-प्रभेद, उनके संपादन की विधियाँ तथा यज्ञ-संपादन के फल आदि विषयों की चर्चा की गयी है। ब्राह्मणों के ही अंतिम भागों का नाम आरण्यक और उपनिषद् है। ये उपासना एवं चिंतन के ग्रंथ हैं। अतः, इन्हें ज्ञानकांड या वेदांत के नाम से पुकारा गया है।

आर्यों ने मानव-जीवन की अवधि साधारणतः सौ वर्षों की मानी थी। अतः, उन्होंने उसके पचीस-पचीस वर्षों के ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास नामक चार विभाग किये थे। वानप्रस्थ अवस्था में जंगल ( अरण्य ) में निवास करते अध्यात्म-चिंतनशील सज्जनों के कल्याण के निमित्त आरण्यकों की रचना की गयी थी। यही कारण है कि वे ग्रंथ आरण्यक कहलाये। जीवन की अंतिम अवस्था में मानव-हृदय जिन तत्त्वों की खोज में संलग्न होता है, उन्हें ही उपनिषद् कहा गया है। सद्धातु के पूर्व 'उप' और 'नि' उपसर्ग लगाकर उपनिषद् शब्द बना है। अतः, इसका अर्थ है वह ज्ञान जिससे ईश्वर का सान्निध्य ( उप ) निश्चय ( नि ) ही प्राप्त हो।

उपनिषदों की संख्या १०८ तक पहुँची है। उन सबों के नाम भी स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं लिखे जा सकते। निस्संदेह उनमें से बहुत-सी उपनिषदें पीछे से लिखी गयी हैं। परंतु, उनमें से लगभग बीस-पचीस उपनिषदें प्रधान हैं, और वे बौद्धयुग के बहुत पहले रची गयी हैं। भगवान् शंकराचार्य ने ग्यारह उपनिषदों पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भाष्य लिखा है और लगभग आधे दर्जन अन्यान्य उपनिषदों का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया है। उनका भाष्य ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, बृहदारण्यक और नृसिंहपूर्वतापनी नामक ग्यारह उपनिषदों पर मिलता है। स्वामी रामानुजाचार्य ने उपनिषदों पर भाष्य नहीं लिखा है; पर अपनी पुस्तकों में लगभग उतनी ही उपनिषदों का उल्लेख किया है। यद्यपि कुछ-कुछ भिन्न उपनिषदों के नाम भी दोनों उल्लेख करते हैं; फिर भी अधिकांश में दोनों ही सहमत हैं। यदि दोनों की दी हुई संख्याओं को मिलाकर देखा जाय, तो लगभग बीस उपनिषदें प्राचीन एवं प्रमुख मानी जा सकती हैं। ये उपनिषदें हिंदूमात्र के लिए कितनी आदरणीय हैं इसका पता इसी बात से चलता है कि कोई भी धर्मसुधारक शंकर, रामानुज, मध्व एव वल्लभ अपने सिद्धांत की पुष्टि के लिए इनका सहारा लिए बिना नहीं रहा। हिंदू-समाज में वह सम्प्रदाय पनप नहीं सकता जिसमें उपनिषदों के प्रतिकूल सिद्धांतों का प्रतिपादन हो।

उपनिषद् मानव-समाज की आध्यात्मिक अनुभूतियों के भांडार वेदों के सारतत्त्व हैं। वे किसी सांसारिक ज्ञान का उपदेश नहीं देतीं, उनका विषय है ब्रह्मविद्या। वे उस ब्रह्म का स्वरूप समझाती हैं, जो विश्व का अंतिम सत्य है। लौकिक शास्त्र तो अनुमान और प्रत्यक्षज्ञान के आधार पर जगत् के दृश्यादृश्य वस्तुओं की ही व्याख्या करते हैं; किन्तु उपनिषदें प्रत्यक्ष और अनुमान से परे सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति के यथार्थ स्वरूप एवं उनके पारस्परिक संबंधों की सुन्दर-से-सुन्दर शब्दों में व्याख्या करती हैं। अतएव मन, वाणी तथा अन्यान्य इन्द्रियों से परे—अनुमान की सीमा से बहुत दूर—जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व हैं, उनके ज्ञान की आधार उपनिषदें ही हैं। 'मृत्यु के बाद हमारा अस्तित्व रहता है या नहीं' 'क्या मरे हुए मनुष्यों का पुनर्जन्म संभव है?' 'मरणोपरांत दिवंगत आत्माएँ जहाँ जाती हैं वह स्वर्ग सत्य है अथवा असत्य,' 'उसका स्वरूप क्या है?' मनुष्य वहाँ से कब और कैसे इस लोक में फिर लौट आता है?' 'मनुष्य का चरम लक्ष्य क्या है?' 'इस समग्र विश्व की रचना का उद्देश्य क्या है?' और 'हमारे अस्तित्व का अंतिम सत्य क्या है?' इत्यादि प्रश्नों की मीमांसा उपनिषदें करती हैं और इन प्रश्नों पर उन्हीं का निर्णय अंतिम है। वे अपौरुषेय हैं; अतः उनमें भ्रम, सन्देह एवं छल इत्यादि त्रुटियाँ नहीं हैं। उनकी बतलायी हुई विधियों से चलकर कोई भी उनके सिद्धान्तों की स्वयमेव जाँच कर सकता है। उनमें जिन सत्यों का प्रतिपादन हुआ है, वे निरे सिद्धान्त नहीं; स्वयंसिद्ध तथ्य हैं। अतः उनपर कोई आक्रमण नहीं कर सकता।

यहाँ पर उपनिषदों की प्रधान शिक्षाओं पर विचार कर लेना ठीक होगा। इनमें से कुछ का परिचय तो पहले दिया जा चुका है। आत्मा, ब्रह्म और प्रकृति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



इन्हीं तीन विषयों से इन प्रधान शिक्षाओं का संबंध है। उपनिषदों ने मृत्यु के रहस्य का सदा के लिए निर्णय कर दिया है। इसी प्रश्न को लेकर कठोपनिषद् का प्रारंभ होता है। एक ऋषि का पुत्र नचिकेता पिता की आज्ञा पाकर यम के पास जाता है; किंतु उनसे तीन दिनों तक भेंट नहीं होती, वह वहीं अतिथि बनकर ठहरता है। तीन दिनों के बाद भेंट होने पर यमराज तीन दिन तक ठहरे रहने के कारण तीन वर माँगने की आज्ञा देते हैं। पहला वर तो वह अपने पिता के हृदय के शोक को दूर कर देने का माँगता है। दूसरा वर स्वर्ग्य अग्नि के रहस्य की व्याख्या करने का माँगता है। यम ये दोनों वर उसे दे देते हैं। तब वह अपना तीसरा वर यों माँगता है :—

ये यं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेव वरस्तृतीयः॥

मृत्यु के उपरांत मृतात्मा (प्रेत) के संबंध में मनुष्यों में जो विवाद है; अर्थात् कोई कहता है कि उसका अस्तित्व रहता है और कोई कहता है कि उसका अस्तित्व रहता ही नहीं, उसके संबंध में आप से सारा रहस्य सुनना चाहता हूँ। यही मेरा तृतीय वर है। यम उसको इसका उत्तर देना नहीं चाहता। उसकी उत्सुकता की परीक्षा लेने के लिए उसे तरह-तरह से यह वर मांगने से निरुत्साहित करता है। इस वर के बदले वह भूमि, प्रासाद, इच्छानुकूल आयु, वित्त सारांश यह कि सारे दुर्लभ भोग-विलास देने को प्रस्तुत है। वह कहता है कि यह विषय 'सुविज्ञेय' नहीं, देवताओं को भी इस में संदेह होता रहता है। अतः, दूसरा कोई भी वर ले लो; लेकिन इसे न माँगो। वह छोटा ब्राह्मण-बालक कहता है—

'योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते'—यही वर मेरे अन्तरतम में प्रविष्ट हो गया है, मैं दूसरा वर माँग नहीं सकता। अन्त में यमराज उसे उस अध्यात्मज्ञान का उपदेश करता है। समग्र कठोपनिषद् इस अध्यात्म विद्या का निरूपण ही है।

इस शिक्षा का सारांश यह है—हमारे शरीर के अतिरिक्त हमारे भीतर एक आत्मा है, जो मन एवं बुद्धि से पृथक् एवं स्वतन्त्र है। प्राण भी इस आत्मा से बिलकुल भिन्न हैं। यह चेतन एवं अजन्मा है अतएव अविनश्वर है। शरीर के मरने पर भी यह नहीं मरती। साधारणतः इसकी तीन दशाएँ हैं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। मृत्यु के पश्चात् शुभ कर्म करने पर यह उत्तम और अशुभ कर्म करने पर अधम लोकों में जाती है और वहाँ पुण्य अथवा पाप का भोगकर पुनः मर्त्यलोक में लौट आती है। इस सम्बन्ध में इसके स्वरूप का भी निर्णय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



किया गया है। इस निर्णय के अनुसार इसका बंधन केवल अज्ञान के कारण है, जो इसने स्वयं अपने ऊपर ले लिया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह सर्व-शक्तिमती, सर्वत्र-व्याप्त, और सर्वज्ञ है। सच पूछिये तो वह ब्रह्म स्वरूप है। केवल अज्ञान के आवरण को दूर कर देने से उसमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं रह जाता। प्रायः सभी उपनिषदों की शिक्षा यही है। किसी में विस्तार से और किसी में संक्षेप में बड़े ही सुललित शब्दों में, इसी सिद्धान्त का निरूपण किया गया है। कठोपनिषद् के निम्नाङ्कित श्लोक देखिए:—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान्।
आत्मेंद्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

× × × ×

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्नपरं किंचित् सा काष्ठा सा परागतिः॥
एषु सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥

आत्मा रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथी, मन लगाम, इन्द्रियाँ घोड़े और उनके विषय सड़कें हैं। आत्मा, इन्द्रिय तथा मन ये तीनों मिलकर मनीषियों के द्वारा भोक्ता कहे जाते हैं। इन्द्रियों से उनके अर्थ, अर्थों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से अध्यक्त (प्रकृति) और अव्यक्त से पुरुष सूक्ष्म है। पुरुष (आत्मा) से सूक्ष्म कुछ नहीं है, वही पराकाष्ठा, वही अन्तिम गति है। यह आत्मा सभी जीवों में छिपी है; अतः नहीं दिखाई पड़ती। इसे केवल सूक्ष्मदर्शी जन अपनी सूक्ष्म-बुद्धि से ही देख सकते हैं। यहाँ स्थूल-से-स्थूल इन्द्रियों से लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म पुरुष तक के तत्त्वों की श्रृङ्खला बतलायी गयी है। पुरुष (आत्मा) अन्तिम सत्य है। उससे कोई भी वस्तु सूक्ष्म नहीं। इस कथन से स्पष्ट हो गया कि परमात्मा और पुरुष—जीवात्मा और ईश्वर में कोई तात्त्विक भेद नहीं—वे एक ही तत्त्व हैं।

आत्मा की झलक देकर अब हम परमात्मा की चर्चा करेंगे। इस सम्बन्ध में केनोपनिषद् में एक सुन्दर कहानी दी गयी है। ब्रह्म ने देवताओं को एक महती विजय (शायद देवासुर संग्राम में) दिला दी। देवता बहुत प्रसन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हुए और अभिमान के वशीभूत होकर अपनी-अपनी प्रशंसा करने लगे। ब्रह्म ने उनके हृदय से अभिमान दूर कर देना ही उचित समझा। वे यक्ष रूप में देवों के समक्ष कुछ दूर पर प्रकट हुए। उनके अलौकिक और अप्रतिम तेज से देवता भयभीत हो गये। उन्होंने अग्नि को उनके पास परिचय पूछने के लिए भेजा। अग्नि को देखते ही ब्रह्म ने पूछा—'तुम कौन हो और क्या कर सकते हो?' अग्नि ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'मैं अग्नि हूँ और सब कुछ जला सकता हूँ।' ब्रह्म ने उसे एक तृण जलाने के लिये दिया। अग्निदेव उसे जला न सके और लज्जित होकर लौट आये। देवताओं से उन्होंने कहा—मैं इस यक्ष को नहीं पहचानता। देवताओं ने यह काम तब वायु को सौंपा। पवनदेव के पहुँचते ही यही प्रश्न ब्रह्म ने उनसे भी पूछे, जो अग्नि से पूछे थे। इन्होंने कहा—'मैं पवन हूँ और सब कुछ उड़ा सकता हूँ।' ब्रह्म ने एक तृण देकर उड़ाने के लिये कहा। अपनी सारी शक्ति लगाकर भी पवन उसे उड़ा न सके। लज्जित होकर वे देवों के पास लौट आये और कहा—मैं इस यक्ष को नहीं पहचान सकता।' तब देवों ने इन्द्र को भेजा। इन्द्र को देखकर ब्रह्म अन्तर्धान हो गये। इन्द्र अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उसे नहीं देख पाये। हैरान हो, बेचारे मन मारे खड़े रहे। सहसा उनके सामने उमा देवी प्रकट हुईं। उन्हीं से पूछकर इन्द्र ने जाना कि वे ब्रह्म थे। सबसे पहले ब्रह्म को पहचानने के कारण इन्द्र सब देवताओं में बड़े माने गये।

उपनिषदों के ब्रह्म सगुण एवं निर्गुण दोनों ही हैं। अपने सगुण रूप में वे मुस्लिम 'खुदा' या 'ईसाई' 'गाड' के समान हैं। माण्डूक्य उपनिषद् कहती है—वे सबके स्वामी, सर्वज्ञ तथा अन्तःशासक हैं। वे सबके कारण हैं। उन्हीं से सब जीव पैदा होते हैं और फिर उन्हीं में विलीन हो जाते हैं। किन्तु, अपने निर्गुण रूप में वे सभी गुणों से रहित और नित्य साक्षी हैं। केनोपनिषद् के अनुसार वे कानों के कान, मन के मन, वचन के भी वचन तथा प्राणों के भी प्राण हैं। ये उनके गुण नहीं, किन्तु तत्त्व हैं; क्योंकि गुण कभी रहते भी हैं और कभी नहीं भी रह सकते। पर, परमात्मा का सच्चिदानंदत्व सदा एक-सा बना रहता है। श्वेताश्वेतरोपनिषद् का कथन है :—

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं।
नेमाविद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः॥
तमेव भान्तं मनु भाति सर्वं।
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥१॥

परमात्मा में सूर्य, चन्द्र, तारे, बिजली एवं अग्नि से प्रकाश नहीं पहुँचता वह तो स्वतः प्रकाशमान हैं। उनके प्रकाशित होने से—उनसे प्रकाश पाकर ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



--ये सब प्रकाशित होते हैं। निर्गुण ब्रह्म का वर्णन हम नेति-नेति कहकर ही कर सकते हैं; अथवा जब उनमें कोई गुण ही नहीं, तब तो उन्हें अनिर्वचनीय कहकर ही सन्तोष करना पड़ता है। किन्तु, इतना तो सत्य है कि प्राणिमात्र की आत्मा इस निर्गुण ब्रह्म से पृथक् नहीं। सत्य-ज्ञान के द्वारा ब्रह्म और जीव के बीच का आवरण ( माया ) दूर हो जाता है और जीवात्मा उसमें विलीन हो सच्चिदानंद स्वरूप हो जाती है।

अब थोड़ा-सा प्रकृति पर भी विचार कर लेना चाहिए। प्रकृति को अजा अर्थात् अनादि कहा गया है। पर, यह आत्मा के समान ब्रह्म का स्वरूप ही नहीं है। इसके आदि-अन्त सृष्टि एवं लय--अवश्य होते हैं। अतः यह विकारी भी अवश्य है। आत्मा देशकाल निमित्त से परे है; किन्तु प्रकृति इनसे परे नहीं। फिर भी श्रुति इसे अनादि कहती है :-

यथोर्णनाभि सृजते गृहते च यथा पृथिव्यामोषधयः।
सम्भवंतीह। यथा सतः पुरुषात् केशा लोमानि तथाक्षरात् संभवतीह विश्वम्॥

जिस प्रकार मकड़ा अपने जाल को सृजन कर फिर समेट लेता है, जिस प्रकार पृथिवी पर औषधियाँ पैदा होती हैं और जिस प्रकार जीवित मनुष्य के केश उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अक्षर पुरुष--अविनाशी ब्रह्म से यह विश्व उत्पन्न होता है। आत्मा से ही आकाश की उत्पत्ति होती है। आकाश से वायु वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। आत्मा और परमात्मा तो अपने यथार्थ रूप में अभेद हैं ही। अतः, सारी सृष्टि इसी क्रम से ब्रह्म से उत्पन्न होकर ठीक इसके विपरीत क्रम से ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है। यह सारी सृष्टि ही प्रकृति है। प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से यह सारा विश्व चलता है और अन्त में ये दोनों अपने कारण ब्रह्म में लीन हो जाया करते हैं। ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए आत्मा और ब्रह्म के यथार्थ ज्ञान की आवश्यकता है और वही ज्ञान देकर मनुष्य को बंधन से मुक्त करना उपनिषदों का लक्ष्य है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# महाकाव्य

**वाल्मीकीय रामायण**—भगवान रामचन्द्र मर्यादापुरुषोत्तम समझे जाते हैं। गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए भी इनके चरित्र का जितना विकास हुआ उतना आज तक बड़े-बड़े त्यागियों और योगियों के चरित्रों का भी नहीं हो सका था। यों तो भगवान् कृष्णचन्द्र, महात्मा गौतम बुद्ध, महात्मा वर्द्धमान महावीर, महात्मा ईसा, हजरत मुहम्मद तथा महात्मा गाँधी को भी लोग राम की समकक्षता में रखते हैं; किन्तु इन सबों से राम का चरित्र कुछ अनूठा और अपूर्व है। जिस प्रकार भगवान् राम का चरित्र पुरुषों के लिये अनुकरणीय है उसी प्रकार भगवती सीता का चरित्र भी नारीमात्र के लिये आदर्श स्वरूप है। राम और सीता पुरुष और नारी के आदर्श हैं और यह बात प्रायः समग्र संसार को मान्य है। गृहस्थधर्म के पालन में आनेवाले सारे संकटों को झेलते हुए भी आदर्श राजा, पुत्र, पति, भाई, मित्र, लोकनायक, कर्मयोगी, शास्त्रज्ञ, शस्त्रधारी योद्धा एवं शरणागतवत्सल होना इसी महापुरुष का काम था। इनके समग्र गुणों की गणना करना असंभव है। ये मानवरूप में प्रत्यक्ष और पूर्णब्रह्म माने जाते हैं। तात्पर्य यह कि ब्रह्म की तीन शक्तियों, अर्थात् शील, शक्ति और सौन्दर्य का इनमें पूर्ण विकास दीख पड़ा था और उनसे इन्होंने लोक-मर्यादा का इस सुंदर रूप में निर्वाह किया कि इनकी समकालीन तथा पीछे की जनता ने इन्हें सर्व-श्रेष्ठ मानव तथा पूर्णब्रह्म का अवतार माना। इसी प्रकार वनितोचित सद्गुणों का सीता-चरित्र में इतना अधिक विकास हुआ था कि वे ब्रह्म-शक्ति का अवतार समझी जाती हैं।

इसी देवोपम पुरुष एवं दिव्य नारीरत्न का सबसे पहले कीर्त्ति-कीर्त्तन किया था महाकवि वाल्मीकि ने। इस आदि कवि ने अपने विश्व-विख्यात एकमात्र काव्य में सर्वश्रेष्ठता भर दी है। चाहे किसी भी दृष्टि से देखा जाय वाल्मीकीय रामायण विश्व के काव्य-जगत् में अपना सर्वोत्तम स्थान रखता है। इसका नायक संसार के सभी साहित्यक ग्रंथों के नायकों का शिरोमणि है। इसके नायक का परिवार, प्रजाजन, देश और नगर सब-के-सब अद्वितीय हैं। इसका प्रतिनायक और उसका परिवार भी इसके सपरिजन नायक के अनुकूल ही हैं। ये वाह्य संघर्ष के प्रतिनिधि भी हैं और अन्तः संघर्ष के भी। यज्ञ-सम्पादन में तल्लीन, तत्वचिन्तनशील तथा अन्तर्दृष्टि सम्पन्न वैदिक ऋषियों ने जो संदेश मानव-जीवन की पूर्णता के लिये अपने पवित्र वैदिक मंत्रों में दिये थे, महर्षि वाल्मीकि ने उन्हें सर्वजन सुलभ एवं मनोरञ्जक काव्य का रूप दिया और, इन संदेशों का आधार बना, रामचरित, जो स्वयं ही एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



काव्य है। इस प्रकार सारी श्रुतियों का निचोड़ विश्व के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष के जीवन में गुम्फित होकर, विश्व के आदिकवि की लोकोत्तर वाणी में प्रकट हुआ। बस, यही काव्य रामायण के नाम से विख्यात है, जिसके आधार पर अनेक कवियों ने आज तक अनेक भाषाओं में अनेक काव्य और नाटक लिखे हैं। और, इन सभी काव्य-नाटकों में श्रेष्ठ हैं कालिदासकृत रघुवंश, तुलसीकृत रामचरित मानस, तथा भवभूतिकृत महावीरचरित एवं उत्तर रामचरित। वेदतत्त्वों के व्यावहारिक स्वरूप का सर्वप्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ निदर्शन होने के कारण इस काव्य को पञ्चम वेद भी कहा जाता है। इस काव्य की रचना करने की प्रेरणा वाल्मीकि जी में उत्पन्न हुई थी, एक आकस्मिक घटना से। इसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण के द्वितीय सर्ग में किया गया है। कहा जाता है कि तमसा नदी में विहार करते हुए क्रौंच पक्षी के जोड़े में से पुरुष पक्षी के मारे जाने के कारण उक्त ऋषि के मुख से एकाएक छन्दोबद्ध शोकोद्‌गार निकल पड़ा। अतः ब्रह्मा जी के उपदेश से उसी छन्द में रामचरित वर्णन करने का उक्त ऋषि ने संकल्प किया। उसका यह काव्य आर्य-जीवन और संस्कृति का आज तक भी एक अलौकिक प्रतीक है। इसके तीन संस्करण या रूप प्राप्त होते हैं पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण भारत के। श्लोक-संख्या सबमें समान नहीं है। किसी में तेइस, किसी में चौबीस तथा किसी में पच्चीस हजार श्लोक हैं। सर्गों की संख्या ६४५ है। समग्र काव्य आदि (बाल), अयोध्या, आरण्य किष्किंधा, सुंदर, युद्ध, (लंका) तथा उत्तर इन सात काण्डों में विभक्त है।

इसकी कथा विश्व-विख्यात है। अतएव यहाँ उसका सारांश देना आवश्यक है। इसलिये यहाँ पर तत्कालीन भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक स्थिति तथा उसके काव्य-सौष्ठव का संक्षिप्त वर्णन ही पर्याप्त होगा।

भारत का आदिम, अर्थात् भारत नाम प्रचलित होने के पूर्व का नाम क्या था यह कहना असंभव है। यह भी नहीं मालूम कि प्रारंभ में यह एक ही देश था जैसा आज है या भिन्न-भिन्न टुकड़ों में बँटा हुआ था। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इसके आदि निवासी कौन थे। ये आदिम निवासी भारतवर्ष में आज भी बसते हैं या नहीं? आर्यों का बाहर से यहाँ आकर बसना भी विदेशीय विद्वानों की कल्पना मात्र है। इतिहास का जब से प्रारंभ हुआ है यहाँ आर्य और अनार्य, दोनों ही साथ-साथ रहते पाये गये हैं। 'देश' का नाम 'भारत' था और संस्कृतियाँ आर्य और अनार्य ही प्रमुख थीं और आज भी हैं। वरन् संस्कृतियों के सम्बन्ध में तो यह कहना अच्छा होगा कि आज की संस्कृति समग्र भारत में एक ही है और वह है प्रायः सभी भारतवासियों की संस्कृतियों का सम्मिलित रूप। भेद केवल बाहरी बातों में है, उसकी अन्तः प्रकृति समान है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


रामचन्द्र के बाल्यकाल में समग्र भारत में कई छोटे-छोटे राज्य थे। तत्कालीन प्रत्येक प्रान्त में प्रायः एक-एक शासक था। इस समय के प्रान्तों तथा राजधानियों के प्रसिद्ध नाम थे :—अयोध्या, मिथिला, हस्तिनापुर, उत्तर पांचाल, दक्षिण पांचाल, मगध, काशी, कान्यकुब्ज, मधुवन (आधुनिक मथुरा), माहिष्मती, चम्पा, (अंग प्रदेश), विशाला, और केकय। इनके अतिरिक्त भारत का एक अत्यन्त विस्तृत भाग जंगल था जिसमें ऋषि-मुनि तो रहा करते थे, पर उनमें आर्यों की बस्तियाँ नहीं थीं। पूर्वोत्तर भारत के सिद्धाश्रम अर्थात् मलय और कारूष देश से लेकर समग्र विंध्य-प्रदेश एवं दण्डकारण्य घनघोर जंगलों से आच्छादित थे। इन जंगलों में वानर एवं ऋक्ष नामक जंगली जातियाँ रहती थीं जिनका प्रधान शासक वानर राज बाली दक्षिण भारत की किष्किंधा-नगरी में रहा करता था। ऋक्षों का राजा जाम्बवान् था, किन्तु वह बाली के अधीन था और उसके दरबार में मंत्री था। इन जंगली जातियों, अर्थात् वानरों और ऋक्षों के सरदार अपनी भाषा के अतिरिक्त संस्कृत भी जानते थे। उनमें से कतिपय जैसे हनुमान् इत्यादि तो संस्कृत के महान् पंडित और नीतिज्ञ थे। इन जातियों में बाली, सुग्रीव, केशरी, जाम्बवान्, अंगद, हनुमान् आदि बड़े-बड़े विख्यात एवं महाबली योद्धा थे। इन जंगलों पर रावण नामक राक्षस-राज का प्रमुख अधिकार था। सम्भवतः ये वानर एवं ऋक्ष रावण के अधीन थे या कम-से-कम उसके और उसके अनुचरों के समक्ष झुक जाते थे। रावण द्वारा नियुक्त शासक खर दूषण और त्रिशिरा दण्डकारण्य में तथा सुबाहु, मारीच और ताड़का नामक राक्षसी सिद्धाश्रम के पास रहा करती थी। स्वयं रावण, जो अति प्रतापी, पण्डित, नीतिज्ञ तथा दशग्रीव नाम होने से दश मुँहवाला मान लिया गया है, कभी-कभी इन प्रान्तों में घूमता रहता था। कभी-कभी घूमते-घूमते उसकी वानरों, आर्य नरेशों तथा अन्यान्य वीरों से मुठभेड़ हो जाती थी। वह प्रायः विजयी ही होता था, किन्तु कभी हार भी जाता था, जैसे एक बार बाली और दूसरी बार माहिष्मती नरेश कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन से। वह लंका का राजा और भारत के उक्त जंगलों का सम्राट् था। तत्कालीन भारतीय शासकों में उसकी बड़ी धाक थी। उसका सामना करने की हिम्मत किसी में भी नहीं थी। तत्कालीन प्रसिद्ध योद्धा परशुराम भी रावण से कभी युद्ध करने नहीं गये। हो सकता है रावण भी उनसे बचकर रहने में ही अपनी कुशलता समझता हो।

रावण और उसके भाई-बन्धु नरभक्षी थे। उन्होंने आर्यों, विशेषतः तपस्वी ब्राह्मणों पर अत्याचार करना ही अपना धर्म बना रक्खा था। उनके यज्ञों में विघ्न डालना, उनकी बहू-बेटियों का अपहरण करना, तथा उन्हें पकड़-पकड़ कर खा जाना उनका एक सहज काम था। आश्चर्य है, ऐसी परिस्थिति में भी परशुराम क्यों नहीं राक्षसों से भिड़ सके थे। इसका कारण मालूम होता है तत्कालीन ब्राह्मण, क्षत्रिय-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



संघर्ष। रावण को परास्त करनेवाले सहस्रार्जुन ने परशुराम के पिता जमदग्नि को मार डाला था। बस इसी को लेकर परशुराम क्षत्रियों के शत्रु बन गये थे और इक्कीस युद्धों में उन्होंने सम्मिलित क्षत्रिय-नरेशों को परास्त किया था। इसी पारस्परिक संघर्ष से लाभ उठाकर राक्षसराज रावण निष्कण्टक राज्य और मनमाना अत्याचार कर रहा था। उस समय इस रावण के अत्याचारों से समग्र भारतवासी विशेषतः आर्य ऋषि, महर्षि अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। यही कारण है कि महर्षि विश्वामित्र और अगस्त्य ने रामचन्द्र को सुशिक्षित एवं दिव्यास्त्रों से विभूषित और शक्तिशाली बनाकर रावण का विनाश कराया था। रावण के अतिरिक्त इस समय अन्यान्य राक्षस राज भी थे, जिनके नाम, बाण, लवण, शम्बर, वर्चिन, तिमिध्वज एवं भेद आदि थे। इनमें से बाण धर्मात्मा और सुशासक था। लवण अत्यचारी था और वह आगे चलकर शत्रुघ्न के हाथों से मारा गया। दूसरे-दूसरे राक्षसराज उतने प्रतापी नहीं थे।

रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण तीनों भाई थे। इनकी एकमात्र बहन थी शूर्पणखा, जो सम्भवतः सबसे छोटी थी। विभीषण तो सदाचारी और महात्मा था। उसे रावण का आचरण पसन्द नहीं था। कुम्भकर्ण तामसी, बहुभोजी, मद्यप एवं निद्रालु था। किन्तु रावण और शूर्पणखा दोनों ही अत्यन्त चरित्रहीन थे। यदि सच पूछिये तो राम-रावण-संघर्ष का सूत्रपात इन दोनों भाई-बहनों की चरित्रहीनता के कारण से ही हुआ था।

यदि शूर्पणखा राम के रूप पर मोहित होकर उनसे अपमानित न होती और रावण को सीता-हरण के लिए न उकसाती तो सम्भवतः रामायण की युद्ध घटना न घटती। चरित्रहीनता की विनाशमूलकता का रामायण एक ज्वलन्त उदाहरण है। साथ ही पारस्परिक फूट का राष्ट्र के लिए कितना घातक परिणाम होता है, यह परशुराम-सहस्रार्जुन संघर्ष एवं रावण-विभीषण मतभेद से स्पष्ट है।

रामायण के पात्रों का समय बतलाना भी असम्भव-सा ही है। सनातन धर्मियों के विश्वास के अनुसार तो राम त्रेता-युग में हुए थे। युगों की गणना जिस प्रकार की जाती है उससे राम का समय लाखों वर्ष पूर्व था। फिर पाश्चात्य पण्डितों का अनुसरण करनेवाले मिश्रबंधु अपने भारतवर्ष के इतिहास में राम का समय १३वीं सदी बी० सी० बतलाते हैं। मेरे विचार में ये दोनों ही मत गलत हैं। अभी तक के प्राप्त साधनों से रामायण का घटनाकाल या रचना-काल दोनों ही ठीक-ठीक निर्णय करना सम्भव नहीं। कुछ विदेशी सज्जनों ने तो राम-सीता को ऐतिहासिक नरनारी माना ही नहीं है। ऐसे भ्रान्त सज्जनों की धारणा सर्वथा उपहासनीय है। सूर्यवंश का वर्णन जहाँ कहीं भी मिलता है, वहाँ राम-सीता और उनके पूर्वजों और वंशजों की चर्चा मिलती है। बौद्ध और जैन रामायणों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


में भी राम को ऐतिहासिक व्यक्ति ही माना गया है। राम के जन्म, विवाह, वनवास इत्यादि के स्थान आज कई सहस्रों वर्षों से तीर्थ स्थान समझे जाते हैं। यहाँ तक कि उनके द्वारा बाँधा हुआ भग्न पुल भी दिखाया जाता है और उनके द्वारा स्थापित रामेश्वर नामक शिवमूर्ति हिन्दुओं के चार प्रमुख धामों में से एक है। यदि राम ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं तो सत्य पर प्राण देनेवाले आर्यों ने इस महान् असत्य का इस प्रकार क्यों प्रचार किया, यह समझना कठिन है।

कुछ विदेशी पण्डितों ने यह भी कहा है कि बाल और उत्तरकाण्ड रामायण में पीछे से जोड़े गये हैं। प्रारम्भ में उसमें केवल पाँच ही काण्ड थे। किन्तु ये बातें भी सर्वांश में सही नहीं हैं। निस्सन्देह इन दोनों काण्डों में प्रक्षिप्त कथाओं की भरमार है, पर समग्र काण्ड प्रक्षिप्त नहीं हैं।

रामायण में ही रामायण-रचना, राम के समय में ही, होने का उल्लेख मिलता है, किन्तु आधुनिक विद्वान् इस बात को नहीं मानते। मेरी समझ में रामायण की भाषा और रूप में समय-समय पर, चाहे जो भी परिवर्त्तन हुए हों; किन्तु वाल्मीकि कवि ने राम के शासन-काल में ही उसकी रचना की थी। यूरोपीय लेखकों ने हमारी ऐतिहासिक प्राचीनता के साथ मनमाना खिलवाड़ किया है। उनका कथन शुद्ध-दृष्टि से नहीं किया गया प्रतीत होता। ईसा से पूर्व देखने की उनमें हिम्मत ही नहीं। इसलिए वे हमारी सभ्यता और हमारे साहित्य को जहाँ तक सम्भव हो आधुनिक बतलाने का प्रयत्न करते हैं।

रामायण काल में आर्यों की सभ्यता और समृद्धि अपनी चरमसीमा पर थी। वर्णाश्रम धर्म अत्यन्त दृढ़ हो चुका था। नैतिकता की पराकाष्ठा हो गयी थी। पर असुरों की शक्ति आर्यों से कुछ अधिक थी। शक्ति में आर्य कम न भी हों तो भी उनमें ऐक्य न होने से वे असुरों से डरा करते थे। वर्णगत विद्वेष का बीज बोया जा चुका था। क्षत्रियों में विलासिता, औद्धत्य एवं ब्राह्मणों के प्रति विद्वेष भर गया था। परशुरामसहस्रार्जुन-संघर्ष एवं वशिष्ठ-विश्वामित्र-वैमनस्य इसके ज्वलंत प्रमाण हैं।

इधर ब्राह्मण और क्षत्रिय लड़ रहे थे और उधर रावण और उसके अनुचर राक्षस तपोवनों में स्थित ऋषियों पर अत्याचार कर रहे थे। ऋषियों को मार-मार कर राक्षस खा डालते थे। एक जगह तो दण्डकारण्य में उन्होंने ब्राह्मणों की हड्डियों का पहाड़ बना रक्खा था। जब राम ने इस अस्थि-संचय को देखा और ऋषियों से पूछकर उनका वृत्तान्त मालूम किया तो वे राक्षसों के अन्याय और अत्याचार से इतने क्षुब्ध हुए कि उन्होंने ऋषियों के समक्ष प्रण किया :—

तपस्वीनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्—अरण्यकाण्ड सर्ग ६ श्लोक २५

मैं तपस्वियों के शत्रु राक्षसों को युद्ध में मारना चाहता हूँ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



रावण पर विजय पाते ही उन्होंने शत्रुघ्न को भेजकर लवणासुर का काम तमाम करा दिया। इसके अनन्तर अश्वमेध यज्ञ से भारत के सभी उद्धत नरेशों, राक्षसराजों और ऋक्ष-वानर शासकों को वशीभूत कर लिया। इस प्रकार समग्र बिखरी आर्यशक्ति का संग्रह कर उन्होंने इस राष्ट्र को सर्वथा सुसंगठित एव शक्तिशाली बना डाला। उनका शासन इतना सुन्दर और लोककल्याणकारी हुआ कि उस समय समग्र भारतवासी, चाहे वे किसी जाति, वंश, या धर्म के क्यों न हों सब प्रकार से सुखी थे। साथ ही उन्होंने किसी राष्ट्र का कुछ छीना नहीं। अपने घोर शत्रु रावण का राज्य भी उन्होंने उसके सच्चरित्र भाई विभीषण को दे डाला। शोषण की नीति तो आर्यों ने कभी अपनायी ही नहीं। फिर मर्यादा पुरुषोत्तम एवं विश्ववंद्य शासक रामचन्द्र की क्या बात? उन्होंने सब-का-सब प्रकार से हित चाहा और किया। यदि भारत के केन्द्रीय-शासन को सुदृढ़ भी किया तो पारस्परिक कल्याण के लिए ही, किसी राष्ट्र का आर्थिक-शोषण करने के लिये नहीं।

ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उससे स्पष्ट है कि वाल्मीकीय रामायण विश्व का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसकी भाषा, भाव, शैली और छन्द सब-के-सब अनुपम हैं। इसमें नगर, वन, ऋतु, नदी, वृक्ष, पर्वत, समुद्र तथा अन्यान्य प्राकृतिक वस्तुओं और दृश्यों का बड़ा ही मनोहर वर्णन है। मानव-अन्तःकरण के असंख्य भावों के उत्थान-पतन एवं संघर्ष के ऐसे सजीव चित्र इसमें अंकित किये गये हैं कि पाठक इसे पढ़ना प्रारंभ कर आत्म-सुधि खो बैठता है। वीर रस प्रधान है; किन्तु अयोध्याकाण्ड के प्रारंभ से ही काव्य के अंत तक करुण रस की प्रच्छन्न, मधुर एवं मनोमोहिनी धारा अविराम रूप में बहती रहती है, जो प्रसंगानुकूल कभी स्निग्ध एवं कभी उत्कट हो उठती है। पात्रों के चरित्र सर्वथा मनोवैज्ञानिक हैं। सात्विक, राजस एवं तामस पात्रों के आदर्श इस ढंग से अंकित हुए हैं कि उनमें लेशमात्र भी कहीं कृत्रिमता नहीं दिखाई पड़ती है। इन रसों के अतिरिक्त अन्यान्य रसों का समावेश भी यथास्थान दिखाई पड़ता है। नीरस पद्य तो समग्र काव्य में कहीं है नहीं। अलंकारों की योजना स्वाभाविक एव रसोत्कर्षविधायक है। शब्द-शक्तियों का यथोचित स्फुरण भी काव्य को गरिमा परिवर्द्धित करता है। पात्रों के संवाद बड़े ही मार्मिक, समयोपयुक्त एवं चमत्कारकारी हैं। कवि की वाणी में इतनी ध्वन्यात्मकता, सरसता एवं अभिनयात्मकता है कि सहृदय पाठक उसके प्रवाह में पड़कर कभी आह्लादित, कभी चमत्कृत, कभी विस्मित, कभी पुलकित एवं कभी सर्वथा विमुग्ध बन जाता है। संदेशों को उत्तमता में तो 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त विश्व का कोई काव्य पहुँचता ही नहीं। सच पूछिये तो इसने अपनी 'पंचम वेद' की संज्ञा सार्थक सिद्ध कर दी है। निस्संदेह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


बालकाण्ड का निम्नांकित श्लोक इसके संबंध में सर्वथा सत्य है :—

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्,
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पण्यफलत्व मीयात्,
जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्॥

—वा॰ का॰ प्रथम सर्ग श्लो॰ सं॰ १००

इस महाकाव्य के पढ़ने से ब्राह्मण वाग् वैभव प्राप्त करता है, क्षत्रिय को भूमि पर अधिकार या राजत्व मिलता है, वैश्य को व्यापार में सफलता मिलती है और शूद्र को महत्त्व प्राप्त होता है।

**महाभारत**—काव्य-तत्त्वों का विकास वैदिक-साहित्य में ही दिखाई पड़ने लगा था। ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूक्त हैं—जिनमें अत्यन्त सुन्दर संवाद पाये जाते हैं। ब्राह्मणों में भी अनेक आख्यान, इतिहास और पुराण ( पुरानी कथाएँ ) पाये जाते हैं। ब्राह्मणों और गृह्य-सूत्रों से यह पता चलता है कि अश्वमेध यज्ञों में प्रतिदिन कथा-वाचन होता था। वीणावादक, वीणा बजाकर कर्त्ता की प्रशंसा में स्वरचित गाथाएँ गाया करते थे। इसी प्रकार किसी मनुष्य के देहावसान हो जाने पर उसके परिवार को सान्त्वना देने के लिए भी तरह-तरह की कथाएँ कही जाती थीं। सुपर्णाध्याय जो सम्भवतः कठोपनिषद् के समय का है, कद्रू, विनता और उनके पुत्र, सर्प और सुपर्ण ( गरुड़ ) के वैर का वर्णन करता है। यही कथा काव्य के रूप में महाभारत के आस्तीक पर्व में कही गयी है।

पीछे के वैदिक ग्रंथों में वेदों के साथ इतिहास और पुराण की चर्चा बार-बार की गयी है। इनकी गणना प्रायः अथर्ववेद के साथ की गयी है, और संभवतः वे उसी से सम्बद्ध भी थे। इससे यह प्रतीत होता है कि वैदिक संहिताओं के समान कोई बड़ा संग्रह इतिहास और पुराणों का भी रहा होगा, जिसमें देव, दानव, सर्प और मनुष्यों की कथाएं रही होंगी।

इस तरह के संग्रह का कोई प्रमाण तो नहीं मिलता, किन्तु यह सत्य है कि इस प्रकार की बहुत-सी कथाएँ वैदिक जनता में प्रचलित थीं, जिनका उपयोग अपने साहित्य में बौद्ध और जैन लेखकों ने तथा रामायण और महाभारत के रचयिताओं ने किया। इन कथाओं के रचयिता, वाचक, एवं रक्षक सूत कहलाते थे। ये राज-दरबारों से वृत्ति पाते थे। संभवतः रामायण के अतिरिक्त अन्यान्य काव्य-ग्रंथों के कथानकों के प्रवर्त्तक यही लोग हैं। यह भी संभव है कि महाभारत के बहुत-से अंश सूतों ही की रचना हो; क्योंकि महाभारत का मूल नाम जय-काव्य ही प्रसिद्ध है, और उसके प्रत्येक पर्व में प्रारम्भ में निम्नलिखित श्लोक मिलता है जो इसका जय नाम होने का प्रमाण है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



नारायण नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

महाभारत पहले जय-काव्य फिर भारत और अंत में महाभारत कहलाने लगा था। इससे यह स्पष्ट है कि उसके ये तीन नाम भिन्न-भिन्न समयों में विभिन्न संशोधनों के उपरान्त रक्खे गये हैं। इस प्रकार रामायण के समान महाभारत-किसी एक कवि का काव्य नहीं।

रामायण में भी प्रक्षिप्त अंश हो सकते हैं, पर उनके निकालने पर रामायण-काव्य एक कवि की रचना रह जाता है। उसकी एकता अखंडित दीख पड़ती है। किन्तु महाभारत में इतनी कथाएँ आकर मिल गयी हैं और उनकी रचना-प्रणाली एवं भाषा में इतना अधिक भेद है कि अपने वर्त्तमान रूप में तो वह किसी एक कवि की रचना हो नहीं सकता। उसमें प्रक्षिप्त अंशों की इतनी अधिकता है कि उन्हें निकालकर यथार्थ काव्य का स्वरूप दिखलाना अत्यन्त कठिन है।

इसमें शकुन्तला एवं दुष्यन्त के पुत्र भरत के वंश में उत्पन्न हुए कौरवों और पाण्डवों के घोर युद्ध का वर्णन है। मुख्य कथा तो बहुत थोड़ी है, और विश्व-विख्यात है। सूत्र रूप में वह यों कही जा सकती है।

हस्तिनापुर के राजा शान्तनु की गंगानाम की स्त्री थी जिनसे देवव्रत पैदा हुए। देवव्रत पितृ-प्रेम के कारण विवाह करना और राजा होना अस्वीकार कर भीष्म कहलाने लगे।

शान्तनु की दूसरी स्त्री सत्यवती से उनके दो पुत्र हुए, चित्रांगद और विचित्रवीर्य। विचित्रवीर्य के तीन पुत्र हुए—धृतराष्ट्र, पांडु एवं दासी-पुत्र विदुर।

धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे। उनके दुर्योधन आदि सौ पुत्र थे और उनकी एक मात्र कन्या दुःशीला थी, जो जयद्रथ से व्याही गयी थी। पाण्डु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव थे। पहले तीन कुंती के तथा चौथे और पाँचवे माद्री के पुत्र थे। इन एक सौ पाँच कुमारों ने पाण्डु के मरने पर पहले कृपाचार्य से, पीछे, द्रोणाचार्य से शस्त्र एवं शास्त्र सीखे। दुर्योधन के प्रपंच से ये पाण्डुपुत्र वरणावत के लाक्षागृह में अपनी माँ कुन्ती के साथ जलते-जलते बचे। द्रौपदी-स्वयम्वर में अर्जुन द्वारा द्रौपदी के जीते जाने पर और कुन्ती के भतीजे बलदेव और कृष्ण से मित्रता होने पर धृतराष्ट्र ने इन्हें आधा राज्य बाँट दिया। जरासंध को मारकर तथा चारों दिशाओं के राजाओं को जीतकर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। उसी यज्ञ में चेदिराज्य शिशुपाल मारा गया।

शकुनि की सहायता से दुर्योधन ने पाण्डवों को दो बार जुए में हराया। अन्तिम बार के जुए की शर्त में बारह वर्ष वनवास एवं एक वर्ष अज्ञातवास का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



दंड मिला। तेरह वर्ष बीतने पर, विराट के घर अज्ञातवास समाप्तकर, पाण्डव प्रकट हुए। दुर्योधन ने राज्य देना अस्वीकार किया। फलतः महाभारत युद्ध हुआ। अठारह दिनों तक युद्ध चलता रहा। पाँच पाण्डवों, श्रीकृष्ण और दो चार और व्यक्तियों को छोड़कर दोनों दलों के सब लोग मारे गये। उसके बाद युधिष्ठिर ने ३६ वर्षों तक राज्य किया। पीछे श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने पर वे अपना राज्य अपने पोते परीक्षित को देकर अपने चारों भाइयों और द्रौपदी के साथ हिमालय में जाकर गल गये।

महाभारत में आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रास्थानिक एवं स्वर्गारोहण ये अठारह पर्व हैं। इन अठारह पर्वों में २१०८ अध्याय हैं। इनमें से केवल एक हजार अध्यायों में मुख्य कथा कही गयी है। इससे स्पष्ट है कि महाभारत की मुख्य कथा उसके वर्त्तमान रूप के आधे से भी कम है।

महाभारत के दूसरे आधे से भाग में बहुत-सी दूसरी-दूसरी कथाएँ हैं, जो नीति, धर्म, दर्शन, राजवंश-वर्णन, तथा अन्यान्य अनुश्रुतिमूलक तथा ऐतिहासिक विषयों से संबंध रखती हैं। इनका मुख्य कथा से नाममात्र का ही सम्बन्ध है। आदि पर्व के प्रारम्भ का सम्भव पर्व इसी प्रकार की कथाओं से बना हुआ है। उसमें कौरव-पाण्डवों के पूर्वजों, विशेषतः दुष्यन्त-पुत्र भरत के अतिरिक्त अनेक देवों, दानवों, राजाओं और ऋषि-मुनियों की मनोरंजक कहानियाँ हैं। इसी प्रकार ययाति और नहुष की कथाएँ भी इस पर्व में बड़े विस्तार से कही गयी हैं।

महाभारत के भीतर कुछ इतनी विस्तृत एवं काव्यत्वपूर्ण कथाएँ हैं, जो स्वयं उत्कृष्ट काव्य कहला सकती हैं। नल-दमयन्ती की कथा, रामोपाख्यान, विदुला और संजय की कथा, इनमें से प्रत्येक एक-एक काव्य या महाकाव्य हैं।

प्राचीन अनुश्रुतियों में से जनमेजय का नागयज्ञ, समुद्र-मंथन, सुपर्णा-आख्यान रुरु और च्यवन की कथा, जलप्लावन से मनु का बचना, सावित्री-सत्यवान की कथा और ऋष्य शृंग वशिष्ठ, विश्वामित्र नचिकेता इत्यादि की कथाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और रोचक हैं। इनके अलावे बहुत-सी छोटी-छोटी कहानियाँ भी पायी जाती हैं। जिनमें पशु-पक्षियों के व्यवहार और संवाद के रूप में कोई-न-कोई उपदेश भरा गया है। राजा शिवि, मुद्गल, गौतमी, गृद्ध, शृंगाल, जाजलि, मेधावी इत्यादि की कथाएँ जितनी ही सुन्दर हैं उतनी ही नीतिपूर्ण। इनके अतिरिक्त इनमें अनेक गीत में कहीं गयी हैं जिनमें भगवद्गीता सर्वश्रेष्ठ है। महाभारत का परिशिष्ट अंश हरिवंश कहलाता है। जिसमें सोलह हजार तीन सौ चौहत्तर श्लोक हैं। यह हरिवंश महाभारत के १८ पर्वों के बाहर है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण के वंश की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



उत्पत्ति और विनाश के अतिरिक्त बहुत-सी कथाएँ हैं, जिनमें से कई महाभारत के दूसरे पर्वों में कही जा चुकी हैं।

वर्त्तमान महाभारत का समय निर्धारण करना एक जटिल प्रश्न है। इस संबंध में बहुत कुछ तर्क और अनुमान उपस्थित कर विन्टरनित्स ने इसका रचना-काल चौथी सदी बी० सी० से ई० सन् ४०० तक माना है।

इस ग्रन्थ के चार संस्करण मिलते हैं, कलकत्ता-संस्करण १८३४ से १८३६ तक सम्पादित हुआ था और बम्बई-संस्करण उसके पीछे, नीलकंठ की टीका के साथ प्रकाशित हुआ था। इन दोनों में तो विशेष पाठ-भेद नहीं है। किन्तु बर्दवान संस्करण और कुम्भकोकणम् संस्करण में और उपयुक्त संस्करणों में पाठ-भेद बहुत है। जब तक महाभारत का कोई आलोचनात्मक दृष्टि से सम्पादित संस्करण नहीं प्रकाशित होता तब तक महाभारत का समय ठीक-ठीक निश्चित करना संभव नहीं है।

महाभारत या उसके प्रारंभिक रूप 'जय' काव्य के समय के लिए पहले तो उसके पात्रों के समय पर विचार करना आवश्यक है।

समग्र वैदिक-साहित्य में महाभारत की चर्चा नहीं है। ब्राह्मणों और उपनिषदों में आख्यान, इतिहास, पुराण, और नाराशंसी शब्दों का प्रयोग प्राचीन कथा-कहानियों के लिए पाया जाता है।

महाभारत-युद्ध या उस घटना से सम्बद्ध कुरुक्षेत्र की चर्चा उनमें नहीं पायी जाती। उनमें कुरुक्षेत्र की चर्चा है, परन्यान्य प्रसंगों में ब्राह्मणों में जनमेजय और दुष्यन्त-शकुन्तला-पुत्र भरत का उल्लेख है, और अथर्ववेद के कुन्तप सूक्तों में परीक्षित की प्रशंसा भी है। विचित्रवीर्य्य के पुत्र धृतराष्ट्र की चर्चा भी ब्राह्मण-ग्रन्थों में मिलती है। परन्तु पाण्डु या पाण्डव की चर्चा उनमें कहीं नहीं मिलती। सांख्यायन, श्रौत-सूत्र में कुरुक्षेत्र में कौरव-विनाशक युद्ध का उल्लेख सबसे पहले मिलता है। आश्वलायन गृह्य-सूत्र में भारत और महाभारत की भी चर्चा पायी जाती है। पाणिनि ने युधिष्ठिर, भीम एवं विदुर शब्दों की चर्चा की है। और पतंजलि ने महाभारत-युद्ध का स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि महाभारत के अधिकांश पात्र ऐतिहासिक हैं। संभव है कि 'जय' काव्य की रचना चौथी सदी बी० सी० के आस-पास या उससे भी पहले हुई हो, जो क्रमशः बढ़ते-बढ़ते भारत एवं महाभारत हो गया हो। मेरे विचार से महाभारत की बहुत-सी कथाएँ और प्रथाएँ वैदिक-काल से भी पुरानी हैं। उदाहरणार्थ कुन्ती और माद्री का नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करना, विचित्रवीर्य्य के क्षेत्रज पुत्र धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म लेना तथा उत्तर कुरु की एक स्त्री के बहुत-से पति होना। ये सब प्रथाएँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ऐसी हैं जो ऋग्वेद की सुदृढ़ विवाह-प्रथा की समकालीन एवं बाद की बातें नहीं हो सकतीं।

दुष्यन्त-शकुन्तला, और पुरुरवा-उर्वशी की कथाएँ अत्यन्त प्राचीन हैं। पर साथ ही महाभारत का बहुत-सा प्रक्षिप्त-अंश ४०० ई० का भी हो सकता है। जिस प्रकार भगवान रामचन्द्र ने रामायण के समय में समग्र देश का एक शासन में संगठन किया था, उसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने भी किया था। रामचन्द्र जी का अपना राज्य था और उसे ही उन्होंने लोक-कल्याण के लिए विस्तृत बनाया।

किन्तु कृष्णचन्द्र स्वयं राजा न थे, और न उन्हें राजा या सम्राट् होने की इच्छा थी। भारतमाता के कल्याण की दृष्टि से उन्होंने तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ शासक धर्मराज युधिष्ठिर के साम्राज्य को ही विस्तृत किया। उनके समय में भारत असंख्य छोटे-छोटे राज्यों में बँटा था और उनमें से अधिकांश के शासक उपद्रवी, अहंकारी और अत्याचारी थे। इनमें सबसे बली था मगध-नरेश जरासंध, जिसने अपने यहाँ असंख्य राजाओं को कैद कर रक्खा था। यहाँ तक कि उसने १६१०० सोलह हजार एक सौ कुमारियाँ भी कैद कर रक्खी थीं। इस समय के प्रधान प्रान्त और शासक निम्नलिखित थे।

| प्रान्त | शासक |
|---|---|
| हस्तिनापुर या कुरु देश ... ... | दुर्योधन |
| इन्द्रप्रस्थ ... ... ... | युधिष्ठिर |
| पाञ्चाल ... ... ... | द्रुपद |
| द्वारिका और मथुरा ( शूरसेन और गुजरात ) ... | उग्रसेन |
| अंग ... .. ... | कर्ण |
| मगध ... ... ... | जरासंध |
| कोशल ... ... ... | बृहद्बल |
| अयोध्या ... ... ... | दीर्घयज्ञ |
| मिथिला ... ... ... | वैदेह जनक |
| वंग ... ... ... | समुद्र सेन |
| दशार्ण ... ... ... | सुधर्मा, |
| पुलिंद ... ... ... | सुमित्र |
| चेदि ... ... ... | शिशुपाल |
| पौंड्र ( उत्तरी बङ्गाल ) ... ... | वासुदेव |
| अवंती ... ... ... | विंद और अनुविंद |
| भोजकट ... ... ... | भीष्मक |

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


| प्रान्त | | | शासक |
|---|---|---|---|
| माहिष्मती | ... | ... | नील |
| किष्किंधा ... | ... | ... | द्विविद और मयंद |
| मद्र ... | ... | ... | शल्य |

इन राज्यों के अतिरिक्त लगभग ७० या ८० और छोटे-छोटे राज्य थे, जो शक, वर्वर, शूद्र, निषाद और म्लेच्छ आदि जातियों के राजाओं द्वारा शासित थे। ये अनार्य राजे भारत के अत्यन्त पूर्व, अत्यन्त दक्षिण, सिंध, तथा पंजाब की पश्चिमीय सीमा पर थे। शेष प्रान्तों के शासक आर्य्य थे। भगवान् कृष्ण ने यह समझ लिया था कि यदि भारत में एक केन्द्रीय शासन सुदृढ़ बनाकर अन्य शासकों को उसकी अधीनता में न रक्खा जायगा, तो वाहरी आक्रमण होने पर भारत स्वतन्त्र न रह सकेगा, साथ ही उन्होंने बहुत से अन्यायी और अत्याचारी शासकों का दमन अत्यन्त आवश्यक समझा था। कंस, जरासंध, शिशुपाल, दंतवक्र, कालयवन, साल्व, शंवर, नरक और रुक्मी आदि का तो उन्होंने स्वयं दमन किया और कराया। महाभारत-युद्ध रोकने का उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, पर कर्ण और दुर्योधन उन्हीं को कैद करने की चेष्टा करने लगे। अन्त में पाण्डवों का पक्ष न्यायपूर्ण समझकर और सत्यवादी धर्मराज युधिष्ठिर को भारत का सम्राट् होने योग्य मानकर उन्होंने उन्हीं का पक्ष लिया और उन्हें विजय दिलायी।

महाभारत असंख्य उपदेशों का भांडार है, इनमें से सबसे प्रमुख है, मद्यपान और जुए के खेल के विनाशकारी प्रभाव से बचना, पारस्परिक फूट और स्वार्थपूर्ण बुद्धि का परित्याग। इनके अतिरिक्त संसार में जो कुछ मानव जीवन को पूर्ण और सफल बनाने में आवश्यक है वह सब कुछ महाभारत में वर्त्तमान है। महाभारत के माहात्म्य का स्वयं ब्रह्मा जी ने व्यासजी से यों वर्णन किया है :—

जडान्धवधिरोन्मत्तं तमोभूतं जगद् भवेत्।
यदि ज्ञानहुताशेन त्वया नोज्ज्वलितं भवेत्॥
तमसान्धस्य लोकस्य वेष्टितस्य स्वकर्मभिः।
ज्ञानाञ्जन शलाकाभिः बुद्धिनेत्रोत्सवः कृतः॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थैः समास व्यास कीर्त्तनैः।
त्वया भारत सूर्येण नृणां विनिहितं तमः॥
पुराण पूर्ण चन्द्रेण श्रुति ज्योत्स्ना प्रकाशिना।
नृणां कुमुद सौम्यानां कृतं बुद्धि-प्रसादनम्॥
इतिहास - प्रदीपेन मोहावरण घातिना।
लोक - गर्भ - गृहं कृत्स्नं यथावत् सम्प्रकाशितम्।


RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


अर्थात् हे व्यास जी! यह सारा जगत अन्धकारपूर्ण जड़, अन्धवधिर, और उन्मत्त हो जाता, यदि महाभारत रूपी ज्ञानाग्नि से तुम इसे उज्ज्वल नहीं बनाते। अन्धकार से व्याप्त और अपने कर्म्मों से घिरे हुए लोगों के बुद्धिरूपी नेत्र के लिए तुमने महाभारत रूपी सुन्दर अञ्जन की सलाई बनायी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सबों का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन देकर तुमने महाभारत रूपी सूर्य्य से लोगों के अज्ञानांधकार को नष्ट कर दिया। इस महाभारत में पुराणरूपी पूर्णचन्द्र का जो कि वेदरूपी चंद्रिका से प्रकाशित है, वर्णन देकर कुमुद के समान सौम्य मनुष्यों की बुद्धि को तुमने प्रफुल्लित कर दिया। अज्ञानरूपी आवरण को नष्ट करनेवाले, भारत में वर्णित इतिहास रूपी दीपक से तुमने लोगों के समग्र अन्तःकरण को अच्छी तरह से प्रकाशित कर दिया। इस महान् ग्रंथ का विस्तार एक लाख श्लोकों में हुआ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# पाली-साहित्य

वैदिक साहित्य इतना प्राचीन है कि उसके संबंध में किसी संवत् का उल्लेख नहीं किया जा सकता। वह समय कितना प्राचीन था इसका भी ठीक-ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता। इसलिए उस काल को प्रागैतिहासिक ही कहना उचित होगा। इसी प्रकार महाकाव्यों का प्रथम स्वरूप भी प्रागैतिहासिक काल का ही है। किन्तु पाली-साहित्य के संबंध में यह बात नहीं है। इस साहित्य का प्रारंभ प्रायः ऐतिहासिक युग में होता है। अतएव हम इसकी उत्पत्ति और विकास-क्रम के समय का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

पाली-साहित्य के प्रारंभ होने के पूर्व भारतीय आर्यों की सामाजिक और धार्मिक दशा कैसी थी यह समझ लेना आवश्यक है। इस समय आर्य और अनार्य-संघर्ष से बहुत कुछ पराङ्मुख हो चुके थे। पारस्परिक वैवाहिक संबंध भी होने लगा था। एक दूसरे की संस्कृतियों को अपनाने लग गये थे। भारत की अनार्य भाषाओं में भी जो संस्कृत के बहुत से शब्द पाये जाते हैं वे इस बात के प्रमाण हैं। यही नहीं अनार्य भाषाओं के साहित्य भी आर्य भाषाओं के साहित्य पर ही बहुत कुछ निर्भर करते हैं। अतएव भाषा और साहित्य की दृष्टि से देखने पर हमें यह प्रतीत होता है कि इस समय आर्य और अनार्य संस्कृतियों में बहुत कुछ सामञ्जस्य स्थापित हो चला था।

ऐसी परिस्थिति में हमारी प्राचीन रूढ़ियों के प्रतिकूल सामान्य जनता की धारणा होना सर्वथा स्वाभाविक था। ब्राह्मणों ने यह समझ लिया था कि धर्मग्रंथों का अध्ययन-अध्यापन केवल उन्हीं का काम है। उनमें से अधिकांश वैदिक कर्मकाण्ड के अन्धभक्त थे, अतएव वैदिक विधियों में उस समय हिंसा की जो आवश्यकता होती थी उसके वे कट्टर समर्थक थे। साथ ही वर्णाश्रम धर्म के प्रतिकूल वे कोई बात सुन नहीं सकते थे। अतः जनसमूह में स्वभावतः क्रांति की भावना उत्पन्न हुई जिसका प्रतिनिधित्व कपिलवस्तु के सिद्धार्थ नामक एक राजकुमार ने किया और इससे भारतीय विचार धारा में जो परिवर्त्तन हुआ, पाली-साहित्य उसी का प्रतिबिंब है।

सिद्धार्थ या गौतम की मृत्यु ४८५ ई० पू० में हुई। उनकी मृत्यु ८० वर्ष की अवस्था में हुई थी। उन्होंने २९ वर्ष की अवस्था में यतिवेष धारण किया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


इसी दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता है कि भगवान् बुद्ध का कार्यकाल ५३५ ई० पू० से ४८५ ई० पू० तक रहा होगा। उनके प्रचार-क्षेत्र प्रधानतः मगध और कोशल अर्थात् आधुनिक बिहार और अवध के प्रान्त थे। भगवान् बुद्ध ने याज्ञवल्क्य, शांडिल्य और शौनक के समान किसी ग्रंथ की स्वयं रचना नहीं की थी; किन्तु उनके विचार बहुत कुछ उनके शिष्यों एवं अनुयायियों के ग्रंथों में भरे पड़े हैं। भगवान् बुद्ध के इन्हीं विचारों तथा इन्हीं के अनुकूल उनके शिष्यों और अनुयायियों की भिन्न-भिन्न रचनाओं से त्रिपिटक का निर्माण हुआ है। पाली-साहित्य इस त्रिपिटक के सिवा कुछ नहीं है।

त्रिपिटक का अर्थ होता है तीन पिटारियाँ या सन्दूक। त्रिपिटक में तीन पिटक या तीन ग्रंथो के संदूक हैं। इन्हें विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्म पिटक कहते हैं। विनयपिटक में बौद्ध-संघ ( साधुओं की जमात ) के आचार-संबंधी नियम तथा भिक्षु-भिक्षुणियों के दैनिक जीवन से संबंध रखनेवाली बातें वर्णित हैं। सुत्तपिटक में संवाद या धर्म के तत्त्व संक्षिप्त रूप में वर्णित हैं। इसमें पाँच निकाय हैं। जिनमें सुत्तों या सुत्तान्तों का संग्रह है। अभिधम्मपिटक में धर्म की सूक्ष्म व्याख्या है। इसका विवेचन बहुत ही उच्चकोटि का है। यथार्थ में यही ग्रंथ बौद्धों के आचार का मनोवैज्ञानिक आधार है।

त्रिपिटक का पहला उल्लेख मिलिन्दप्रश्न में पाया जाता है जो ईसा की प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ का है। इससे यह स्पष्ट है कि त्रिपिटक के अधिकांश ग्रंथ उस समय से पूर्व के ही हैं। हमारा यह अनुमान है कि त्रिपिटक का सारा साहित्य ई० सन् से ३०० वर्ष पूर्व से लेकर ई० सन् के प्रारम्भ तक का है। इस बात के लिए मिलिन्दप्रश्न, दीपवंश और महावंश प्रमाण हैं। क्योंकि ग्रंथों से प्रकट है कि ई० सन् के प्रारम्भ होते-होते तक त्रिपिटकों का अस्तित्व था।

१ विनयपिटक के भीतर निम्नलिखित ग्रंथों के समूह हैं।

क—सुत्तविभंग :—अर्थात् महाविभंग और भिक्खुनी विभंग।

ख—खंधक—अर्थात् महावग्ग और चुल्लवग्ग।

ग—परिवार या परिवार पाठ।

विनयपिटक का मुख्यतत्त्व पातिमोक्ख है। जिसका अर्थ है संघ के नियमों के उल्लंघन और उनका प्रायश्चित। सुत्तविभंग में दो सौ सत्ताइस पातिमोक्खों का वर्णन है। महाविभंग में आठ अध्याय हैं जिनमें आठ प्रकार के नियमों के उल्लंघन का प्रायश्चित्त हैं। भिक्षुणियों के द्वारा संघ के नियमों के उल्लंघन और उनके प्रायश्चित्त का वर्णन भिक्षुणी-विभंग में है। खंधकों में संघ के विविध प्रबंधों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



और भिक्खु-भिक्खुनियों के दैनिक जीवन का वर्णन है। चुल्लवग्ग में भिक्खुनियों के कर्त्तव्यों का वर्णन है।

विनयपिटक का अन्तिम ग्रंथ परिवार है जो सिंहल के एक भिक्षु की रचना है। इसमें उन्नीस छोटे-छोटे शीर्षक हैं जिनका रूप प्रश्न और उत्तर का है।

२—सुत्तपिटक में पाँच निकाय हैं। जैसे दीर्घनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय।

दीर्घनिकाय में चौंतीस बड़े-बड़े सुत्त हैं जिनमें प्रायः आचार-सम्बन्धी बातें हैं।

मज्झिमनिकाय छोटे-छोटे सुत्तों का संग्रह है। इसमें १५२ सुत्त या संवाद हैं।

संयुक्तनिकाय का अर्थ है सम्बद्ध संवाद। जिसमें छप्पन संयुक्त सुत्त हैं।

सबसे बड़ा अंगुत्तर निकाय है। इसमें २३०८ सुत्त हैं जो ग्यारह निपातों में विभक्त हैं। अंगुत्तर निकाय के एक से ग्यारह निपातों तक ऐसी चीजों का वर्णन है जो इस संसार में एक से ग्यारह तक हैं। अर्थात् पहले निपात में उन्हीं चीजों का वर्णन है जो संसार में अकेली हैं। दूसरे निपात में ऐसी चीजों का वर्णन है जो संसार में दो हैं और इसी प्रकार ग्यारह तक हैं।

खुद्दकनिकाय निकायों में सर्वश्रेष्ठ है। इसमें पन्द्रह ग्रंथ हैं। पहले का नाम है खुद्दकपाठ जिसमें नौ छोटे-छोटे पाठ हैं। खुद्दक निकाय का दूसरा ग्रंथ धम्मपद है। इसका वर्णन विस्तार के साथ आगे किया जायगा। खुद्दक निकाय का तीसरा ग्रंथ है उदान। इसमें भगवान बुद्ध के जीवन की छोटी-छोटी कहानियों और उनके उद्‌गारों का वर्णन है। निकाय का चौथा ग्रंथ इतियुत्तक है। इसमें गद्य और पद्य दोनों ही है। इतियुत्तक का अर्थ है—भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा। इससे स्पष्ट है कि इसमें भगवान बुद्ध की कही हुई कहानियाँ हैं। पाँचवाँ ग्रन्थ सुत्त निपात है। इसमें बौद्ध धर्म के अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्तों का वर्णन है। छठें ग्रन्थ का नाम है विमानवत्थु और सातवें का पेतवत्थु। ये दोनों छोटी-छोटी कहानियों के ग्रंथ हैं जिनमें शिक्षाएँ दी गयी हैं। आठवें ग्रन्थ का नाम है थेर-गाथा और नवें का थेरी-गाथा। पहले में एक सौ सात कविताएँ हैं और दूसरे में तिहत्तर। दसवें ग्रन्थ का नाम है जातक। इसमें भगवान बुद्ध के पूर्वजन्मों की कहानियाँ कही गयी हैं। जातकों का महत्त्व कला और साहित्य की दृष्टि से ही नहीं सभ्यता के इतिहास की दृष्टि से भी बहुत है। जातकों में जो सभ्यता का चित्र है वह बड़ा ही प्राचीन है। निद्देशखुद्दकनिकाय का ग्यारहवाँ ग्रंथ है। इससे हमें यह मालूम होता है कि धार्मिक ग्रंथों की किस प्रकार व्याख्या करनी चाहिये। बारहवाँ ग्रंथ पटिसंभिदमग्ग है जिसमें बौद्धधर्म के मुख्य तत्त्वों का विवेचन है। खुद्दकनिकाय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



की तेरहवीं पुस्तक अपादान है। इसमें भक्ति और आत्मत्याग की कथाएँ कही गयी हैं। चौदहवीं पुस्तक बुद्धवंश है। इसमें बुद्ध के पूर्व के चौबीस बुद्धों की कहानियाँ हैं। खुद्दकनिकाय की अन्तिम पुस्तक चर्यापिटक है। इसमें पैंतीस पद्यात्मक जातक हैं। इसमें बुद्ध के भिन्न-भिन्न जन्मों की पारमिता या पूर्णता का वर्णन है।

३. **अभिधम्मपिटक:**—अभिधम्म का अर्थ है उच्चधर्म या धर्म की ऊँची सूक्ष्मता। अभिधम्मपिटक की पहली पुस्तक धम्मसंगणी है। इसमें धर्म का वर्गीकरण और उसकी परिभाषा है। इस पिटक की दूसरी पुस्तक विभंग है जो संगणी का क्रम जारी रखती है। इसमें बौद्धधर्म के मौलिक सत्यों, इन्द्रियजन्य ज्ञान तथा सूक्ष्म ज्ञान का वर्णन है। तीसरी पुस्तक धातु कथा है जिसमें मनोविज्ञान के तत्त्वों का विश्लेषण है। चौथी पुस्तक का नाम है पुंगल पञ्ञति। इसमें मनुष्यों के व्यक्तित्व का वर्णन है। पांचवी पुस्तक का नाम कथा वत्थु है। इसका संपादक तिस्स मोग्गलिपुत्त है, जो बौद्धों की तीसरी सभा का सभापति था। यह संवाद के रूप में है।

पाली-साहित्य में कुछ ऐसे भी ग्रंथ है जिन्हें लौकिक साहित्य कहा जा सकता है। इनमें मिलिन्द प्रश्न की सबसे पहले गणना है, दूसरा ग्रंथ दीपवंश है और तीसरा ग्रंथ महावंश। इसके अतिरिक्त बहुत-सी टीका-टिप्पणियाँ त्रिपिटक के भिन्न-भिन्न ग्रंथों पर लिखी गयी हैं। कुछ ग्रंथ ऐसे भी हैं जो पाली और संस्कृत दोनों भाषाओं के मिश्रित रूप में लिखे गये हैं।

मिलिन्द प्रश्न में कुछ ऐसे प्रश्नों के उत्तर हैं जिन्हें ग्रीकराजा मिनेन्ड्रोस ने किसी बौद्ध साधु से पूछे थे। यह शाकल का राजा था और इसका राज्य सिंधु प्रदेश से लेकर गुजरात और गंगाप्रदेश तक विस्तृत था।

दीपवंश, जिसके लेखक का नाम मालूम नहीं है; चौथी और पांचवी शताब्दी का है। उसने त्रिपिटक के बुद्धवंश, चर्यापिटक और जातक का अनुकरण किया है। उसका ग्रंथ काव्य की शैली पर है। महावंश नामक ग्रंथ का लेखक महानाम था जो पांचवीं शताब्दी के अंत में था। यह एक सुन्दर महाकाव्य है। महावंश का लेखक पर्याप्त क्षमता रखता है। इसमें सिंहल को विजय करनेवाले विजय की कथा है।

**धम्मपद**—यह ग्रंथ बौद्ध धर्म के प्रधान तत्त्वों का संग्रह है। जिस प्रकार गीता उपनिषदों का सारतत्त्व है उसी प्रकार धम्मपद बौद्धधर्म का। इसीलिए कभी-कभी इसे बुद्ध गीता भी कहते हैं। कहा जाता है कि भगवान बुद्ध ने अपने जीवन में भिन्न-भिन्न ग्रामों में भिन्न-भिन्न शिष्यों को उपदेश देते समय जो पद्यात्मक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



उद्‌गार प्रकट किये थे, धम्मपद में उन्हीं का संग्रह है। यह ग्रंथ छब्बीस वर्गों में सजाया गया है। इन वर्गों के नामों से ही विषय का पता चल जाता है। इसमें सब मिलाकर चार सौ तेइस गाथाएँ या पद्य हैं। इसकी भाषा अत्यन्त सरल है। भाव स्पष्ट और मर्म्मस्पर्शी हैं। इसमें आत्मसंयम करने और अप्रमाद से बचने का उपदेश है। जातीय-अभिमान और अप्रतिरुद्ध वासनाओं के त्यागने का आदेश है। मूर्ख, पण्डित, सुख, नरक इत्यादि के स्वरूपों की व्याख्या है। पाठक इसके उपदेशों से बहुत शीघ्र प्रभावित हो जाते हैं; और बौद्धधर्म के गंभीर तत्त्वों को सरलता से हृदयगम कर लेते हैं।

---

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# प्राकृत-साहित्य

जिस प्रकार पाली साहित्य में बौद्ध-धर्म ग्रंथों की भरमार है उसी प्रकार प्राकृत-साहित्य में जैन-धर्म ग्रंथों की। बौद्ध ग्रंथों में जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर संत वर्द्धमान महावीर को निग्रंथिनात पुत्त के नाम से स्मरण किया गया है। जैनों के अनुसार उनका धर्म अत्यन्त प्राचीन है। भगवान महावीर ने उसको पुनर्जीवन प्रदान किया था। भगवान् महावीर ने भगवान् बुद्ध से अधिक अहिंसा पर जोर दिया था। उन्हें आत्मा के अस्तित्व पर भी विश्वास था और तपश्चर्या उनके धर्म-साधनों में प्रधान थी। वाह्य रूप से देखने पर जैनधर्म अपने समय में भारत का एक राष्ट्रीय धर्म था। यह अन्तार्राष्ट्रिय धर्म कभी नहीं हो सका; किंतु बौद्धधर्म अन्तार्राष्ट्रिय धर्म वन गया है। यही कारण है कि जैन धर्म-ग्रंथों के सभी लेखक भारतीय ही हैं; सीलोन, वर्मा या तिब्बत के नहीं हैं।

जैन-साहित्य भारतीय भाषाओं के इतिहास की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यह सर्वदा लोक-भाषा में लिखा जाता रहा है। इसीलिये इसके धर्म-ग्रंथ और उनके भाष्य प्राकृत की मागधी या महाराष्ट्री भाषाओं में लिखे गये हैं। आठवीं सदी के बाद के जैन-लेखकों ने या तो संस्कृत को अपनाया है या तत्कालीन लोक-भाषा अपभ्रंश को। यहां तक कि आज के जैन-लेखक हिंदी, गुजराती, तामिल और कन्नड़ इत्यादि भारतीय भाषाओं में भी अपनी ग्रंथ-रचनायें करते हैं। जैनों के धर्मग्रंथ सिद्धान्त या आगम कहलाते हैं। इसके वारह अंग हैं।

१. आचारांग सूत्र २. सूत्र कृतांग ३. स्थानांग ४. समवायांग ५. व्याख्या प्रज्ञिप्ति ६. ज्ञात धर्मकथा ७. उपासक दशाः ८. अन्तकृद्दशाः ९. अनुत्तरोपपत्तिक दशाः १०. प्रश्न व्याकरणानि ११. विपाक सूत्रम् १२. दृष्टिवाद।

इनके अतिरिक्त वारह उपांग, दस प्रकीर्ण, छः छेद-सूत्र, चार मूल-सूत्र, तथा नंदी-सूत्र और अनुयोग-सूत्र आदि जैन धर्म के महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। धम की दृष्टि से इनकी महत्ता जो कुछ भी हो, साधारण साहित्य की दृष्टि से इनका वर्णन संभवतः रुचिकर न होगा, इसलिये प्राकृत साहित्य के लौकिक स्वरूप पर ही विचार करना समुचित प्रतीत होता है।

जैन धर्म के ग्रंथों की भाषा अर्द्ध-मागधी, जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी है; किन्तु प्राकृत का लौकिक-साहित्य कई प्रकार भाषाओं में मिलता है। प्राकृत में दृश्य और श्रव्य दोनों प्रकार के काव्य मिलते हैं। दृश्य काव्यों में प्राकृत का महत्त्व बहुत अधिक है। संस्कृत के प्रायः प्रत्येक दृश्य काव्य के बहुत से पात्र अधिकांशतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



ही बोलते हैं। केवल तीन दृश्य काव्य ऐसे प्राप्त होते हैं जो केवल प्राकृत में लिखे गये हैं। इनके नाम यों हैं। घनश्याम लिखित आनंदसुंदरी, विश्वेश्वर लिखित शृंगार मंजरी और राजशेखर लिखित कर्पूर मंजरी। केवल प्राकृत में लिखे हुए कई महाकाव्य भी प्राप्त होते हैं। जैसे प्रवर सेन लिखित सेतुबंध, वाक्पति राज लिखित गौड़वध, एवं मधुमत्त विजय। हेमचन्द्र लिखित कुमारपाल चरित। जयचन्द्र सूरि लिखित हम्मीर-विजय और हरिदास लिखित विक्रम चरित। प्राकृत में खंडकाव्य भी अनेक हैं, जिनमें विशुद्ध साहित्यिक हाल कवि लिखित सप्तशती और जयवल्लभ लिखित वज्जालग्गम हैं।

यदि प्राकृत का धार्मिक और लौकिक समग्र साहित्य लिया जाय तो पाली साहित्य से यह अधिक विस्तृत है। प्राकृत के लौकिक साहित्य में से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण दृश्य और श्रव्य काव्य का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

**गाथा सप्तशती**—यह एक सुप्रसिद्ध प्राकृत-मुक्तक काव्य है जिसमें शृङ्गार रस की प्रधानता है। यह ग्रंथ ईसा की प्रथम सदी में या इससे कुछ पीछे लिखा गया होगा। इसकी कविता जीवन के इतना समीप है कि संस्कृत की भी इस प्रकार की रचनायें इसके समकक्ष नहीं पहुँच सकतीं। इसके भाव जितने ही आनंदवर्द्धक हैं उतने ही मनोरंजक। यह सरल दिहाती जनों के स्वाभाविक प्रेम का चित्रण करती है। कहीं गोप-गोपियों के प्रेम का चित्रण है तो कहीं बगीचों की रखवाली करती हुई बालिकाओं का। कहीं पर आटा पीसती हुई बालिका का चित्र है तो कहीं शिकारी और मजदूर का। दिहाती लोगों के बीच में भिन्न-भिन्न ऋतुओं के कारण किस प्रकार प्रेम और आह्लाद का संचार होता है इसे दिखाने में कवि ने अपूर्व कौशल का प्रदर्शन किया है। शृङ्गार प्रधान होते हुए भी इसमें करुण रस का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से स्थान-स्थान पर मिलता है जिसे पढ़कर बार-बार भवभूति का स्मरण हो आता है। शृङ्गार के अतिरिक्त अन्यान्य रसों का समावेश भी इसमें बड़ी दक्षता से किया गया है। माताओं के समीप भूमि पर रेंगते हुए बच्चों का तथा दूध की दँतुलियाँ दिखलाते हुए पिता की गोद में किलकते शिशुओं का चित्रण भी इस काव्य में हमें प्राप्त होता है। इसमें प्रधानतया ग्राम्य-जीवन के चित्र हैं जो भारतीय वातावरण में अत्यन्त मनोहर लगते हैं। भिन्न-भिन्न ऋतुओं के प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण भी इसमें बहुत मनोहर है। कहीं फूलों पर भौंरे मँडरा रहे हैं। कहीं मोर मेघों के गर्जन से आह्लादित होकर अपने पर फैलाकर नाच रहे हैं। कहीं विरहातुर मृगियाँ अपने मृगों को खोज रही हैं। स्थान-स्थान पर इसमें व्यावहारिक नीति की सूक्तियाँ भी हैं। इस ग्रंथ में इतना रस भरा हुआ है कि आगे चलकर गोवर्द्धन ने संस्कृत में इसके अनुकरण पर आर्यासप्तशती और बिहारी ने हिंदी में बिहारी-सतसई लिखी और प्रचुर यश अर्जित किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



**सेतुबंध**—सेतुबंध महाकाव्य के रचयिता प्रवर सेन कहे गये हैं। ये प्रवरसेन कौन थे यह कहना कठिन है। कुछ लोगों ने मातृगुप्त और कालिदास को एक मानकर काश्मीर के महाराज प्रवर सेन के लिए मातृगुप्त-कालिदास के द्वारा सेतुबंध काव्य का लिखा जाना बतलाया है, पर यह सही नहीं है।

औचित्य विचार-चर्चा में मातृगुप्त और कालिदास का पृथक्-पृथक् नामों से उल्लेख हुआ है। इसका लेखक आचार्य दण्डी और बाणभट्ट से भी प्राचीन है। बाणभट्ट ने इसका उल्लेख हर्षचरित में और दण्डी ने अपने काव्यादर्श में किया है। अतः यह ग्रंथ ईस्वी सन् की छठी सदी में था इससे भी दो-चार सौ वर्ष पहले लिखा गया होगा।

इस ग्रंथ में सर्गों का नाम आश्वास एव श्लोकों का नाम स्कंधक रक्खा गया है। इसमें पन्द्रह आश्वास हैं। प्रथम आश्वास के प्रारंभ में विष्णु की स्तुति है है; किंतु इस काव्य का कवि शिव को भी विष्णु के समान मानकर ही उनकी स्तुति करता है; अतः वह वैष्णव होने पर भी अनुदार नहीं है। प्रथम आश्वास के बारहवें छन्द में उसने इस काव्य का दूसरा नाम दशमुखवध भी बतलाया है। इस ग्रंथ में भगवान रामचन्द्र की कथा कही गयी है; किंतु किष्किंधाप्रवास के पूर्व की कथा की सूचना मात्र ही दी गयी है।

प्रथमोश्वास में राम के विरह और रावण को मारने के लिए उनके समुद्र तट तक आने का वर्णन है। दूसरे आश्वास में समुद्र को देखकर वानरों का उत्साहहीन होने का वर्णन है। तीसरे आश्वास में सुग्रीव ने वानरों को प्रोत्साहित किया है। चौथे में विभीषण राम की शरण में आया है। पाँचवें में राम के रोष का एवं समुद्र पर बाण चलाने का वर्णन है। छठें में समुद्र शरीर धारणकर राम की शरण में आया है और उसने सेतु-निर्माण करने की सम्मति दी है। सातवें में सेतुबंध का और आठवें में राम के सुवेल पर्वत पर पहुँचने का वर्णन है।

सारा नवां आश्वास सुवेल पर्वत के वर्णन से भरा है। दसवें आश्वास में सूर्योदय, सूर्यास्त, रात्रि, चन्द्रिका एव राक्षस-राक्षसियों के संभोग का वर्णन है। ग्यारहवें में रावण का सीता के प्रति प्रेम, उसकी विरह दशाओं, तथा सीता को अपने धर्म से डिगाने की चेष्टा इत्यादि का वर्णन है। बारहवें में राम के जागरण और युद्धार्थ प्रयाण का वर्णन है। तेरहवें में राम और रावण की सेनाओं की मुठभेड़ हुई है। चौदहवें में राम और मेघनाद का संवाद, राम का नागपाश में बाँधा जाना, गरुड़ का आगमन, नागपाश से राम की मुक्ति तथा प्रहस्त के वध का वर्णन है। पन्द्रहवें आश्वास में रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद इत्यादि के वध, विभीषण का विलाप तथा राम के अयोध्या पहुँचने का वर्णन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanaşi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



इस काव्य में महाकाव्य के सभी लक्षण मिलते हैं। कथा परिचित है; किन्तु वर्णन शैली बहुत कुछ नवीन एवं मनोरंजक है। आचार्य दण्डी ने इस काव्य को सूक्तिरत्नों का सागर कहा है और इसी के कारण महाराष्ट्री प्राकृत को सर्वश्रेष्ठ प्राकृत कहा है। आचार्य दण्डी का यह कथन सर्वथा समुचित और सुसंगत है।

**गौड़वध ( गौड़वहो )**—यह एक प्राकृत भाषा का ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसके कवि वाक्पति राज हैं। यह समग्र ग्रन्थ आर्यावृत्त में लिखा गया है। कन्नौज के राजा यशोवर्म्मा ने गौड़ या पश्चिमी बंगाल के किसी राजा को परास्त कर बध कर दिया था। इसका आदर्श ग्रन्थ रावण वध या सेतुवन्ध ही प्रतीत होता है। इसमें बारह सौ नव पद्य हैं। यह ग्रंथ सर्ग,अध्याय या आश्वासों में विभक्त नहीं है। आदि से अंत तक लगातार पद्यों की लड़ी विना विभाजन के चली गयी है। इसमें इकसठ पद्य देवताओं की स्तुति में कहे गये हैं। यह ग्रन्थ भी विष्णु की स्तुति से प्रारभ होता है। ग्रन्थ के प्रारंभिक इकसठ पद्यों में भिन्न-भिन्न देवताओं की स्तुति करने के पश्चात् सैंतीस पद्यों में कवि ने अपने पूर्ववर्त्ती कवियों की चर्चा की है। उक्त ९८ पद्यों के बाद काव्य की वास्तविक कथा प्रारंभ होता है। निन्यानवे से लेकर एक सौ-चौरानबे पद्यों तक कवि ने कन्नौज के राजा श्री यशोवर्म्मा के पराक्रम, सौंदर्य और साहस का वर्णन किया है। यशोवर्मा को उसने बालहरि का अवतार बताया है, और पन्द्रह पद्यों में उसका विशद वर्णन किया है। यह वर्णन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और मर्मस्पर्शी है। आगे चलकर कवि ने रघु-दिग्विजय के समान यशोवर्म्मा के दिग्विजय का वर्णन किया है। यह वर्णन बड़ा ही मनोहर है और कवि के ऐतिहासिक एवं भौगोलिक ज्ञान की सूचना देता है। इसके पश्चात् कवि ने कुछ अपना व्यक्तिगत परिचय दिया है। उसने अपने को यशोवर्म्मा का प्रधान कवि, कमलायुध का शिष्य तथा भवभूति का प्रशंसक बताया है। उसने भास, ज्वलनमित्र, कुन्तिदेव, कालिदास, सुबंधु, और हरिचन्द्र का उल्लेख किया है। जिस समय कवि ने यशोवर्म्मा का यशः वर्णन प्रारंभ किया उस समय समग्र संसार शांत हो गया। चारो दिशायें प्रकाश से परिपूर्ण हो गयीं। उषा एक युवती के रूप में प्रकट होती दिखाई पड़ीं। अप्सरायें अपने प्रेमियों के आलिंगन का लोभ छोड़कर इस काव्य को सुनने के लिए दौड़ पड़ीं। देवों ने कवि पर नन्दनवन के फूल बरसाये। बादलों से जल के फुहारे छूट पड़े। आश्रमवासी तपस्वियों ने भी कवि के संगीत को सुनने की उत्सुकता प्रकट की। पक्षी भी अपने घोसलों से आकर कवि का संगीत सुनने लगे। चारों ओर से जनता कवि के पास उमड़ आयी। उसके दरवाजे पर देवताओं के पुष्पक विमानों की भीड़ लग गयी। कवि ने जिस समय गाना प्रारंभ किया, सभी श्रोता अवाक् से रह गये। गौड़वध ( गौड़वहो ) के इन बारह सौ नव पद्यों में इतनी ही कथा है। यशोवर्म्मा के चरित का वर्णन इसमें नहीं प्राप्त होता। क्या यह सारा ग्रंथ एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



प्रस्ताव मात्र है? इसका उत्तर न तो कवि देता है और न उसका टीकाकार। विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि या तो इसके आगे का भाग किसी कारण से वह नहीं लिख सका अथवा लिखा तो वह आज हमें प्राप्त नहीं है।

इस ग्रंथ में वह कोमलता और मधुरता है जो सर्वथा स्वाभाविक है। इसमें कृत्रिमता 'रूढ़ि' परिचित वाग्धाराओं का प्रयोग तथा परिचित भावों का उपयोग नहीं पाया जाता। उसने ऐसी वस्तुओं का अपने काव्य में वर्णन नहीं किया है जिसे उसने देखा नहीं है। यदि कहीं ऐसा वर्णन आया भी है तो पौराणिक कथाओं में। कवि में कल्पना की प्रचुरता है। उसने वृत्रवध का चित्र सजीव-सा कर दिया है। यही हालत जन्मेजय के नागयज्ञ की है। रसों का समावेश इसने बड़े ही सुंदर ढंग से किया है। उसे ऐतिहासिक घटनाएँ पूरी-पूरी मालूम हैं। उसने ग्राम्य दृश्यों का बड़े ही सुंदर ढंग से चित्रण किया है। उसकी शैली बहुत ही उच्चकोटि की है। विद्वान् होने पर भी वह अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन नहीं करना चाहता। उसने श्लेष का प्रयोग बहुत ही कम किया है। अलंकारों में उसने उपमा और उत्प्रेक्षा को बहुत अधिक पसन्द किया है। वाक्पति राज ने अपने एक और महाकाव्य का नामोल्लेख किया है। उसने अपना काव्य मधुमथ विजय बतलाया है।

**कर्पूरमंजरी**—प्राकृत का एकमात्र दृश्य काव्य जो सट्टक कहलाता है, राजशेखर कवि का लिखा हुआ है। यह कवि ६०० ई० के लगभग रहा होगा। यह महीपाल नामक भारतीय सम्राट् का समकालीन था। इस महीपाल का शिलालेख वि० सं० ६७४ का मिला है। यह एक यायावर कुल का ब्राह्मण था; किन्तु इसकी स्त्री अवंति सुंदरी चौहान-क्षत्रिय वंश की थी। वह स्वयं काव्य रसिक थी और कर्पूर मंजरी उसी की प्रेरणा से लिखी गयी थी। इसने संस्कृत में भी बालरामायण, बालमहाभारत इत्यादि नाटक लिखे थे। यह दक्षिण देश से अधिक परिचित मालूम होता है। इसलिये यह दक्षिणात्य ब्राह्मण रहा होगा। यह महेन्द्रपाल और महीपाल नामक कन्नौज के सम्राटों का राजपण्डित था। इसकी कर्पूर मंजरी पूर्णतः प्राकृत भाषा में ही लिखी गयी है। इसमें चार अंक हैं। प्रारभ में प्रस्तावनाके पश्चात् वसंत का वर्णन है। इस समय चंडपाल नामक राजा और उसकी रानी आते हैं और उसके वंदीजन वसंत का वर्णन करते हैं। इसी समय भैरवानंद नामक योगी का आगमन होता है और वह राजा से उसके समक्ष कोई भी वस्तु मँगा देने की प्रतिज्ञा करता है। राजा उसे अपने सामने एक सुंदर कन्या लाने की आज्ञा देता है। भैरवानंद कर्पूर मंजरी को राजा के सामने लाता है। रानी उसे देखकर पहचान लेती है कि वह उसकी मौसेरी बहन है। राजा उसे देख प्रेम में फँस जाता है। रानी को इस बात का संदेह हो जाता है और वह उसे छिपाकर रखती है। रानी की दासियों को मिलाकर राजा छिपकर कर्पूर मंजरी का हिंडोले पर झूलना देखता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



है। इसी समय अशोक वृक्ष को दोहद देने के लिए कर्पूर मंजरी आती है और राजा छिपे-छिपे यह सारा दृश्य देखता है। रानी जहाँ कर्पूर मंजरी को छिपाकर रखती है वहाँ से राजा के बगीचे तक जमीन के भीतर से मार्ग बना हुआ है। उसी बगीचे में राजा और कर्पूर मंजरी मिलते हैं। रानी को ये सभी बातें मालूम हो जाती हैं। भैरवानंद अपने योग सिद्धि के प्रभाव से रानी को भ्रम में डालकर कपूर मंजरी से राजा की शादी करा देता है और कर्पूर मंजरी के बदले उसका नाम घनसार मंजरी रखता है। अंत में रानी सब कुछ समझ जाती है और अपने भाग्य पर संतोष कर लेती है।

सट्टक दृश्यकाव्य का एक भेद है। वह एक प्रकार की नाटिका ही है; परंतु उसमें प्रवेशक और विष्कंभक नहीं होते। इस सट्टक में कथा वस्तु में कोई विचित्रता या सौन्दर्य नहीं है। न तो यह कथावस्तु कोई विशेष शिक्षाप्रद ही है। इस काव्य की विशेषता इसके पद्यों के सौन्दर्य में है। सबसे सुंदर हुआ है हिंडोले का वर्णन। समग्र ग्रंथ में एक-से-एक सुंदर श्लोक हैं, जिनमें ऋतुओं का वर्णन और प्रेम की व्याख्या विशेष महत्त्वपूर्ण है। वट सावित्री महोत्सव के समय चर्चरी नृत्य बड़े ही सुंदर ढंग से वर्णित हुआ है। कवि की प्रतिभा ने इस नृत्य का प्रत्यक्ष चित्र अंकित कर दिया है। भाषा का सौन्दर्य और अलंकारों की स्वाभाविक योजना देखते ही बनती है। आज से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व की रीति-रिवाजों का चित्रण कर राजशेखर ने एक प्रशंसनीय कार्य किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# पौराणिक साहित्य

पुराणों की कथावस्तु और समय के अनुसार भारतीय साहित्य में उनका स्थान निश्चित करना कठिन है। यथार्थ में वे धार्मिक-साहित्य के अन्दर हैं और हिन्दुत्व के आधार हैं। पुराणों की सबसे बड़ी महत्ता इस बात में है कि उन्होंने असंख्य देवों से भारतीय जनता का चित्त हटाकर त्रिदेवों में लगाया है। त्रिदेवों में भी विष्णु और शिव को ही उन्होंने प्रधानता दी है, और अन्त में उन दोनों को भी एक ही ब्रह्म का भिन्न-भिन्न रूप मान लिया है। इस प्रकार भिन्नता में एकत्व की स्थापना पुराणों की विशेषता है। पुराण धार्मिक साहित्य के अंदर होते हुए भी केवल हिंदू संस्कृति के ही नहीं, समग्र भारतीय संस्कृति के समुच्चय हैं। उन्होंने हिन्दुओं के धार्मिक संस्कारों के भीतर अनार्यों के धार्मिक संस्कारों को भी समाविष्ट कर समग्र भारत में बहुत कुछ सांस्कृतिक सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है। पुराण अत्यन्त प्राचीन काल से ही शुरू हो जाते हैं। ब्राह्मणों, उपनिषदों और बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में भी इतिहास और पुराण का उल्लेख हुआ है। पुराण शब्द का अर्थ है—पुराणम् आख्यानम् अर्थात् पुरानी कथा। गौतम धर्म सूत्र और आपस्तंबीय धर्मसूत्र जैसे प्राचीन धर्मग्रंथों में भी पुराणों के उल्लेख मिलते हैं। ये धर्मसूत्र ई० सन् से ५०० वर्ष पूर्व के होंगे। अतः पुराणों का मौलिक रूप संभवतः इसी काल में रचा गया था। संभवतः हमारे वर्त्तमान पुराण अपने उन प्राचीन मौलिक रूपों के आधार पर बने हैं जिनमें सृष्टि और प्रलय, देवों और राक्षसों के कर्म तथा प्राचीन राजवंशों के इतिहास भरे हुए थे। महाभारत और पुराणों के सम्बन्ध को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणों के मौलिक रूप महाभारत से भी प्राचीन हैं।

महाभारत भी अपने को पुराण ही कहता है और पुराणों की ही तरह प्रारम्भ होता है। पुराणों में मुख्यतया पाँच बातों का वर्णन पाया जाता है। इन्हें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित कहते हैं। सर्ग का अर्थ है सृष्टि। प्रतिसर्ग का अर्थ है प्रलय के बाद की सृष्टि। वंश से देवों और ऋषियों की वंशावली का तात्पर्य है। मन्वन्तर का अर्थ है चौदह मनुओं का शासनकाल और उसका वर्णन। वंशानुचरित के भीतर राजवंशों का, विशेषतः सूर्य एवं चन्द्रवंशों का वर्णन है। आधुनिक पुराणों में से किन्हीं-किन्हीं में तो ये सारी बातें पायी जाती हैं; किन्तु किन्हीं में ये बातें बहुत थोड़ी पायी जाती हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


तथा किन्हीं में इन बातों के अतिरिक्त भौगोलिक वर्णन, व्रत, उपवास तथा यात्रा का वर्णन इत्यादि बहुत-सी बातें मिलती हैं। पुराणों में से कुछ तो शिव से सम्बन्ध रखते हैं, कुछ विष्णु से और कुछ ब्रह्मा से तथा कुछ शक्ति से। कुछ पुराणों में प्राचीन राजाओं के साथ-साथ भविष्यत् वाणी के रूप में कलि के राजाओं का भी वर्णन मिलता है। पुराणों में वर्णित वंशों में शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, आंध्र, और गुप्तवंश का वर्णन विशेष रूप से आया है। यदि हम सावधानता के साथ विवेकपूर्वक इन कहानियों में से ऐतिहासिक तत्त्व निकाल लें तो भारतीय इतिहास के बहुत से रहस्य सुलझ जायँ। मौर्यवंश के सम्बन्ध में विष्णु पुराण, आन्ध्रवंश के सम्बन्ध में मत्स्य पुराण, तथा गुप्तवंश के संबंध में वायु पुराण विशेष विश्वसनीय हैं। राजवंशों के वर्णन के पश्चात् ये पुराण शूद्र एवं म्लेच्छों के वंशों के वर्णन करते हैं। ऐसे वंशों में आभीर, गर्दभ, शक, यवन, तुषार, और हूण इत्यादि विशेष प्रसिद्ध हैं। पुराणों में सातवीं सदी के बाद के राजवंशों का वर्णन नहीं मिलता। इससे अनुमान होता है कि सातवीं सदी तक प्रायः सभी पुराण बन चुके थे। बौद्धों एवं जैनों ने भी अपने ढंग के पुराणों की रचना की थी। इससे यह प्रतीत होता है कि पौराणिक साहित्य से वे भी बहुत प्रभावित थे।

कुछ लोग यह समझते हैं कि पुराणों की रचना बहुत पीछे हुई है; किन्तु यह बात बहुत गलत है। बाण, जिसका समय ६२५ ई० के करीब है—पुराणों को खूब अच्छी तरह से जानता था और उसने अपने हर्षचरित में लिखा है कि उसने अपने गाँव में वायुपुराण श्रवण किया था। सुविख्यात मीमांसक कुमारिल भट्ट ने पुराणों को धर्म का स्रोत माना था। उसका समय आठवीं सदी का मध्य है। शंकराचार्य और रामानुजाचार्य ने अपने अद्वैत और विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों के प्रतिपादन में पुराणों से उद्धरण दिये थे। शंकर का समय नवीं सदी और रामानुज का बारहवीं सदी है। यह बात बड़े ही महत्त्व की है कि अल्बेरुनी नामक अरबी यात्री जो सन् १०३० ई० के आस-पास भारत में आया था, पुराणों से बहुत कुछ परिचित था और उसने अठारह पुराणों की नामावली दी है।

कुछ लोगों का यह विचार है कि विष्णु और शिव की पूजा बहुत आधुनिक है; किन्तु आधुनिक खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि विष्णु और शिव की पूजा ईसा से भी पूर्व अथवा बुद्ध से भी पूर्व प्रचलित थी। हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार पुराण अत्यन्त प्राचीन हैं और वे उसी व्यास की रचनाएँ हैं जिन्होंने वेदों को संहिताओं में विभाजित किया था। इतिहास और पुराण वेदों के पूरक हैं और प्रधानतया शूद्रों तथा स्त्रियों के लिए रचे गये हैं। ऐतिहासिकों के लिए पुराण बहुमूल्य ग्रंथ हैं। धार्मिक इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से उनका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


महत्त्व और भी अधिक है। वे हिन्दुत्व के प्रत्येक पहलू का हमें ज्ञान करा देते हैं। हिन्दूधर्म के उपाख्यान, मूर्तिपूजा, आस्तिकता, सर्वेश्वरवाद, भक्ति, दर्शन, मिथ्या-विश्वास, उत्सव एवं आचार-व्यवहार इत्यादि का ज्ञान इनसे बहुत हो जाता है। साहित्यिक दृष्टि से भी इनमें कई बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए शिवपुराण, विष्णुपुराण और भागवत। पुराणों में सब मिलकर चार लाख श्लोक हैं। ये अठारह हैं। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव या वायु, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, बराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्मांड।

यह एक बड़ी विचित्र बात है कि पुराणों की यह नामावली प्रत्येक पुराण में पायी जाती है। पद्मपुराण में अठारहों पुराणों को विष्णु का शरीर कहा गया है और इस प्रकार उनकी पवित्रता स्थापित की गयी है; किन्तु उसी पुराण के उत्तराध्याय में उनको गुणों के अनुसार विभक्त किया गया है। इस वर्गीकरण के अनुसार विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म और बराह इन छः पुराणों को सात्त्विक या वैष्णव कहा गया है। ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म को ब्रह्मा सम्बन्धी या राजस कहा गया है। मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कंद और अग्नि इन छः पुराणों को तामस या शैव कहा गया है। सभी पुराणों में पुराणों के पांच लक्षण नहीं मिलते। इससे स्पष्ट है कि पुराणों का जो वर्त्तमान रूप है वह उनका यथार्थ रूप नहीं है। इन अठारह पुराणों के अतिरिक्त उपपुराण भी अठारह ही बताये जाते हैं। बहुत-से माहात्म्य, स्तोत्र, कल्प, आख्यान, उपाख्यान इन पुराणों या उपपुराणों के अंग कहे जाते हैं।

प्रथम पुराण ब्रह्म पुराण है। इसे नैमिषारण्य में लोमहर्षण सूत ने ऋषियों से कहा था। इसका उपपुराण सूर्यपुराण कहा जाता है। पद्मपुराण एक वृहद् ग्रन्थ है जिसके छः खण्ड हैं—आदि, भूमि, ब्रह्म, पाताल, सृष्टि और उत्तर। पुराणों में तीसरा विष्णुपुराण है। यह वैष्णवों का मुख्य पुराण है। रामानुजाचार्य ने अपने वेदान्तसूत्र के भाष्य में इससे यत्र-तत्र प्रमाण दिये हैं। यह एक प्राचीन पुराण है और इसमें पुराणों के सभी लक्षण मिलते हैं। चौथा पुराण वायु या शिव पुराण है। इसका महाभारत में भी उल्लेख मिलता है और हरिवंश में भी। इसी पुराण को बाणभट्ट ने अपने गाँव में सुना था। इसमें गुप्तवंश का वर्णन है। अतएव यह चौथी-पाँचवीं सदी का होगा। इसमें भी पुराणों के पाँचो लक्षण मिलते हैं। पाँचवाँ पुराण भागवत है। भारत में यह सभी पुराणों से अधिक प्रसिद्ध है। यह वैष्णवों का एकमात्र ग्रन्थ है और वल्लभाचार्य ने इसके श्लोकों से अपने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में अपना सिद्धान्त पुष्ट किया है। इस पर हिन्दी और संस्कृत में बहुत-सी टीकाएँ और भाष्य लिखे गये हैं। सूर, नन्द, इत्यादि हिन्दी के कवियों पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। इसमें भी पुराण के सभी लक्षण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मिलते हैं। कोई-कोई इसे वोपदेव की रचना वतलाते हैं, जिनका समय तेरहवीं शताब्दी था ; किन्तु यह वोपदेव की रचना नहीं हो सकती ; क्योंकि उस समय तक तो यह एक धर्मग्रंथ के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था। पुराणों में सबसे अधिक साहित्यिक यही है।

बृहन्नारदीय पुराण छठा है। यह नारदीय उपपुराण से भिन्न है। यह विलकुल साम्प्रदायिक ग्रंथ है जिसमें विष्णु भक्ति की प्रशंसा की गयी है, और पुराणों के सभी लक्षण इसमें नहीं मिलते। मार्कण्डेय पुराण सातवाँ है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण, आनंदप्रद और प्राचीन है। आठवाँ पुराण अग्निपुराण है। अग्नि ने इसे वशिष्ठ से कहा था। इसमें अवतारों का वर्णन है। इसमें तरह-तरह की चीजें मिलती हैं। जैसे, भूगोल, गणित-ज्योतिष, फलित-ज्योतिष, विवाह और मृत्यु के संस्कार, राजनीति और युद्ध, औषधि, छंद-शास्त्र, काव्य, व्याकरण और कोष भी।

नवाँ पुराण भविष्य पुराण कहलाता है। यह बहुत प्राचीन पुराण नहीं है। इसमें आचार-व्यवहार और वर्णाश्रम-धर्म की चर्चा है। दसवां पुराण ब्रह्मवैवर्त्त पुराण है। इसमें कई खण्ड हैं। जिनमें पौराणिक बातों की चर्चा है। ग्यारहवाँ पुराण लिंग पुराण है। इसमें शिव और पार्वती की कथा विस्तार से वर्णित है।

बारहवाँ पुराण वराह पुराण है। यह बहुत छोटा है और पौराणिक कथा-कहानियों से भरा हुआ है। तेरहवाँ पुराण स्कंद-पुराण है जो बहुत बड़ा है। इसमें शिव के पुत्र स्कन्द तथा शंकर का वर्णन हैं। काशी खण्ड इसका एक अंग है जिसमें काशी के भिन्न-भिन्न अंगों का वर्णन है। वामन पुराण चौदहवाँ है जो बहुत छोटा है जिसमें अवतारों की कथाओं और लिंगपूजा का वर्णन है। इसमें शक्तिपूजा का भी वर्णन है और दुर्गासप्तशती के नाम से इसका एक भाग विख्यात हैं जिसमें दुर्गा के आठ हजार नाम हैं। सोलहवाँ पुराण मत्स्यपुराण हैं। पौराणिक साहित्य में यह भी प्राचीन है। इसमें पुराण के पाँचो लक्षण मिलते हैं। यह उस महाप्रलय के वर्णन से प्रारम्भ होता है जिसमें विष्णु ने मत्स्य का अवतार धारण कर मनु को जल प्लावन से बचाया था।

सत्रहवाँ पुराण गरुड़ पुराण है। यह वैष्णव पुराण है। इसमें पुराण के पाँचो लक्षण पाये जाते हैं। इसका प्रेत कल्प भाग श्राद्ध के समय श्रोताओं को सुनाया जाता है।

अठारहवाँ पुराण ब्रह्माण्ड पुराण है। अध्यात्म रामायण, जिसमें अद्वैत वेदान्त और रामभक्ति के उपदेश हैं और जिसके आधार पर तुलसी ने रामचरित-मानस की रचना की है, इसी ब्रह्माण्डपुराण का एक अंश माना जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

# अलंकृत काव्य

अलंकृत काव्यों का प्रारंभ कब होता है और इस तरह का अलंकृत काव्य पहले किसने लिखा है यह विषय विवादास्पद है। कुछ लोग अलंकृत महाकाव्यों का प्रारंभ काल ईसा की पहली सदी मानते हैं और अश्वघोष को प्रथम महाकवि मानते हैं। किन्तु कुछ लोगों के विचार में महाकवि कालिदास ही अलंकृत महाकाव्यों के प्रथम प्रणेता हैं और उनका समय ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व है। मुझे भी यही विचार सत्य प्रतीत होता है। अतएव मैं कालिदास के महाकाव्यों से ही इस विषय का प्रारंभ करता हूँ। किंतु कालिदास के काव्यों के विवेचन के पूर्व, उनके समय, उनके काव्यों के आधार एवं उनके समय की भौगोलिक-स्थिति का विवेचन आवश्यक है। अतएव पहले इन्हीं बातों का विवेचन कर लेना उचित है।

## विक्रमादित्य और कालिदास

तत्कृतं यन्न केनापि तद्दत्तं यन्न केनचित्।
तत्साधितं असाध्यं यद् विक्रमार्केण भूभुजा ॥*—( कथा-सरित्सागर )

स पिता पितृहीनानामबन्धूनां स बान्धवः।
अनाथानाञ्च नाथः सः प्रजानां कः सनाभवत् ॥†—(सुभाषित रत्नभांडागार)

भारतीय श्रुति-परम्परा या अनुश्रुतियों में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचंद्र के बाद न्यायी शासकों और महान् परोपकारी आदर्श पुरुषों के उदाहरणों में उज्जयिनीपुरी के अधीश्वर सम्राट् विक्रमादित्य ही का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। सम्राट् विक्रमादित्य ने नृशंस एवं वर्बर शक जाति से संकटाक्रांत भारत-वसुंधरा को मुक्त कर आज दो सहस्र वर्षों से हमारे हृदयों पर अपना अटल आधिपत्य जमा लिया है। महाकवि कालिदास ने अपने युग की जगता के हृदयाधीश्वर और अपने आश्रयदाता महाराज विक्रमादित्य का यश विक्रमोर्वशीय नाटक में महाराज पुरुरवा

---

* राजा विक्रमादित्य ने वह किया, जो किसी ने नहीं किया; वह दिया, जो किसी ने नहीं दिया और उस असाध्य कार्य को पूर्ण किया, जो किसी से साध्य नहीं था।

† वह पितृहीनों का पिता, बंधुहीनों का बांधव और अनाथों का नाथ था; प्रजा के लिए वह क्या नहीं था ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


की ओट में अप्रत्यक्ष वर्णन किया है। इस तरह जहाँ उन्होंने उनके संबंध में हमारे कौतूहल को जागरूक रखा है वहाँ अपने नाम को भी चिरकाल के लिए इनके साथ संयुक्त कर रखा है।

केवलशिला लेखों या ताम्रपत्रों के अंधभक्तों ने हमारे युग सहस्रों के हृदय-सम्राट् युग्म का अस्तित्व ही अस्वीकार कर दिया है। उनके सम्बन्ध में तो हम गोस्वामीजी के शब्दों में एक हल्का परिवर्तन कर यही कहेंगे—"लोचन अछत न सूझ सुमेरु ?" भला, यदि विक्रमादित्य का अस्तित्व ही न था, तो उनके नाम का संवत् कैसा ? यदि कुछ शिलालेखों में इस संवत् का नाम विक्रम संवत् न होकर मालव संवत् ही है, तो इससे क्या ? जब हमें अनुश्रुति यह विश्वास दिलाती है संवत्-प्रवर्त्तक विक्रमादित्य मालवेश्वर थे, तो विक्रम संवत् और मालव सम्वत् पृथक-पृथक् होने का भ्रम कैसा ? इसी प्रकार के भ्रम में पड़कर कुछ ऐतिहासिकों ने अपने अनुयायियों को मार्ग-प्रदर्शन करने का यत्न कर 'अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः' की कहावत चरितार्थ की है।

जनश्रुति हमें यह दृढ़तापूर्वक बतलाती है कि विक्रमादित्य उज्जयिनी के महाराज गंधर्वसेन ( जैनों के अनुसार गर्दभिल्ल ) महेंद्रादित्य के पुत्र थे। उन्होंने किसी शक राजा को परास्त कर अपना सम्वत् चलाया था। उनकी पत्नी का नाम भानुमती* था। उनकी सभा नवरत्नों से सुशोभित थी, जिनमें महाकवि कालिदास सर्वश्रेष्ठ थे। वे अद्वितीय पराक्रमी, परम साहसी, निर्भीक, प्रजा-वत्सल, गुणग्राही, साहित्य-रसिक और अनुपम दानी थे। वे साहित्य, संगीत एवं अन्यान्य कलाओं में प्रवीण थे तथा उनका चरित्र परम पवित्र था। उनकी महारानी अद्वितीय पतिव्रता, गुणवती तथा सुन्दरी थी। उनके शौर्य एवं सच्चरित्रता के सम्बन्ध में एक कवि लिखते हैं :—

सर्वदा सर्वदोसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधैः।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः॥

अर्थात्—हे महाराज, आप सर्वदा सब कुछ दान देनेवाले हैं—आपकी ऐसी प्रशंसा पंडित लोग व्यर्थ ही करते हैं ! आपने न तो शत्रुओं को कभी पीठ दी और न पर-स्त्रियों को छाती।

उनके दान के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उन्होंने अपने कोषाध्यक्ष को यह आज्ञा दे रक्खी थी कि यदि कोई गुणी पुरुष मेरे समक्ष आ जाय तो उसे एक

---

* But Mr. Banerji points out that tradition says that Bhanumati was the name of the queen of the first Vikramaditya, the founder of the Malwa era and the king of Avanti".—( Kalidas by K. S. Ramswami Shastri, Page 63 )

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हजार, वार्तालाप करे तो दस हजार, यदि मैं उसकी बातों पर मुस्करा दूँ तो एक लाख, और यदि उसपर प्रसन्न हो जाऊँ तो एक करोड़ मुहरें दी जायँ।*

खेद है कि उक्त महाराज के समय का हमें कोई शिलालेख नहीं मिलता और न उनके सभा-पंडित महाकवि कालिदास ने अपने किसी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख किया है। सबसे कठिन बात तो यह है कि विक्रम एवं कालिदास के अनेक होने के कारण आद्य विक्रम और आद्य कालिदास के समय का निर्णय करना परम दुष्कर हो रहा है। आज सैकड़ों वर्षों से स्वदेशी एवं विदेशी विद्वान् इस कार्य में संलग्न हैं; पर 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना' की कहावत ही चरितार्थ हो रही है।

सबसे पहले हमें यही विचार कर लेना है कि कालिदास और विक्रमादित्य से सम्बन्ध स्थापित हो सकता है कि नहीं। यदि कालिदास के ग्रंथों के अन्तः-साक्ष्य के आधार पर हम इन दोनों का समकालीन होना सिद्ध कर सकें, तो कालिदास के समय का निर्णय करके भी हम विक्रम के समय का निर्णय कर सकते हैं। महाकवि कालिदास के छः ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—'रघुवंश', 'कुमारसंभव', 'मेघदूत', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' एवं 'अभिज्ञान शाकुन्तल'।

विद्वानों का विचार है कि नाटकों में 'मालविकाग्निमित्र' और काव्यों में 'कुमारसंभव' कवि के प्रारंभिक ग्रन्थ हैं। अतः, उनमें उसकी प्रतिभा का बीज तो मिलता है, पर वह परिपक्वता नहीं दीख पड़ती, जो पीछे के काव्यों और नाटकों में पायी जाती है। मालूम होता है कि इन दो काव्यों की रचना कवि ने विक्रम से सम्बन्ध होने के पूर्व ही की थी। इन दोनों में विक्रम का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता। इन रचनाओं के प्रसिद्ध होने पर ही उसका प्रवेश विक्रमादित्य के दरबार में हुआ होगा और इसी के अनन्तर शकों पर विक्रम को विजय हुई होगी तथा इसी घटना को चिरस्मरणीय बनाने के लिए विक्रमोर्वशीय नाटक लिखा गया होगा। 'विक्रमोर्वशीय' शब्द के अर्थ पर टिप्पणी लिखते हुए श्री एम० आर० काले लिखते हैं :—

'विक्रमोर्वशीय का अर्थ है वह नाटक जिसमें विक्रम ( पराक्रम ) के द्वारा उर्वशी के जीते जाने का वर्णन हो। चाहे जो भी सही अर्थ हो; किंतु यह प्रतीत होता है कि कवि ने ग्रन्थ का यह श्लेषात्मक नाम किसी उद्देश्य के साथ चुना है।

---

*"आप्ते दर्शनमागते दशशती संभाषिते चायुतं,
यद्वाचा च हसेहमाशु भवता लक्षोस्यविश्राण्यताम्।
निष्काणां परितोषके मम सदा कोटिर्मदाज्ञा परा,
कोशाधीश सदेति विक्रमनृपश्चक्रे वदान्यस्थितिम्।"
—मेरुतुंगकृत 'प्रबंध-चिंतामणि।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहाँ पर राजा विक्रमादित्य का ही अप्रत्यक्ष उल्लेख है जो श्रुति-परम्परा के अनुसार कालिदास के आश्रयदाता थे।'

वे ही सज्जन एक दूसरे स्थान पर 'अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं :—"अत्र सर्वत्र पराक्रमशौर्यादीनां स्थाने विक्रमशब्दस्यैव योजनाल्लब्ध वर्णभाग् विक्रमादित्यः सापह्नवं स्तुतः स्यादिति गम्यते। कालिदासश्च विक्रमादित्येनानुगृहीतस्तस्य संसदमलंचकारेति सुप्रसिद्धो जनवादः।" अर्थात् इस नाटक में सब कहीं पराक्रम, शौर्य इत्यादि के स्थान में विक्रम शब्द का ही प्रयोग होने से लगता है कि कवि छिपे रूप से विक्रमादित्य की ही प्रशंसा कर रहा है। कालिदास विक्रमादित्य की सभा को अलंकृत करते थे और उनके कृपापात्र थे, यह जनवाद अत्यंत प्रसिद्ध है।—( विक्रमोर्वशीय पृष्ठ २२ )

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विक्रमोर्वशीय का पाठक इस ग्रन्थ में किसी विक्रमादित्य की ही अप्रत्यक्ष स्तुति प्रायः सर्वत्र पाता है।

'रघुवंश' के रघुदिग्विजय में उज्जयिनी-नाथ की पराजय का उल्लेख नहीं*; पर इन्दुमती के स्वयंवर में उनका कितना सुन्दर वर्णन है। अवंतिनाथ के लिए जो विशेषण लाये जाते हैं, उनपर विचार कीजिये:—"द्विषद्भिःदुःप्रहसहं, उग्रतेजाः अभिद्योतितवंधुपद्मः, प्रताप संशोषित शत्रुपंकः भानुमान्।" इनमें प्रायः सभी का अर्थ सूर्य है और सबसे प्रचंड पराक्रम की सूचना मिलती है। विशेष कर सर्ग ६ श्लोक ३६ में 'प्रताप' और 'भानुमती' शब्दों का उल्लेख होने से तथा इन्दुमती को 'कुमुदिनी' मानकर बिना उस राजा की अप्रतिष्ठा किये भी उससे विमुख होना दिखलाने से यह निस्संदेह ध्वनित होता है कि कालिदास 'विक्रमादित्य' के आश्रय में थे। मेघदूत में तो महाकवि कालिदास ने उज्जयिनी के प्रति अपनी असीम श्रद्धा प्रदर्शित की है। यद्यपि रामगिरि से अलका जाने में उज्जयिनी जाने से मेघ का पथ वक्र हो जाता,† पर वहाँ के सौधों का सौंदर्य कालिदास को दिखाना परम अभीष्ट था। उन्होंने ३० वें से ४० वें श्लोक तक उस नगरी की समृद्धि का अत्यन्त कौशल के साथ चित्र खींचा है। इससे स्पष्ट है कि वे उस नगरी से केवल परिचित ही नहीं थे वरन् अपने श्रद्धेय आश्रयदाता की राजधानी होने के कारण उनकी

---

*कृपया 'कालिदास' पृ० ६३ श्री के० एस० रामा-स्वामीकृत देखिये।

†—"वक्रः पंथा यदपि भवतःप्रस्थितस्योत्तराशां,
सौधोत्संग प्रणयविमुखो मास्मभूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैं स्तत्र पौरांगनानां,
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि ॥२७॥ मेघदूतम्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2





उसपर असीम कृपा थी। अभिज्ञान शाकुंतल में तो ऐसी कोई बात स्पष्ट नहीं मिलती जिसे हम विक्रमादित्य से सम्बन्ध रखनेवाली कह सकें। हाँ, अप्रत्यक्ष रूप में दुष्यंत का जो चित्र खींचा गया है वह न्याय, प्रजावत्सलता, युद्धवीरता एवं कला-नैपुण्य में जनश्रुति के द्वारा प्रसिद्ध विक्रम से बहुत कुछ सादृश्य रखता है। इसके अतिरिक्त श्री एस० सी० दे के 'कालिदास और विक्रम' नामक अंगरेजी ग्रन्थ में प्रथम अध्याय के आरम्भ में ही हमें अभिज्ञान शाकुन्तल के सूत्रधार की ये बातें मिलती हैं जो वह अपनी स्त्री से कहता है :—

"आर्य्ये! रसभावविशेष दीक्षागुरोर्विक्रमादित्यस्य नरपतेरभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्। अद्य खलु कालिदासग्रथितवस्तुना अभिज्ञानशाकुन्तल नामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः।"

उपर्युक्त ( कथन ) से हमें पता चलता है कि नाटककार कालिदास विक्रमादित्य के राजत्वकाल में वर्तमान थे।

किंतु हमें ऊपर की प्रस्तावना की रेखांकित पंक्ति अभी तक अभिज्ञान शाकुन्तल के किसी संस्करण में नहीं मिली। यदि दे महाशय के द्वारा उल्लिखित प्रस्तावना सही हो तब तो विक्रम और कालिदास के समकालीन तथा आश्रयदाता और आश्रित होने में सन्देह के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता। पर, वह प्रस्तावना सही हो वा नहीं, जनश्रुति और कालिदास के कतिपय ग्रन्थों, विशेषतः विक्रमोर्वशीय के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उक्त नाटकों और काव्यों के रचयिता कालिदास का किसी उज्जयिनी-नाथ विक्रमादित्य से सम्बन्ध अवश्य था। इन्दुमती स्वयंवर के 'अवन्तिनाथो'* इत्यादि श्लोक का हवाला देकर श्रीयुत धनपति बनर्जी भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कालिदास विक्रम की सभा में बी० सी० द्वितीय शताब्दी के आसपास थे।

—पृ० ६३, कालिदास by K. S. R. Shastri.

कालिदास और विक्रम की समकालीनता और सम्बन्ध का निर्णय कर हमें उनके समय पर विचार करना चाहिए। सबसे पहले कालिदास का नाम ऐहोली के प्रस्तर लेख में सन् ६३४ ई० में स्पष्टतया लिखा गया है। सन् ४७३ ई० में मन्दसोर का जो प्रस्तर-लेख है उससे स्पष्ट है कि उसके रचयिता ने कालिदास के काव्यों से सहायता ली है। इस कारण हम कालिदास को सन् ४६३ के बाद कभी भी नहीं रख सकते। फिर कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में राजा अग्निमित्र का वर्णन किया है, जिसका समय ई० पू० १५० है। अतः हम कालिदास और विक्रम को ईसा से १५० वर्ष पूर्व से लेकर सन् ४७३ ई० के बीच में ही कहीं रख सकते हैं।

* रघुवंश सर्ग ६ श्लोक ३२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



विद्वानों का एक दल कालिदास को गुप्तवंशीय राजाओं, विशेषतः चंन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का समकालीन सिद्ध करने के पक्ष में हैं। इस दल का प्रतिनिधित्व प्रसिद्ध अङ्गरेज विद्वान् डा० कीथ* करते हैं। उनका कहना है कि कालिदास ने 'जामित्र' एवं 'उच्च' शब्दों का प्रयोग किया है। ये शब्द ग्रीक ज्योतिष के हैं और भारतीय ज्योतिषियों के द्वारा पीछे से गृहीत हुए। अतः कालिदास आर्यभट्ट के पीछे के हैं। फिर कालिदास की प्राकृत भास की प्राकृत से विकसित है। अतः भास के पीछे कालिदास अवश्य हुए हैं। भास का समय डा० कीथ ३०० ई० बतलाते हैं; अतः कालिदास को ३५० ई० या ४०० ई० में रखते हैं।

डा० कीथ के तर्कों का उत्तर श्री के० एस० रामस्वामी, बी० ए० ने अपनी 'कालिदास' नामक अङ्गरेजी पुस्तक में बड़े विस्तार के साथ दिया है। वे अश्वघोष का समय कालिदास के पहले नहीं मानते। कालिदास द्वारा प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति वे संस्कृत से ही सिद्ध करते हैं। उनका कहना है कि यदि ये शब्द ग्रीक भाषा से लिये भी गये हों, तो सिकंदर के समय से ही उनका भारतीय ज्योतिषियों में प्रचलित होना क्यों न मानें? कालिदास की प्राकृत अवश्य भास की प्राकृत से विकसित है; पर भास का ठीक समय ३०० ई० नहीं, वरन् ईसा के पहले की पाँचवीं या चौथी शताब्दी है। श्रीयुत् ए० डी० पुसालकर के अनुसार भास का समय उपर्युक्त † ही है। उन्होंने भी कालिदास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी ही निश्चित किया है। श्रीयुत् जोगलेकर के विचार से भी कालिदास प्रथम शताब्दी बी० सी० में ही रखे जा सकते हैं।‡ इस सम्बन्ध में श्री रामस्वामी का कहना है :—

मैंने यहाँ "उन असंख्य तर्कों पर विचार किया है, जो कालिदास के समय के बारे में दिये गये हैं और उनकी व्यर्थता तथा अप्रामाणिकता दिखलायी है। मुझे

---

*The Sanskrit Drama by A. B. Keith, Page 146.

†"It will be shown later in this chapter that Bhasa must be placed before Kautilya and hence before Chandragupta also. Therefore Bharat Vakyas show the poet to have lived earlier than the 4th century B. C. × × We have therefore followed what appeared to us a sound view and have assigned Kautilya to the 4th century B. C. & Kalidasa to the 1st century. B. C. Page 69 "Bhasa, a study."

‡ Vide 'Raghubans' by K. M. Joglekar, M. A. Page XXVII Intro.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



यह प्रतीत होता है कि वे सार्वजनिक और प्रामाणिक अनुश्रुतियाँ—कि वे विक्रमादित्य के दरबार में थे और उनकी (विक्रमादित्य की) महती विजय के उपलक्ष में ईसा से ५६ वर्ष पूर्व संवत् चलाया गया था—विश्वसनीय हैं।"

अभिज्ञान शाकुन्तल के अन्तःसाक्ष्य पर विचार करने से हमें यह स्पष्ट मालूम होता है कि कालिदास ई० सन् से पीछे नहीं रखे जा सकते। छठे अंक में धनमित्र नामक वणिक के संतानहीन मरने का समाचार प्रधान मंत्री महाराज दुष्यन्त को देता है, और वह कहता है कि कानून के मुताबिक वह धन उसकी विधवा का न होकर, राज्य का है; किन्तु राजा वह धन अपने न लेकर उसकी सगर्भापत्नी को लौटा देता है। मनु, आपस्तम्ब, बोधायन और वशिष्ठ पति के मरने पर उसकी विधवा का पति के धन पर कोई स्वत्व नहीं बतलाते; पर गर्भस्थ शिशु का अधिकार उसपर अक्षुण्ण रखा है; किंतु गौतम और बृहस्पति विधवा का अधिकार पति के धन पर उसके गोतियों के साथ बतलाते हैं। याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, व्यास, नारद, शंख एवं लिखित पति के धन की अधिकारिणी उसकी विधवा पत्नी को बतलाते हैं। अतः शकुन्तला नाटक की रचना मनु, आपस्तम्ब, बोधायन और वशिष्ठ के धर्मशास्त्रों की रचना के बाद तथा नारद, गौतम, कात्यायन, बृहस्पति और याज्ञवल्क्य की स्मृतियों की रचना के पूर्व हुई होगी। बृहस्पति का समय ईसा की प्रथम शताब्दी है। अतः कालिदास उसके पहले अर्थात् ई० पू० प्रथम में हुए होंगे। यही बात धीवर के अँगूठी चुराने पर मृत्युदंड मिलने से सिद्ध होती है। बृहस्पति और याज्ञवल्क्य आदि के अनुसार सोना चुराने का दंड मृत्युदंड कदापि न होता। अतः शकुन्तला नाटक बृहस्पति आदि की स्मृतियों से प्राचीन होने के कारण ई० पू० प्रथम सदी का है।

कालिदास और विक्रम समकालीन थे और वे उज्जैन में रहा करते थे। उनका समय ईसासे ५६-५७ वर्ष पूर्व माना जा सकता है।* इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर भी हमें तीन बातों पर विचार करना रह जाता है। ई० पू० ५७ में यदि कोई विक्रम हुए, तो उनका साहित्य में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि नहीं? यदि उनका कहीं उल्लेख है, तो उन्होंने किन शकों को पराजित कर शकारि पद ग्रहण किया? और, अन्त में यदि उन्होंने अपनी विजय का स्मारक कोई संवत् चलाया तो उसका नाम ८०० वर्षों तक मालव संवत् क्यों रहा?

राजा हाल की गाथा सप्तशती में एक पद्य मिलता है:—

संवाहण सुहरस तोसिएण देंतेण तुह करे लक्खं।
चलणेण विक्कमाइच्च चरिअमणुसिक्खिअं तिस्सा॥

* Kalidasa & Vikramaditya by S. C. De Page 4-5.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



( संवाहन सुख से आनन्दित होकर तुम्हारे हाथ में एक लाख रुपये देकर उसने विक्रमादित्य की उदारता का अनुकरण किया है । )

सर आर० जी० भंडारकर ने इसका कर्त्ता राजा हाल या उसके किसी कवि को बतलाया है। श्री हरप्रसाद शास्त्री हाल का समय ई० की पहली सदी से पूर्व मानते हैं । अतः विक्रमादित्य नामक किसी दानी राजा का इस समय के पूर्व होना सिद्ध है। इस सप्तशती* की एक दूसरी गाथा में विक्रमादित्य एवं शालिवाहन की तुलना की गयी है। इसके अतिरिक्त कई और गाथाएँ भी ऐसी मिलती हैं, जिनमें शकुन्तला और मेघदूत का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। अतः विक्रमादित्य का शालिवाहन के पूर्व होना प्रमाणित है।

अब प्रश्न यह है कि उन्होंने किन शकों को परास्त किया ? ग्रीक इतिहासकार हीरोडोटस के अनुसार † पारसी लोग सभी गृहहीन सीथियन चरवाहों को शक कहा करते थे। ई० पू० १६५ के लगभग यूएची जाति के पारसी चरवाहे तुर्की चरवाहों से पराजित होकर उत्तर चीन को छोड़ पश्चिम की ओर बढ़े। आगे बढ़ते हुए उन्होंने वूसुन के पश्चिम के शकों को परास्त कर दिया। इस प्रकार हार खाकर शकों का एक झुण्ड शक-स्थान या सिस्तन में बस गया। उसकी दूसरी शाखा ने पार्थिया और यूनानी बैक्ट्रिया के राज्यों पर १४० बी० सी० से १२० बी० सी० तक आक्रमण किया। फिर ये दोनों शाखाएँ संयुक्त होकर भारत पर चढ़ आयीं।

उनमें से कुछ जातियाँ तो तक्षशिला और कुछ मथुरा में ठहर गयीं। प्रायः १०० वर्षों तक पार्थियन राजाओं के अधीन होकर ये क्षत्रप उपाधि के साथ शासन करती रहीं। इन्हीं का एक और झुण्ड सुराष्ट्र पर चढ़ आया। यह लगभग ४०० वर्षों तक क्षत्रप उपाधि के साथ शासन करता रहा। अन्त में चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने उनका नाश कर डाला। संभव है, जो शक ई० पू० ५८ में मथुरा आ बसे थे, उन्होंने ही दक्षिण बढ़कर उज्जैन पर चढ़ाई की। विक्रमादित्य ने उन्हें पूर्णतः पराजित कर कुछ समय के लिए उधर बढ़ने से रोक दिया। "कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया" पृष्ठ १६७-६८, में जैनोपदेशक कालकाचार्य की कथा दी गयी है। उसका सारांश यह है कि विक्रमादित्य के पिता गन्धर्वसेन से रुष्ट होकर कालकाचार्य ने पंजाब के शकों को उनपर चढ़ाई करने का निमन्त्रण दिया। शकों ने चढ़ाई की और गन्धर्वसेन को परास्त किया। पर विक्रमादित्य ने उन्हें पूर्णतः पराजित कर अपना राज्य

* Kalidasa by K. S. R. Shastri Page 64.

† Kalidasa & Vikrmaditya by S. D. C. Page 5-6.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



लौटा लिया तथा उसकी सीमा दूर तक विस्तृत कर दी। सम्भव है, विक्रमादित्य ने कई युद्धों में सम्मिलित शक-वाहिनी को परास्त कर शकारि की पदवी ली हो। साथ ही अपने नाम से संवत् न चलाकर अपने मालवगणराष्ट्र के नाम से पहले मालव संवत् ही चलाया हो; पर पीछे से लोग विक्रमादित्य में अत्यन्त श्रद्धा रखने के कारण उसे विक्रम संवत् ही कहने लगे हों।

विक्रम संवत् के नाम से सबसे पहला शिलालेख धौलपुर चहमान चण्ड महासेन का है। उसमें स्पष्ट लिखा है—"वसुनवअष्टौ वर्षा गतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य" (८९८) मालव संवत् के नाम से एक सं० ४६१ का शिलालेख भी प्राप्त हुआ है। उससे पहले का शिलालेख या ताम्रपत्र अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। सम्भव है, देवी वसुन्धरा की गोद में ऐसे कई विशाल लेख या ताम्रपत्र निहित पड़े हों, जिनमें अनेक वीरकर्मा महापुरुषों का जीवन-वृत्त अन्धकार में विश्राम कर रहा हो। सम्भव है, आगे कोई महाराज विक्रमादित्य का शिला-लेख या ताम्रपत्र निकल पड़े और आज की इस विवादास्पद समस्या का अन्त कर दे।

फिर भी सत्य है कि चाहे कोई शिलालेख महाराज विक्रमादित्य या कालिदास का आगे मिले अथवा न मिले, हमारे हृदयों में उनके प्रति जो श्रद्धा है, वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायगी। उनके कर्मों का प्रभाव सदा हमें प्रभावित करता रहेगा और उनके अस्तित्व, समकालीनता और संवत्-प्रवर्त्तन में हमें कभी कोई सन्देह नहीं हो सकता। जनश्रुति ही आर्य जाति का जीवनधन है। यदि जनश्रुति न रहे, तो उसके अनेक ऋषि-महर्षि और अवतार विस्मृति की गहन गुफा में जा छिपेंगे। जहाँ विक्रमादित्य इस अभागे राष्ट्र के विक्रम एवं न्याय के प्रतीक बनकर इसकी स्वातन्त्र्य-वह्नि को प्रज्वलित करते रहेंगे, वहाँ कविकुल-गुरु कालिदास इसकी विश्व विजयिनी प्रतिभा का प्रतीक बनकर इसे गर्व और गौरव से शिर ऊँचा रखने में समर्थ रखेंगे।

**कालिदास की कृतियों का मूलाधार :**—महाकवि कालिदास की कृतियाँ विश्व-साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति हैं। उनकी ध्वनि में हमारी संस्कृति का संगीत है और उनके कारण संसार के सभ्य-से-सभ्य देश को भी हम अपने पूर्वजों के सामने नतमस्तक पाते हैं।

इस महाकवि के सात ग्रंथ परम प्रसिद्ध और सर्वस्वीकृत हैं। ये हैं—'रघुवंश', 'कुमार संभव,' 'मेघ-दूत', 'ऋतु संहार,' 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' और 'अभिज्ञानशाकुंतल'। इनमें से प्रथम दो महाकाव्य, तृतीय और चतुर्थ खंडकाव्य तथा अंतिम तीन नाटक हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


सबसे पहले रघुवंश को ही लें। निस्संदेह*, सूर्यवश की वंशावली चौदह पुराणों में दी गयी है; किन्तु सभी वंशावलियों में बहुत कुछ भेद है। केवल एक ब्रह्मपुराण ही ऐसा है जिसमें दिलीप के पुत्र रघु, रघु के अज, अज के दशरथ तथा दशरथ के पुत्र राम कहे गये हैं†। इनके बाद के नौ राजाओं के सम्बन्ध में 'रघुवंश' 'विष्णु-पुराण', तथा 'वायु पुराण' एकमत हैं। इन नौ राजाओं के नाम हैं—कुश, अतिथि, निषध, नल, नभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक और अहीनगु। उपर्युक्त चौदह राजाओं के अतिरिक्त कालिदास ने पारियात्र, शिल, उल्लाभ, वज्रनाभ, शंखण, व्युसिताश्व, विश्वसह, हिरण्यनाभ, कौशल्य, ब्रह्मिष्ठ, पुत्र, पुष्य, ध्रुवसंधि, सुदर्शन, एवं अग्नि वर्ण, इन पन्द्रह राजाओं का वर्णन किया है। रघुवश और विष्णु पुराण दोनों ही पारियात्र को अहिनगु का पुत्र बतलाते हैं और उसके बाद बारह राजाओं का वर्णन विष्णु पुराण में भी मिलता है। राजाओं के नाम तो प्रायः रघुवंश के समान ही हैं, पर क्रम में गड़बड़ी है। अतः यह बात स्पष्ट है कि कालिदास सूर्यवंश की वंशावली के लिये ब्रह्म, विष्णु एवं वायु इन तीन पुराणों के ऋणी हैं। कुछ राजाओं का क्रम शायद उन्होंने पुराणों की गड़बड़ी देखकर स्वय ठीक कर लिया है। प्रो० हरदत्त शर्मा ने बंगला लिपि में लिखे हुए पद्मपुराण के पाताल खंड से बारह अध्याय उद्धृत कर प्रकाशित कराये हैं। इनमें दिलीप से लेकर राम-सीता-परिणय तक की कथा रघुवश से मिलती जुलती कही गयी है। ये अध्याय बम्बई के पद्मपुराण में नहीं मिलते। अतः इनकी सत्यता असंदिग्ध नहीं कही जा सकती। अतएव हम केवल उक्त तीन पुराणों को ही रघुवश का प्रधान आधार ग्रंथ मान सकते हैं।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि वंशावली तो कालिदास ने उक्त पुराणों से ली, पर राजाओं के पराक्रम एवं शासन का वर्णन उन्होंने किस आधार पर किया। उत्तर यह है कि वंशावली का वर्णन करते हुए पुराणों में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजाओं के सम्बन्ध में कुछ कहा भी गया है। इसके अतिरिक्त महाराज दशरथ और भगवान रामचन्द्र का वर्णन तो वाल्मीकि रामायण तथा प्रायः सभी पुराणों में मिलता ही है। जिन राजाओं का वर्णन कहीं नहीं मिलता, उसके सम्बन्ध में कवि ने या तो कुछ कहा ही नहीं, या कहा तो अपनी कल्पना के सहारे। इस सम्बन्ध में उन्हें दूसरे पुराणों से भी पर्याप्त सहायता मिली। उदाहरण के लिए रघुवंश के तृतीय सर्ग में वर्णित रानी सुदक्षिणा के दौहद लक्षण (गर्भावस्था के चिह्न) और रघु के जन्म का वर्णन शिवपुराण के पार्वती-खण्ड के पांचवें

---

* पद्मपुराण और कालिदास—श्री हरिदत्त शर्मा कृत।

† Padma Puran and Kalidasa by H. Sharma.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अध्याय में वर्णित मैना के दौहद-लक्षण तथा पार्वती-जन्म के वर्णन से, भाव एवं भाषा दोनों ही में, बहुत कुछ साम्य रखते हैं। शिवपुराण और रघुवंश के इन अंशों में इतना अधिक साम्य है कि देखकर आश्चर्य होता है। पर साम्य होते हुए भी हमारे कवि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा के प्रसाद से अपने काव्य में अद्भुत सौन्दर्य एवं चमत्कार उत्पन्न कर दिए हैं।

कुमारसंभव तो शिवपुराण के पार्वती-खण्ड एवं कुमार-खण्ड पर सर्वथा समाधारित है। उसमें तो महाकवि ने भाव, भाषा, शैली, ये सभी बातें शिवपुराण की ही रक्खी हैं। केवल छन्द भिन्न-भिन्न और मनोहर हैं और बीच-बीच में कल्पना, चमत्कार तथा सजीवता है। हमारा विचार है कि वह कालिदास की प्रथम कृति है तथा केवल आठवें सर्ग तक ही उनके द्वारा नहीं रची गयी थी, बल्कि समग्र उन्हीं की रचना है। यदि केवल पार्वती परिणय तक ही हम उसे कालिदास की रचना मानें तो फिर 'कुमारसंभव' नाम ही निरर्थक हो जाता है। और ऐसा कहीं लिखा नहीं मिलता कि इस काव्य का नाम प्रारंभ में कुछ और था और पीछे से 'कुमारसंभव' रक्खा गया।

'मेघदूत' के आधार के सम्बन्ध में मत-भिन्नता है। मल्लिनाथ कहते हैं—

सीतां प्रति रामस्य हनुमत् सन्देशं मनसि निधाय मेघ संदेशं कविः कृतवानित्याहुः* ।

हनुमान के द्वारा सीता के पास भगवान् रामचन्द्र ने जो संदेश भेजा था, उसको हृदय में रखकर कवि ने 'मेघदूत' की रचना की है। किन्तु पंडित प्राणनाथ सरस्वती कहते हैं कि 'मेघदूत' की रचना करने की प्रेरणा शायद घटकर्पर के यमक काव्य से कवि को मिली थी†। दूसरी बात हमें संभव नहीं मालूम होती, क्योंकि उक्त काव्य में कोई ऐसी गंभीर करुणाजनक कल्पना का बीज दृष्टिगोचर नहीं होता और न मेघदूत में कहीं यमक का ही जमघट है। पर मल्लिनाथ की उक्ति में सत्य का अंश अवश्य है, वाल्मीकि की रचना से 'मेघदूत' लिखते हुए कवि अवश्य प्रभावित था। यह तो 'इत्याख्याते पवन-तनयं मैथिलीवोन्मुखी सा' लिखकर उसने स्पष्ट ही कर दिया है। निस्संदेह केवल कारुण्य मात्र ही उसने वहाँ से ग्रहण किया है। कल्पनाएँ और उक्तियाँ उसकी अपनी हैं।

'ऋतुसंहार' काव्य कवि के प्रकृति निरीक्षण का प्रसाद है। इसमें किसी ग्रंथ का आधार स्वरूप होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक ऋतु में कवि ने

* मेघदूत—श्लोक १—संजीवनी टीका।

† Kalidasa's Meghadutam, by S. Roy and K. Roy Introduction P. 10.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अपने चारों ओर जो दृश्य देखे, उन्हें ही उसने सुन्दर काव्य के ढाँचे में ढाल दिया।

'मालविकाग्नि मित्र' एक ऐतिहासिक नाटक है। ई० सन् से लगभग १८६* वर्ष पूर्व अंतिम मौर्य सम्राट् बृहद्रथ के ब्राह्मण-सेनापति पुष्प मित्र ने उसका वधकर उसकी गद्दी छीन ली। इसके राज्य का विस्तार दक्षिण में नर्मदा नदी तक, उत्तर में कोशल तक, पूर्व में मगध तक तथा पश्चिम में पंजाब के जालंधर तथा शाकल नगरों तक था। उसके साम्राज्य में पाटलिपुत्र, अयोध्या, विदिशा, जालंधर एवं शाकल जैसे नगर थे। उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा का तथा उसका कोई अन्य सम्बन्धी कोशल का शासक था। राजधानी पाटलिपुत्र ही था। यह नाटक विदिशा के शासक कुमार अग्निमित्र से ही सम्बन्ध रखता है। लगभग १५१ ई० पू० में अपने पिता के मरने पर ये सम्राट् हुए थे। कालिदास ने यह ऐतिहासिक सामग्री किन्हीं ग्रन्थों से ली थी या अपने से थोड़े समय पूर्व होनेवाली घटना होने के कारण जनश्रुति से प्राप्त की थी, यह बतलाना कठिन है। पर है यह एक सच्ची ऐतिहासिक घटना। बृहद्रथ मौर्य के दरबार में दो परस्पर विरोधी दल थे। एक प्रधान मंत्री का और दूसरा प्रधान सेनापति का। प्रधान मंत्री का सहायक या सम्बन्धी यज्ञसेन विदर्भ का शासक बनाया गया था तथा अग्निमित्र विदिशा का। किंतु जब पुष्पमित्र ने बृहद्रथ को मारकर प्रधान सचिव को कैद कर लिया तो यज्ञसेन स्वतंत्र राजा बन बैठा। अग्निमित्र ने चढ़ाई कर उसे परास्त कर दिया और अंत में उसका राज्य इसके और उसके चचा माधवसेन के बीच में बँट गया। मालविका, धारिणी, इरावती, वीरसेन, वाहतव, सुमति तथा अग्निमित्र का पुत्र वसुमित्र, जिसने अपने पितामह पुष्पमित्र यज्ञीय अश्व की रक्षा करते हुए सिंधु के किनारे यवनों को परास्त किया था, ये सभी ऐतिहासिक व्यक्ति हैं।†

'विक्रमोर्वशीय' में विक्रम (पराक्रम) द्वारा उर्वशी के जीतने का वर्णन है। सम्भव है, यह काव्य महाकवि ने अपने आश्रयदाता आदि विक्रमादित्य शकारि को प्रसन्न करने के लिए लिखा हो। क्योंकि इसमें स्थान-स्थान पर विक्रमादित्य की ओर इशारा किया गया है।

---

* इस तिथि के संबंध में ऐतिहासिकों में मतभेद है। श्री लाला जापतराम और डा० वि० ए० स्मिथ के अनुसार यह तिथि १८८ ई० पू० तथा डा० रामचौधरी के अनुसार १८७ ई० पू० है।

† Malvikagnimitra By C. S. Ram Shastri—Preface Page IV and V and Political History of Ancient India By Roychoudhary.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



इस नाटक का नायक था राजा पुरुरवा। ऋग्वेद के प्रथम मंडल, सूक्त ३१, मंत्र ४ में इनको अग्निदेव का सेवक तथा कृपापात्र कहा गया है। ऋग्वेद दशम मंडल का ६५ सूक्त समूचा पुरुरवा और उर्वशी का संवाद है। सगर्भा उर्वशी पुरुरवा का साथ छोड़कर स्वर्ग चली गयी थी। उसके विरह में व्याकुल राजा कुरुक्षेत्र में उसे पाकर उससे अपने पास रहने की प्रार्थना करता है। यह राजा चन्द्रवंश के बुध एवं इला का पुत्र था। उक्त सूक्त के १७ वें मंत्र में वह कहता है—'शुभकर्मकर्त्ता यह पुरुरवा तुम्हारे पास रहने की अभिलाषा करता है। आह! मेरा हृदय जल रहा है। हे उर्वशी लौटो।' पर वह क्यों लौटे? वह तो कहती है—

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणि हृदयान्येता।

अर्थात् स्त्रियों का हृदय प्रेम में स्थायी नहीं होता, इनका हृदय तो भेड़ियों के समान क्रूर होता है। निस्सन्देह उसका यह कथन उसकी जैसी स्त्रियों के ही लिए हैं। पर इसी सूक्त में पुरुरवा की वीरता और पराक्रम का उसीने स्पष्ट वर्णन किया है। वह कहती है, "जिस समय पुरुरवा ने जन्म ग्रहण किया, उस समय देवपतियाँ देखने आयीं। अपनी शक्ति से बहनेवाली नदियों ने भी उसकी प्रशंसा की। पुरुरवा! तुम्हें दस्युवध करने को घोर युद्ध में भेजने के लिये देवता लोग भी तुम्हारी सम्वर्द्धना करने लगे।" इसी कहानी के भिन्नभिन्न रूप मत्स्यपुराण,* भागवत,† विष्णु पुराण,‡ सायण भाष्य§, तथा कथा सरित सागर° में पाये जाते हैं। इन सबों की कहानी थोड़े बहुत भेदों के साथ यह है :—

'मित्र एवं वरुण ये दोनों यज्ञ में दीक्षित थे। उर्वशी शृङ्गार किये हुए उनके पास से होकर निकली और अपनी शृङ्गारपूर्ण चेष्टाओं से उसने उन्हें काम मोहित करने का यत्न किया। इससे वे चिढ़ गये और उसे शाप दिया कि तू मनुष्य की पत्नी हो जा। बहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने कहा कि पुत्र-जन्म देने पर तुम मर्त्यलोक से फिर स्वर्ग लोक में चली आओगी। उर्वशी अपने योग्य मनुष्य की खोज करते-करते राजा पुरुरवा के पास पहुँची। दोनों प्रेम-बन्धन में बँध गये। पर उर्वशी ने कहा—मेरे पास ये दोनों भेंड़े हैं। मैं स्वर्ग से इन्हें पुत्र मानकर लाई हूँ। यदि कोई इन्हें ले भागेगा या यदि मैं आपको नंगा देख लूँगी तो मैं आपका साथ छोड़ स्वर्ग चली जाऊँगी। उर्वशी की यह शर्त काम पीड़ित पुरुरवा ने स्वीकार

* अध्याय ११-१२;
† स्कंध ९, अध्याय १४,
‡ विष्णुपुराण अं० ४ अद्ध
§ ऋग्वेद मंडल १० सू० ९५
° लं० ३, त० ३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



कर ली। बहुत दिनों तक वे साथ रहे, पर उर्वशी के बिना इन्द्र को चैन नहीं मिलने लगा। उन्होंने गन्धर्वों को उर्वशी को लाने के लिये भेजा। ये गन्धर्व अँधेरी रात में उसके भेड़ें चुराकर भागे। राजा सो रहा था। उसकी धोती ढीली होकर खुल गई थी। उर्वशी के चिल्लाने पर उसने यह समझा कि अँधेरे में मुझे कोई नंगा न देख सकेगा। अतः वह वैसे ही दौड़ पड़ा। भेंड़ उसने छीन लिये, पर गंधर्वों ने बिजली का प्रकाश कर दिया और उर्वशी ने राजा को नंगा देख लिया। वह गंधर्वों के साथ स्वर्ग चली गयी। राजा उसके विरह में पागल होकर नंगा ही इधर-उधर घूमने लगा। अंत में कुरुक्षेत्र में ( किसी-किसी के अनुसार मानसरोवर में ) उसने उर्वशी को देखा। वेद में जो संवाद है, वह उसी समय का है। उर्वशी ने कहा कि इस समय आप से मुझे गर्भ है। अतः साल भर बाद फिर यहीं मिलियेगा। राजा उसी तिथि को उर्वशी से वहीं फिर मिला। उर्वशी ने उसे उसका पुत्र आयुः दे दिया, जो आगे चलकर महाप्रतापी सम्राट् हुआ। प्रतिवर्ष उर्वशी उसी स्थान पर अपनी सखियों के साथ उसी तिथि को आती थी और रात भर महाराज पुरुरवा के साथ रहती थी। इस प्रकार उसने पाँच और पुत्र उत्पन्न किये। अंत में अग्निदेव की आराधना कर पुरुरवा ने स्वर्गलोग प्राप्त किया और उर्वशी की संगति उसे प्राप्त हुई।

महाकवि कालिदास ने इसी कहानी को लेकर अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से विक्रमोर्वशी नाटक की रचना की है। मूल कहानी में जो उन्होंने परिवर्त्तन किये हैं, उनसे कहानी का स्वरूप अत्यन्त रमणीय हो गया है। उर्वशी शाप के कारण स्वयं पुरुरवा को ढूँढ़ती हुई नहीं आती है और न वह राजा से कोई शर्त ही करती है। इस नाटक में प्रतिद्वंद्विता लाने के लिए ही कवि ने रानी उशीनरी की कल्पना की है। भरत मुनि का शाप और इन्द्र की कृपा; ये दोनों बातें नाटक में समता लाने के लिए कही गयी हैं। इन्द्र ने उर्वशी को पुरुरवा की मृत्यु तक मर्त्यलोक में रहने की आज्ञा देकर नाटक को सुखान्त बनाने में सहायता दी है। गंध मादन पर्वत पर कुमार वन में उर्वशी के प्रवेश करने की घटना भी कवि की प्रतिभा का चमत्कार है। एक पुरानी एवं कला-हीन कहानी को अत्यन्त रमणीय एवं अभिनयात्मक बनाकर कवि ने अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया है।

कवि की अंतिम कृति 'अभिज्ञान शाकुंतल' प्रतीत होती है। इसमें उसकी प्रतिभा चरम सीमा पर पहुँची हुई दिखाई पड़ती है। पं० हरदत्त शर्मा ने इसका भी आधार पद्मपुराण ही बतलाया है और इस कहानी का पौराणिक रूप उद्धृत कर प्रकाशित कराया है। किंतु, केवल बंगला लिपि में लिखित पद्मपुराण में प्राप्त होने के कारण इसे हम असंदिग्ध नहीं मान सकते। इसकी मूल कहानी महाभारत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



में मिलती है। आदि पर्व के ६८ वें से ७४ वें अध्यायों तक में यह कथा कही गयी है। उसका सारांश यह है—

पुरुवंश का एक प्रसिद्ध पुरुष दुष्यन्त था। वह एक परम धर्मात्मा और न्यायी शासक था। मृगया के प्रसंग से वह कण्व ऋषि के आश्रम में जा पहुँचा। कण्व फल एवं समिध लाने के लिए बाहर चले गये थे। आश्रम से बाहर ही पुरोहित और मंत्रियों को रखकर वह अकेले ही ऋषि की कुटी पर पहुँच गया। वहाँ जाकर आवाज दी। शकुंतला बाहर आयी। कण्व को बाहर गया हुआ सुनकर भी राजा वहीं ठहरकर उस बाला से बातें करने लगा। कन्या का परिचय प्राप्त कर उसने गंधर्व-विवाह का प्रस्ताव किया। कन्या ने ऋषि के आने तक प्रतीक्षा करने की प्रार्थना की। राजा काम के वशीभूत हो गया था। उसने उससे तुरत शादी करने का हठ किया और अंत में शकुंतला के ही पुत्र को युवराज बनाने का वचन देकर उसके साथ रमण किया। कण्व के आने में देर होती देखकर वह वहाँ से चला गया। जाते समय शीघ्र शकुन्तला को लाने के लिए आदमी भेजने का वचन भी देता गया। किन्तु, ६ वर्षों तक कोई भी शकुन्तला को लेने के लिए दुष्यन्त की तरफ से नहीं आया। शकुन्तला के विवाह की बात को कण्व ने अपनी ज्ञान-दृष्टि से देख लिया था। उन्होंने शकुन्तला के पुत्र भरत के सब संस्कार यथोचित रूप में किए। भरत बहुत हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था।

छः वर्ष की अवस्था में ही उसने सिंह, बाघ और बाराह इत्यादि जानवरों को बल से पकड़-पकड़कर ला-लाकर आश्रम में बाँधना प्रारम्भ कर दिया था। इसीलिए सब ऋषि उसे 'सर्वदमन' कहने लगे। कण्व ऋषि ने शकुन्तला और भरत को अपने शिष्यों के साथ राजा दुष्यन्त के पास भेजा। दुष्यन्त ने शकुंतला के साथ अपना सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया। शकुंतला बहुत दुखित हुई और तरह-तरह से उसने अपने पति को समझाया। अन्त में धर्म का पालन न करने पर उसकी मृत्यु की भी धमकी दी; किन्तु राजा उससे अपना सम्बन्ध स्वीकार करने के लिए राजी न हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होंने शकुंतला से अनेक कटुवचन कहे। शकुंतला का हृदय शोक से भर गया और उसने कहा कि असत्यवादी पुरुष से वह स्वयं संसर्ग नहीं रखना चाहती। इसी समय आकाशवाणी हुई कि शकुंतला का कहना सत्य है। राजा ने अपने मंत्रियों और पुरोहितों की सम्मति से शकुंतला और भरत को क्रमशः पत्नी और पुत्र के रूप में स्वीकार किया और अपने कटु-व्यवहार के लिए उनसे क्षमा माँगी। उसने कहा कि मैंने यह निष्ठुर आचरण सबको विश्वास दिलाने के लिए किया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



कालिदास ने इस कहानी में बहुत-से परिष्कार किये हैं। जिस रूप में महाभारत की कहानी वर्णित हुई है, दुष्यन्त का व्यवहार अत्यन्त निष्ठुर प्रतीत होता है। उसका चरित्र उच्च नहीं मालूम होता होता। अभिज्ञान-शाकुंतल में दुष्यन्त से प्रथम मिलन होने पर शकुंतला अकेली नहीं रखी गयी है और न तो उसने इतनी आसानी से विवाह करने को सम्मति ही दी है। महाभारत के दुष्यन्त में धैर्य का अभाव है; किन्तु कालिदास का दुष्यन्त सचमुच ही एक धीर पुरुष है। उसने शकुंतला से अपनी ओर से एक-एक प्रेम भिक्षा नहीं माँगी है। प्रेम-पत्र पहले शकुंतला ने ही लिखा है। इस कहानी के बीच में दुर्वासा ऋषि के शाप की कल्पना और अँगूठी द्वारा उसके दूर होने की बात कालिदास की अद्भुत प्रतिभा का नमूना है। इन्होंने दुष्यन्त के चरित्र को उज्ज्वल बनाये रखने के लिए ही इस शाप-प्रसंग की कल्पना की है।

कालिदास की शकुंतला छः वर्ष तक आश्रम में ही नहीं बैठी रहती। गर्भवती शकुंतला को दरबार में उपस्थित कर उसको अस्वीकार कराने में जितना कारुण्य है, उतना छः वर्ष के पुत्रवाली शकुन्तला के आख्यान में नहीं। दुष्यन्त का विरह-वर्णन और अपनी करनी पर पश्चात्ताप करना कवि को दिखाना अभीष्ट था। अतः उसने तुरंत शकुंतला से दुष्यन्त का मिलन नहीं कराया। दानवों पर विजय प्राप्त कर लौटते हुए विजयी एवं विरही दुष्यन्त से तपस्विनी शकुंतला का मिलन काव्य की दृष्टि से कितना सुन्दर और समुचित है। अपने पुत्र भरत को देखकर बिना पहचाने हुए भी उसके प्रति स्नेह होना एक स्वाभाविक बात है। महाभारत की कहानी का अन्त बड़ा ही रुखा है। उसे कुछ-कुछ अस्वाभाविक भी कह सकते हैं। भला जान-बूझकर किसी भी मतलब से कोई भी सहृदय पुरुष अपने छः वर्ष के दूधमुँहा बालक और विवाहिता पत्नी को समक्ष में देखकर भी इस प्रकार निष्ठुर व्यवहार कर सकता है? निस्संदेह कालिदास ने महाभारत से कहानी मात्र ली है, पर इस असंस्कृत कथानक रूपी पत्थर को अपनी प्रतिभा और कल्पना से कितना सुन्दर रत्न बना डाला है, यह प्रत्येक पुरुष के हृदयंगम करने योग्य है।

अंत में हमें इतना कह देना उचित प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदास के समान महाकवि कालिदास ने भी अपने समय के तथा उसके पूर्व के प्रायः समग्र साहित्य का अध्ययन कर डाला था और अपने काव्यों में अपने अध्ययन का अत्यन्त विवेकपूर्वक बड़ा ही सुन्दर उपयोग किया था।

**कालिदास कालीन भारत की भौगोलिक स्थिति**—कवियों के काव्यों पर उनके काल की भौगोलिक स्थिति का प्रभाव भी अवश्य पड़ता है। अतएव किसी कवि के काव्य का यथार्थ अध्ययन करने के लिए उसके समय की अन्यान्य बातों के साथ-साथ भौगोलिक स्थिति का भी ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



कवि जितना ही बड़ा होगा, उसका भिन्न-भिन्न प्रकार का अनुभव भी उतना ही गहरा एवं उत्कृष्ट होगा। अतः उसके ग्रन्थों में, उसके अपने समय की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक स्थितियों का पूरा-पूरा वर्णन मिल सकता है। यदि कवि के ग्रन्थों के अतिरिक्त इन बातों के जानने का कोई और साधन न हो, तब तो हमें उसी के ग्रन्थों पर निर्भर करना ही पड़ेगा। महाकवि कालिदास के ग्रन्थ अनेक एवं महान् हैं। उसका ज्ञान, अनुभव एवं वर्णन शक्ति असीम है। अतएव, उसके ग्रन्थों के आधार पर तत्कालीन अन्यान्य परिस्थितियों के साथ-साथ भौगोलिक स्थिति का भी हम एक शृङ्खलाबद्ध एवं सूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत कर सकते हैं।

भौगोलिक स्थिति का अर्थ बहुत व्यापक है। किसी देश की सीमा, उसके प्राकृतिक एवं राजनैतिक विभाग, उसके वाणिज्य-व्यवसाय, कला-कौशल, अन्यान्य देशों से सम्बन्ध—नगर, वन, नदी, झील, पहाड़, उपज, खग, मृग, वृक्ष, लता, जनसंख्या एवं शासनपद्धति, ये सभी उसके भीतर रक्खे जाते हैं। निस्संदेह, कालिदास ने इनमें से अनेक बातों का विशद एवं मनोहर वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। पर इन सबों पर पूर्ण प्रकाश डालने का यहाँ न तो अवसर ही है और न स्थान ही। इसके लिये तो एक स्वतंत्र एवं बृहत् ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता है। यहाँ केवल इनमें से कुछ प्रमुख बातों का संक्षिप्त वर्णन दे देना ही पर्याप्त होगा। कालिदास के निकट पूर्व का भारत—जो भारत भगवान रामचन्द्र एवं धर्मराज युधिष्ठिर के समय में भगवान राम एवं कृष्ण के अनवरत प्रयत्नों से एक शासन-सूत्र में बँधा था, वही कालक्रम से भगवान बुद्ध के समय में फिर छिन्न-भिन्न हो गया था। इस समय मगध में बिंबिसार, कोशल में प्रसेनजित्, वत्सदेश में उदयन और अवंति में चण्डप्रद्योत, ये चार प्रतापी शासक दीख पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त यत्र-तत्र अन्यान्य छोटे-छोटे शासकों का शासन था। कुछ प्रान्तों में गणतन्त्र या संघराज्य भी थे, जो प्रजातंत्र के प्रारंभिक स्वरूप थे। इस समय समग्र भारत काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जी, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवंति, गांधार और कांबोज, इन सोलह महाजनपदों या प्रान्तों में विभक्त था। जान पड़ता है, इनमें कुछ दक्षिण के देशों एवं जंगली प्रान्तों को सम्मिलित नहीं किया गया था। भगवान बुद्ध के पीछे ये सभी जनपद अशोक के समय तक मौर्य-साम्राज्य की छत्रच्छाया में आ चुके थे। मौर्यों के पश्चात् शुंग तथा कण्ववंशी राजाओं के समय में यह बृहत् साम्राज्य एक बार फिर छिन्न-भिन्न हो चला था। बाहर से शकों के दल-पर-दल भारत में आ-आकर बसने लगे थे। सारांश यह कि इस पुनीत भूमि पर एक नवीन देवासुर-संग्राम का दृश्य उपस्थित हो गया था। ऐसे ही संकटपूर्ण काल में हमारे कवि का आविर्भाव हुआ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



था। यही कारण है कि उसने देवासुर-संग्राम के सुप्रसिद्ध विजयी सेनापति कुमार (स्कन्द) के वीर चरित का अपने सर्व प्रथम काव्य में ही वर्णन कर आर्य वीरों को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया।

कालिदास का जन्म किस प्रान्त में हुआ था, यह एक पृथक् समस्या है। हमें यहाँ इसपर विचार करने का अवकाश नहीं। हम तो उसपर समग्र भारत का अधिकार रखना ही पसन्द करते हैं। जन्म चाहे कहीं हो, पर उसकी ममता समूचे देश पर थी। उसको अखिल देश का सम्पूर्ण ज्ञान था—कामरूप से गांधार तक एवं कांबोज से कुमारी अन्तरीप तक। सबसे सुन्दर वर्णन उसने हिमालय एवं भारत महासागर का किया है। भारत के सौन्दर्य एवं महिमा के वर्णन से उसका जी कभी तृप्त नहीं होता था। जिस प्रकार एक अनन्य भक्त अपने इष्टदेव की मधुर झांकी ध्यानावस्थित होकर बार-बार लिया करता है, उसी प्रकार भक्त महाकवि ने भारतमाता का सौन्दर्य अनेक प्रकार से प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न किया है। उसके वर्णन इतने सुन्दर, सरस और मनोहर हैं कि विश्व के साहित्य में उनसे टक्कर लेने-वाले वर्णन कदाचित् ही मिल सकेंगे। रघु-दिग्विजय-मार्ग, मेघ-मार्ग, एवं पुष्पक की लंका से अयोध्या तक की यात्रा का जितना सुन्दर चित्र कालिदास ने खींचा है, उतना विश्व का कौन-सा भारती-पुत्र खींच सका है? ये और अनेक अन्यान्य नदियों, आश्रमों एवं लता-वृक्षों के वर्णन कालिदास की नैसर्गिक प्रतिभा के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

सीमा—रघु-दिग्विजय के आधार पर हम भारत की सीमा यों बतला सकते हैं—पूर्व में ब्रह्मदेश एवं वंगोपसागर, दक्षिण में भारत महासागर, पश्चिम में अरब सागर एवं पारस्यदेश और उत्तर में हिमालय तथा उसके पार के चीन, तुर्किस्तान तथा उत्तर कुरु आदि देश। प्रत्येक दिशा में भारत के सीमाप्रान्त यों थे—पूर्व में वंग और कलिंग, दक्षिण में पाण्ड्य राज्य, पश्चिम में केरल, अपरान्त एवं गांधार तथा उत्तर में कांबोज उत्सव संकेतों का प्रदेश और कामरूप। कन्दहार एवं काबुल अर्थात् आधुनिक अफगानिस्तान भारत का प्रान्त सदा से रहता चला आया है। ब्रह्मदेश सिलोन या सिंहल भारत के भाग इस काल में नहीं प्रतीत होते।

शासक :—इन्दुमती स्वयंवर इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि कालिदास के समय में भारत भिन्न-भिन्न शासकों के अधीन था। इस स्वयंवर में आठ महाप्रतापी स्वतंत्र नरेशों के वर्णन हैं। वे हैं मगधेश्वर, अंगनाथ, अवंतिनाथ, माहिष्मती-नरेश, सूरसेनीध कलिंगनाथ, पाण्ड्य-नरेश और अयोध्या नरेश। मालूम होता है उस समय कई स्वतंत्र नरेश थे। इनमें भी मगधेश्वर एवं अवंतिनाथ इन दोनों की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



प्रधानता थी। इन प्रमुख शासकों के अतिरिक्त छोटे-छोटे राजे या गणतंत्र भी रहे होंगे ; पर वे नगण्य थे।

**प्रान्त** :—कालिदास ने स्थान-स्थान पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में निम्नलिखित प्रान्तों का उल्लेख किया है—सुह्म, वंग, कलिंग, पाण्ड्य, केरल, अपरांत, केकय, निषध, काम्बोज, उत्सव-संकेत, कामरूप, गान्धार, मगध, अंग, अवंति, अनूप, शूरसेन, विदर्भ, जनस्थान, कोशल, मिथिला, माल, दशार्ण, वत्स, ब्रह्मावर्त्त, कनखल, यक्ष भूमि और सिंधु तीर (काश्मीर)। इस सूची से बौद्धकालीन महाजनपदों में से काशी, वज्जी, मल्ल, चेदि, कुरु पांचाल, अश्मक और मत्स्य इन आठ का वर्णन नहीं मिलता। शायद ये मगध-नरेश या अन्यान्य शासकों के अधीन होकर अपना महत्त्व खो चुके थे। इन प्रान्तों की सीमा उस समय क्या थी, यह कहना कठिन है। सुह्म कहीं अंग और वंग के बीच में था। अपरांत केरल के उत्तर में शायद बम्बई और सिन्ध प्रान्तों में विस्तृत था। अनूप की राजधानी माहिष्मती नगरी थी। अतः वह मालवा के दक्षिण नर्मदा नदी के आस-पास का प्रदेश था। केकय पंजाब में तथा निषध कहीं राजपूताने में था। उत्सव संकेत कहीं हिमालय पर था। जन स्थान आजकल के औरंगाबाद जिले के अतिरिक्त गोदावरी एवं कृष्णा नदियों के मध्य में स्थित था। पंचवटी (नासिक) भी उसी का एक भाग थी, शेष प्रांत तो प्रसिद्ध ही हैं।

**नगर**—अलका, विदिशा, उज्जयिनी, दशपुर, पुष्पपर, माहिष्मती, मथुरा, उरगपुर, मिथिला, नंदिग्राम, लंका, साकेत, कुशावति और हस्तिनापुर इन चौदह नगरों के वर्णन कालिदास के ग्रन्थों में आये हैं। इनमें से अलका कुबेर की और लंका रावण की पुरी थी। ये दोनों भारत की सीमा से बाहर थीं। शेष बारह नगरों में नंदिग्राम अयोध्या के पास ही था, जहाँ से भगवान राम के वनवास के समय कोशल का शासन होता था। विदिशा आधुनिक भिलसा है, यह दशार्ण की राजधानी थी। इसी विदिशा में अग्निमित्र राजा था, जो 'मालविकाग्निमित्र' का नायक है। उज्जयिनी अवंति की राजधानी थी। कालिदास ने मेघदूत में इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। दशपुर मालवा में था। पुष्पपुर, कुसुमपुर, और पाटलिपुत्र पटना के ही नाम हैं। उरगपुर, उरईपुर या नागपुर पाण्ड्य नरेशों की राजधानी का नाम था। साकेत अयोध्या ही का बौद्ध कालीन नाम है। कुशावती नगरी को कुश-नरेश ने भगवान राम के स्वर्गारोहन के बाद बसाया था।

**वन और आश्रम**—इस समय वन तो अनेक रहे होंगे ; पर हिमालय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



की तराई में, विश्वामित्र के आश्रम में, विन्ध्य के दक्षिण में और जनस्थान के पास में बड़े ही घोर जङ्गल थे। इन्हीं जङ्गलों में तपस्वियों के आश्रम थे। कालिदास ने वशिष्ठ, वामन, गौतम, अत्रि, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, शरभंग, वाल्मीकि और कण्व के आश्रमों का उल्लेख किया है। इन आश्रमों का ठीक-ठीक स्थान बताना कठिन है। वशिष्ठाश्रम कहीं हिमालय की तराई में स्थित मालूम पड़ता है। राजा दिलीप अपनी सुदक्षिणा रानी के साथ अयोध्या से प्रातःकाल रथ से चलकर सन्ध्या समय वहाँ पहुँच जाते हैं। वामनाश्रम में ही महर्षि विश्वामित्र रहते थे। यह आधुनिक वक्सर में गङ्गा नदी के दाहिने किनारे पर था। अभी भी वक्सर सेन्ट्रल जेल के हाते में वामनेश्वर महादेव का मन्दिर बना हुआ है। भाद्रशुक्ल द्वादशी ( वामन द्वादशी ) को यहाँ ठोरा एवं गङ्गा नदियों के संगम पर प्रतिवर्ष लोग स्नान-पूजा के लिए एकत्र हुआ करते हैं। गौतम-आश्रम मुजफ्फरपुर में विशाला ( बसाढ़ ) के पास कहीं था। यहीं पर भगवान राम ने अहिल्या को शाप-मुक्त किया था। अत्रि का आश्रम चित्रकूट के पास था। अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, एवं शरभंग के आश्रम गोदावरी नदी से उत्तर और चित्रकूट से दक्षिण पुष्पक-यात्रा के मार्ग में थे। वाल्मीकि का आश्रम गङ्गा के दक्षिणी किनारे पर अयोध्या से चित्रकूट के मार्ग में था। कण्व का आश्रम भी हिमालय की उपत्यका में मालिनी के तीर पर था। यहीं शकुन्तला का लालन-पालन हुआ था। कालिदास ने दुष्यन्त के मुख से शकुन्तला चित्राङ्कन के समय इसका अत्यन्त मनोरम वर्णन कराया है।

इन आश्रमों में वैदिक यज्ञों की धूम रहती थी। निरन्तर अग्निहोत्र होता रहता था। वक्सर में सेन्ट्रल जेल से लेकर किले के पास तक टूटते हुए करारों पर आज से तीस वर्ष पूर्व असंख्य यज्ञ-कुण्ड देखे जाते थे। इनकी गहराई २० हाथ तक तो जल के ऊपर जमीन की सतह तक रही होगी और अभी नीचे ये कितने गहरे थे, यह बतलाना कठिन है। इनकी चौड़ाई साधारण कुओं के बराबर थी। बड़े-बड़े ताादों के टुकड़ों से ये बँधे हुए थे और उनमें राख भरी रहती थी। कभी-कभी उनमें जले हुए जौ के भी दर्शन हो जाया करते थे। आज भी चरित्रवन में खोज करने से ऐसे कुंड मिल सकते हैं। इन आश्रमों में एक-एक कुलपति तो अवश्य रहते थे। यहाँ निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। दश सहस्र छात्र-छात्राओं को भोजन-वस्त्र एवं निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करनेवाला महात्मा 'कुलपति' कहा जाता था। वशिष्ठ, गौतम, विश्वामित्र, अत्रि, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, शरभंग और वाल्मीकि ऐसे ही कुलपति थे। यहाँ स्त्री-पुरुष सम दृष्टि से देखे जाते थे। ऊँच-नीच की भावना भी अधिक नहीं थी। शरभंग ऋषि की शिष्या शबरी का आतिथ्य भगवान राम ने किस स्नेह से स्वीकार किया था। कालिदास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



के काल तक यह व्यवस्था कहाँ तक चलती थी, यह नहीं कहा जा सकता। पर, आर्यों में इनके समय में जितना विद्याप्रचार था, इससे सिद्ध है कि यह व्यवस्था अभी बहुत कुछ कायम थी। उपर्युक्त कुलपतियों और आधुनिक चांसलरों एवं वाइस चांसलरों में कितना घोर अन्तर है। इस पर विचार करने से भी हृदय विकल हो उठता है।

पर्वत—हिमालय, मैनाक, मंदर, महेन्द्र, मलय, दर्दुर, सह्य, विंध्य, चित्रकूट, माल्यवान्, गोवर्द्धन, रामगिरि, आम्रकूट, नीचैःगिरि, कनखल और कैलाश इत्यादि का उल्लेख कालिदास के ग्रंथों में मिलता है। इनमें मलय, दर्दुर एवं सह्याद्रि दक्षिण में तथा मैनाक समुद्र में था। रामगिरि, आम्रकूट, चित्रकूट, तथा नीचैःगिरि, ये सभी मध्यप्रान्त में, मेघ-मार्ग में थे।

नदियाँ—कालिदास ने भागीरथी, मन्दाकिनी, महाकोशी, रेखा, वेगवती, सरयू, निर्विन्ध्या, शिप्रा, गभीरा, चर्मण्वती, सरस्वती, जाह्नवी, कपिशा, कावेरी, लौहित्य, कालिंदी, गोदावरी और मालिनी, आदि नदियों का उल्लेख किया है। जिस प्रकार नगरों का वर्णन करते हुए उज्जयिनी को कालिदास ने सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। उसी प्रकार गंगा-यमुना-संगम को भी उन्होंने अत्यन्त प्रधानता दी है। यदि उज्जैन को उन्होंने स्वर्ग का एक उज्ज्वल खंड कहा है तो गंगा-यमुना-संगम को इतना पवित्र बतलाया है कि वहाँ शरीर छोड़ने से तत्त्वज्ञान के बिना भी पुनर्जन्म नहीं हो सकता।

भिन्न-भिन्न प्रकार के पशु, पक्षियों, लता, वृक्षों और धान्यों के अत्यन्त मनोरम वर्णन कालिदास के ग्रंथों में भरे पड़े हैं। भारतीय ऋतुओं के काव्यों एवं नाटकों में जो भव्य-चित्र उन्होंने उपस्थित किए वे सर्वथा अद्वितीय हैं। भारत की विभूतियों का जितना गहरा अध्ययन इस महाकवि ने किया था उतना वाल्मीकि, व्यास एवं तुलसीदास को छोड़कर और कोई कवि नहीं कर सका। इनमें से तुलसी आध्यात्मिकता में बड़े होते हुए भी प्राकृतिक अध्ययन में कालिदास की उत्कृष्टता को नहीं पा सके। वास्तव में यही चार कवि हमारे विभिन्न कालों के प्रतिनिधि कवि या राष्ट्रीय कवि हैं। यदि आध्यात्मिकता, दार्शनिकता एवं भक्ति-भावना पर अधिक ध्यान न देकर विशुद्ध कवि-कर्म की दृष्टि से देखें तो इन सबों में कालिदास ही सर्वश्रेष्ठ ठहरते हैं। प्राचीनों की सम्मति भी यही है कि कालिदास ही सर्वश्रेष्ठ हैं। यथा—

पुरा कवीनां गणना प्रसंगे,
कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अद्यापि तत्तुल्य कवेरभावात्।
अनामिका सार्थवती बभूव ॥

प्राचीन काल में कवियों की गणना के समय कालिदास का नाम कनिष्ठिका पर आया; किंतु आज तक भी कोई और कवि उनके समान न होने से अनामिका का नाम सार्थक हो गया। निस्संदेह कालिदास एक अमर कवि हैं। उनका हृदय समग्र भारत का हृदय है, उनकी वाणी समग्र भारत की वाणी है और उनकी आत्मा समग्र भारत की आत्मा है। फिर पूरे भारतीय होते हुए भी वे सारे विश्व के हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# महाकाव्य

**कुमारसंभव**—कुमारसंभव महाकाव्य के सभी लक्षणों से अलंकृत है। कुमारसंभव का जो रूप आज प्राप्त होता है उसमें सत्रह सर्ग पाये जाते हैं। यद्यपि कुछ लोगों का विश्वास है कि यह महाकाव्य बाईस सर्गों का था। मल्लिनाथ ने इसके आठ सर्गों पर ही टीका लिखी है? प्राय: लोगों को विश्वास यही है कि इस महाकाव्य के केवल आठ सर्ग ही कालिदास के लिखे हुए हैं। उसके शेष सर्ग या तो कालिदास के किसी शिष्य ने लिखा है या किसी दूसरे लेखक ने। इसका नाम कुमारसंभव होने से सारे महाकाव्य का नाम सार्थक नहीं होता। कुछ लोगों के विचार से कुमार की उत्पत्ति की व्यंजना आठ सर्गों से हो जाती है। अतएव आठ सर्ग ही महाकाव्य के वास्तविक अंग हैं; किंतु वर्तमान महाकाव्य में कुमार का जन्म और उसका तारकासुर से संग्राम वर्णित है अतः इसे कुमारसंभव न कहकर तारकवध कहना अधिक उचित होता। नवें से सत्रहवें सर्ग तक की शैली प्रथम आठ सर्गों की शैली से भिन्न मालूम होती है, अतएव कुमारसंभव यथार्थ में प्रथम आठ सर्गों का ही होना चाहिए। इस काव्य का नायक देवता है और इसे धीरोदात्त नायक कह सकते हैं। इसके आठ सर्गों में शृंगार रस की ही प्रधानता है और करुण तथा शांत उसके सहायक हैं। तृतीय और पंचम विप्रलंभ शृंगार के उदाहरण हैं और चतुर्थ सर्ग करुण रस का। प्रत्येक सर्ग के अंत में आगे के सर्ग की कथा की सूचना है। प्रथम छः सर्गों में शिव के जिस चरित्र का कवि ने गौरव के साथ निर्वाह किया है उसे आठवें सर्ग में शृंगार वर्णन के उत्साह में कुछ विकृत-सा कर दिया है। कुमारसंभव की कथा संक्षेप में यों है—दक्ष की पुत्री सती अपने पिता के यज्ञ में शरीर त्यागकर हिमालय और मेना की पुत्री पार्वती के रूप में अवतीर्ण होती है। सती के जल जाने के बाद शिवजी कैलाश पर्वत पर समाधि लगाकर तपस्या करते हैं। इसी समय देवगण तारकासुर से पीड़ित होकर इन्द्र के साथ ब्रह्मा के पास जाते हैं। ब्रह्मा उन्हें शिव जी को समाधि से जगाकर पार्वती से विवाह संपन्न कराने की सलाह देते हैं; क्योंकि पार्वती और शिव से उत्पन्न कुमार ही तारकासुर का वध कर सकता है और कोई नहीं। देवगण अपने स्थान पर लौट आते हैं और इन्द्र काम को बुलाकर शिव को पार्वती में अनुरक्त कराने की आज्ञा देते हैं। काम अपनी पत्नी रति और सखा वसंत के साथ शिव के आश्रम में पहुँचता है। उसकी सारी कला वहाँ व्यर्थ-सी हो जाती हैं; किंतु इसी समय पार्वती जी जो अपने पिता की आज्ञा से शिवजी की पूजा कर रही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



थीं, वहाँ आ पहुँचती हैं। उनकी सहायता से काम शिव के हृदय में क्षणभर के लिये क्षोभ उत्पन्न करने में समर्थ होता है। इसी बीच में शिव के तीसरे नेत्र से अग्नि की ज्वाला निकलती है और काम वहीं जलकर भस्म हो जाता है। पार्वती हताश होकर घर लौट आती है और काम की पत्नी रति विलाप करने लगती है। जब काम के विरह में व्याकुल होकर रति चिता पर चढ़ना चाहती है तो आकाशवाणी होती है कि हे रति! तू जल मत, कृष्ण के पुत्र के रूप में तेरा पति तुझे मिलेगा। शारीरिक सौन्दर्य से अपने प्रियतम शिव को अपनी ओर आकृष्ट करने में असमर्थ होकर पार्वती पिता की आज्ञा से तपस्या करने लगती है। शिव ब्रह्मचारी के रूप में आकर उसके प्रेम की परीक्षा लेते हैं और उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट करते हैं। पीछे वे सप्तर्षियों को हिमालय के निकट भेजकर उससे विवाह का लग्न इत्यादि ठीक कराते हैं और समय पर बारात लेकर हिमालय के निवासस्थान पर जाते हैं एवं वहाँ विधिपूर्वक विवाह संपन्न होता है। नव-विवाहित दम्पती ब्रह्मा के चरणों में सिर झुकाते हैं एवं उनसे आशीर्वाद लेते हैं। एक महीने तक शिव हिमालय के वासस्थान औषधिप्रस्थ में रहते हैं। उसके पश्चात् अपनी पत्नी के साथ गन्धमादन पर्वत के कुंज में चले जाते हैं। वहाँ अपनी तपस्या के बल से मणि रत्नों से रचित मन्दिर में पार्वती के साथ दाम्पत्य-सुख का अनुभव करते हैं। यहाँ तक आठ सर्गों की कथा समाप्त हो जाती है। नवें से सत्रहवें सर्ग तक में कुमार का जन्म, उसकी शिक्षा-दीक्षा, तारकासुर के साथ संग्राम तथा उसका वध वर्णित है।

कालिदास ने रघुवंश में मानव-चरित्रों का वर्णन किया है। मेघदूत में मानव एवं देवों के बीच के यक्ष का वर्णन किया है, और कुमारसंभव में देवों के चरित्र का चित्रण किया है। फिर भी ये सभी पात्र मानवों के विचार और भावों से परिपूर्ण दिखलाये गये हैं। समग्र काव्य का दृश्य-स्थान हिमालय और उसका निम्न भू-भाग है। हिमालय को कवि ने देवतात्मा कहा है और जो कुछ कार्य वहाँ होते हैं वे अति मानुषी हैं। पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन अपूर्व है। दूसरे सर्ग में देवताओं ने जो ब्रह्मा की स्तुति की है उससे कालिदास का दर्शन सम्बन्धी पाण्डित्य सूचित होता है। तीसरे सर्ग में कवि ने वसन्त का जो सुन्दर वर्णन किया है उसमें अलौकिक काव्यात्मक सौन्दर्य है। चतुर्थ सर्ग में जो रति का विलाप है वह कालिदास के कारुण्य वर्णन की अद्‌भूत प्रवीणता सूचित करता है। ठीक इसी तरह का विलाप रघुवंश में भी मिलता है जो अज विलाप के नाम से विख्यात है। पंचम सर्ग में पार्वती और ब्रह्मचारी का संवाद भी बड़ा ही मनोहर है। छठें सर्ग में औषधिप्रस्थ का वर्णन महत्त्वपूर्ण है। सप्तम सर्ग में शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन बड़ा ही सजीव है। उसको पढ़कर विवाहित पाठक को अपने ही विवाह का स्मरण हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



आता है। आठवाँ सर्ग कालिदास की कविता का सार समझा जाता है और इससे काव्यालंकार सूत्र, सरस्वती कंठाभरण तथा अन्यान्य आलंकारिक ग्रन्थों में उदाहरण दिये गये हैं। निस्संदेह कालिदास ने सूर्यास्त, सन्ध्या, प्रदोष इत्यादि का जो वर्णन किया है उसमें एक-से-एक सुन्दर उपमाएँ और महान्-से-महान् कल्पनात्मक भाव चित्र हैं।

रघुवंशः—कालिदास का दूसरा महाकाव्य रघुवंश इस ढंग के महाकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इसमें महाकाव्य के सारे लक्षण पाये जाते हैं। यह उन्नीस सर्गों का है। इसमें रघु-वंश के उनतीस राजाओं का वर्णन है। इनमें दिलीप, रघु, अज, दसरथ, राम और कुश इनका चरित विशेष विस्तार के साथ वर्णित है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इसी महाकाव्य कों देखकर महाकाव्य के लक्षणों का निश्चय किया गया है। संक्षेप में महाकाव्य में निम्नलिखित गुण होना चाहिए :—उसकी कथा सर्गों में बँटी होनी चाहिए। उसका नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त कोई देवता या किसी अच्छे वंश का क्षत्रिय होना चाहिए, अथवा उसमें किसी एक ही वंश के राजाओं का या बहुत से वंशों के राजाओं का वर्णन होना चाहिए। इसका मुख्य रस शृंगार, वीर या शांत इन तीनों में से एक होना चाहिए। अन्यान्य रस उसके अंग होकर आवें और नाटक की सभी संधियाँ उसमें हों। उसकी कथा इतिहास से ली गयी हो या किसी सज्जन से सम्बन्ध रखनेवाली काल्पनिक हो। उसमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों का वर्णन होना चाहिए और इन चारों में से कोई उसका फल हो। काव्य का प्रारंभ आशीर्वाद, नमस्कार या वस्तुनिर्देश से होना चाहिए। कहीं पर खलों की निन्दा होनी चाहिये और कहीं सज्जनों का गुणकीर्त्तन। उसमें आठ से अधिक सर्ग होने चाहिये। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द के पद्य हों केवल उनके अन्त में दूसरा कोई छंद रह सकता है। ये सर्ग न बहुत बड़े हों न बहुत छोटे। कोई-कोई सर्ग भिन्न-भिन्न छन्दों में लिखा जाना चाहिए। सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिये। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, वन, समुद्र, मुनि, स्वर्ग, नगर, मार्ग, नायक-नायिकाओं का संभोग तथा विरह, रणप्रयाण, विवाह, मंत्र, पुत्रोत्पत्ति, इन सब विषयों का सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। कवि के, वृत्त के, नायक के, अथवा किसी अन्य पात्र के नाम पर सर्गों का नाम रहना चाहिये।

रघुवंश सर्गों में विभाजित तो है ही इसमें एक ही वंश के अनेक राजाओं का वर्णन है जिनमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम ये सब धीरोदात्त नायक हैं। प्रधानता वीर रस की है। इस काव्य का प्रायः प्रत्येक प्रमुखनायक वीर पुरुष ही है। वीर रस के उदाहरणों में इन्द्र और रघु का युद्ध, रघु दिग्विजय, अज के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



साथ अन्यान्य राजाओं का युद्ध, और राम रावण युद्ध हैं। अन्यान्य रसों में सम्भोग शृंगार के लिये कुश का जल-विहार-वर्णन, विप्रलंभ शृंगार के लिए सीता वनवास, करुण रस के लिए अज-विलाप, और रौद्र रस के लिये राम-परशुराम संवाद उदाहरण बतलाये जा सकते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य रसों के उदाहरण भी ढूँढ़ कर दिये जा सकते हैं। महाकाव्य में जिन बातों का वर्णन होना चाहिये, प्रायः उन सभी का रघुवंश में यथा प्रसंग वर्णन है। अन्यान्य महाकाव्यों में कथावस्तु छोटी होने के कारण इन विषयों के वर्णन असंगत से प्रतीत होते हैं; किन्तु रघुवंश का विषय इतना विस्तृत है कि ये सभी बातें उसमें स्वाभाविक-सी प्रतीत होती हैं। इसके प्रत्येक सर्ग में प्रायः एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है। सर्ग के अंत में छन्द भिन्न है तथा आगामी सर्ग की कथा की सूचना भी है। रस और भाव में उत्कर्ष लानेवाले अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुआ है। इसमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सब कुछ प्राप्त करानेवाले उपदेश सन्निहित हैं। मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ मोक्ष इस काव्य का फल है। वैदिक भावना के अनुसार मानव जीवन की पूर्णता रघु के आदर्श जीवन के रूप में इसमें चित्रित है। इस प्रकार यह एक सर्वांगपूर्ण महाकाव्य है। इस काव्य का विषय संक्षेप में यों है—सन्तान हीन दिलीप का अपनी पत्नी के साथ वशिष्ठ के आश्रम में जाना, उनके उपदेश से नंदिनी की सेवा और पुत्र-प्राप्ति। रघु का इन्द्र से युद्ध, उनका समग्र भारत पर विजय प्राप्त करना, सुशासन और अंत में योग द्वारा शरीर त्याग देना। अज का स्वयंवर में इंदुमती से विवाह, मार्ग में सम्मिलित राजाओं की वाहिनी को परास्त करना और पत्नीवियोग से मृत्यु। दशरथ का राज्यारोहण, दिग्विजय, पुत्रप्राप्ति के लिए यज्ञ करना, इत्यादि सारी रामायण की कथा जो रामचन्द्र के स्वर्गारोहण तक चली जाती है। कुश का राजधानी परिवर्त्तन, स्वप्न में अयोध्या-दर्शन, तथा जलक्रीड़ा और कुमुद्वती से विवाह। अवशिष्ट राजाओं का संक्षिप्त वर्णन।

इस महाकाव्य में कवि ने अपनी कल्पना से कई मनोहर घटनाओं की सृष्टि की है, जो केवल सुन्दर ही नहीं बल्कि उपदेशप्रद भी हैं। उदाहरणार्थ नंदिनी द्वारा दिलीप की परीक्षा, कौत्स का रघु के पास दक्षिणा के लिये स्वर्ण-याचना, स्वप्न में कुश के पास अयोध्या का आना और अपनी करुण दशा का चित्रण इत्यादि।

चरित्रचित्रण की दृष्टि से यह काव्य अत्यन्त उच्चकोटि का है। सब प्रकार के पात्रों का अपनी-अपनी प्रकृति के अनुकूल चरित्र-चित्रण किया गया है। सात्त्विक, राजस और तामस, सब प्रकार के चरित्र इस काव्य में आ गये हैं। आर्य संस्कृति के साथ कालिदास का स्नेह इस काव्य से पूर्णतया अभिव्यक्त होता है। परित्यक्ता सीता द्वारा राम के पास भेजे गये संदेश से आर्य पतिव्रता का परिपूर्ण आदर्श व्यक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



होता है। आश्रमों, ऋषियों, ब्राह्मणों और गौओं के प्रति कालिदास का भाव बड़ा ही उत्कृष्ट है। दर्शन की उत्तम से उत्तम बातें अपने सरस रूप में इस काव्य में गुम्फित हैं।

रघुवंश से कवि की अद्भुत वर्णन क्षमता प्रकट होती है। दृश्य चित्रण में या घटना वर्णन में कालिदास पूर्णतया सिद्धहस्त हैं। दृश्य चित्रण में वशिष्ठ के आश्रम का वर्णन, इंदुमती-स्वयंवर वर्णन, उजड़ी अयोध्या का चित्रण तथा पांचवें सर्ग के अन्त में प्रातः कालीन छटा का वर्णन उनकी अलौकिक क्षमता के उदाहरण हैं। घटना-वर्णन में ग्यारहवें और बारहवें सर्ग उनके अपूर्व कौशल के उदाहरण हैं। इन सर्गों में उन्हें रामायण की एक बड़ी घटना का संक्षिप्त पर सरस वर्णन देना था। इन सर्गों में कवि जिस प्रकार एक घटना से दूसरी घटना पर उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास नामक अलंकारों के सहारे बढ़ता चला जाता है वह उसी के अनुरूप है। रामायण की सारी घटना में से सरस-से-सरस घटनाओं का वर्णन और नीरस घटनाओं की सूचना कवि की भावुकता का परिचायक है।

राम के लंका से चलकर अयोध्या तक पुष्पक विमान पर चढ़कर आने का तथा सीता वनवास की घटना का वर्णन बड़ा ही कवित्वपूर्ण है। स्वयम्वर में प्रत्येक राजा का सुंदर वर्णन तथा इंदुमती का किसी-न-किसी बहाने से उसका परित्याग कालिदास के औचित्य और वर्णन-चातुर्य के निदर्शन हैं। रघुवंश की भाषा और शैली वैदर्भी रीति के सौन्दर्य और उस पर कालिदास के अधिकार की सूचक है। भाषा में जो सरलता और साधुता है उससे कालिदास का भाषा पर पूर्ण अधिकार सूचित होता है। उन्होंने प्रधानतया अर्थालंकारों की ही योजना की है, और वह भी अत्यंत सुंदर एवं उचित रूप में। अनुप्रास और यमक की बहार भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है, विशेषतः नवम सर्ग में। अपनी रोचकता, उपदेशपूर्णता, काव्यात्मक सौन्दर्य, तथा मानव जीवन की महत्ता के कारण रघुवंश भारतीय विद्वानों और साहित्य-रसिकों के लिए सदैव से आनंद का समुद्र रहा है, और इसके रचयिता कवि कालिदास का स्थान वाल्मीकि और व्यास के बाद ही माना गया है। यही नहीं जो लोग वाल्मीकि और व्यास को ऋषि मानते हैं वे तो कालिदास को कवियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हैं।

**बुद्ध-चरित**—संस्कृत साहित्य में बौद्ध-धर्म-संबंधी काव्य ग्रन्थों में महाकवि अश्वघोष के 'बुद्ध-चरित' और 'सौन्दरनन्द' नामक महाकाव्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। अश्वघोष का समय कनिष्क का शासन-काल बतलाया जाता है; किन्तु इस सम्बन्ध में सन्देह भी उत्पन्न होता है। अश्वघोष का एक ग्रन्थ सुत्रालंकार भी बतलाया जाता है जिसमें कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जिनसे पता चलता है कि कनिष्क का समय अश्वघोष के समय से पहले था। एक ऐसा अभिलेख भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मिला है जो कनिष्क के समय का बतलाया जाता है और जिसमें अश्वघोष राज के नाम से किसी व्यक्ति का उल्लेख मिलता है और लोग उसी को अश्वघोष मान लेते हैं; किन्तु इन कठिनाइयों पर ध्यान न देकर भी यदि हम अश्वघोष को कनिष्क का समकालीन मान लें तो उसका समय १०० ईस्वी के आसपास मालूम होता है। सौन्दरनन्द की 'पुष्पिका' से यह पता चलता है कि अश्वघोष साकेत (अयोध्या) का रहनेवाला था। वह ब्राह्मण था। उसकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। 'आचार्य', 'भदंत', 'महावादी' तथा 'महाकवि' की उपाधि से वह अलंकृत किया गया था। इत्सिंग, जो भारतवर्ष में ६७१ से ६९५ ई० तक भ्रमण करता रहा, अश्वघोष को एक आचार्य और महाकवि बतलाता है और उसके अनुसार उसके भ्रमणकाल में अश्वघोष के ग्रन्थों का बहुत आदर और प्रचार था। उपर्युक्त तीन ग्रंथों के अतिरिक्त महायान शद्धोत्पाद और वज्रसूची भी उसी के ग्रन्थ बतलाए जाते हैं; किंतु इस बात की प्रामाणिकता निःसंदिग्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त 'गराडीस्तोत्रगाथा तथा कल्पनामराडी टीका आदि ग्रन्थ भी उसके लिखे हुए बतलाए जाते हैं। उसके कुछ नाटकमध्य एशिया में पाये गये हैं पर वे सब अधूरे हैं। अतः नाटककार के रूप में उसकी रचना की निपुणता नहीं बतलायी जा सकती

अश्वघोष एक बहुज्ञ और बहुश्रुत व्यक्ति था। उसने महाभारत और रामायण का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त सांख्य और वैशेषिक दर्शनों से उसका पूर्ण परिचय है। जैन-धर्म के तत्त्वों और दर्शन से भी उसका परिचय है पर उसकी पूर्ण भक्ति बुद्ध भगवान में है। सौंदरनंद बुद्धचरित से पहले लिखा गया है। वास्तव में एक धर्मप्रचारक, दार्शनिक और बौद्ध-भक्त था। उसमें कविता करने की शक्ति भी थी और अच्छी थी; किंतु उसे कालिदास की कोटि में रखना दुस्साहस-मात्र है। उसने अपने अंतःकरण की प्रेरणा से विशुद्ध काव्य के रूप में अपने महाकाव्य नहीं लिखे। उसके काव्य प्रचारार्थ लिखे गये हैं। इस बात की स्पष्ट घोषणा उसने सौंदरनंद के अठारहवें सर्ग के अतिम श्लोकों अर्थात् श्लोक संख्या ६३-६४ में की है। उसने वहाँ स्पष्ट रूप से कहा है कि सौंदरनंद महाकाव्य की रचना चित्त की शान्ति के लिए की गयी है, काव्यानंद के लिए नहीं। जिस तरह कटु औषध को पिलाने के लिए उसे मधु के साथ मिला देना आवश्यक होती है, उसी तरह कठोर मोक्ष-मार्ग का उपदेश काव्यात्मक रूप में मधुर बनाकर रक्खा गया है।

अश्वघोष की कविता कई स्थानों में कालिदास की कविता से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इसलिए बहुत से विदेशी तथा कुछ देशी आलोचकों ने कालिदास को अश्वघोष के पीछे का माना है और उनके अनुसार कालिदास ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अश्वघोष का अनुसरण किया है; किन्तु बहुत से भारतीय लेखक तथा हमारी अनुश्रुति कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० बतलाती है। ऐसी परिस्थिति में उनलोगों का कथन सत्य नहीं प्रतीत होता। अश्वघोष कवि से अधिक दार्शनिक था। इसलिए उसकी शैली की त्रुटि उसकी असमर्थता के कारण है, कालिदास से प्राचीन होने के कारण नहीं। यदि पीछे होने ही से किसी काव्य की नकल सफलता पूर्वक की जा सकती है तो मेघदूत की नकल पर जितने दूत काव्य लिखे गये हैं, मेघदूत से सुन्दर होते। कालिदास के एक आलोचक प्रो० जी० सी० झाला ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है The wind of genius bloweth where—and when—it listeth. There is nothing improbable in Kalidas's superior works having supplied the inspiration to Ashwaghosh, who, however, could not equal the great master. यथार्थ में अश्वघोष कालिदास के पीछे के हैं। उनकी कविता, छंद, अलंकार और व्याकरण की दृष्टि से कालिदास से अधिक भारवि के समीप मालूम होती है। अश्वघोष ने शब्दालंकारों का बहुत अधिक प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पर उसने अंत्यानुप्रास मिलाने की भी चेष्टा की है जो संस्कृत साहित्य में बहुत बाद प्रचलित हुआ है।

बुद्धचरित जीवन के एक महान् लक्ष्य को पूरा करने के लिए लिखा गया है। अभी बुद्धचरित की जो प्रति मिलती है उसमें १७ सर्ग हैं। उनमें से केवल १३ सर्ग ही उक्त कवि के लिखे हुए हैं। शेष सर्ग लगभग १०० वर्ष पूर्व अमृतानन्द नामक किसी नेपाली पंडित के लिखे हुए हैं; किन्तु सन् ४१४ से ४२१ के बीच में बुद्धचरित का जो चीनी भाषा में अनुवाद किया गया था। उसमें तथा बुद्धचरित के तिब्बती अनुवाद में २८ सर्ग बतलाये गये हैं।

अश्वघोष ने बुद्धचरित की कथा वस्तु कहाँ से ली, यह कहना कठिन है; क्योंकि उस समय ललित विस्तार था या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

बुद्धचरित्त के प्रथम सर्ग में बुद्ध के जन्म और उनके महत्त्व का वर्णन हुआ है। दूसरे सर्ग में शुद्धोदन के द्वारा उन्हें अन्तःपुर में रखकर सभी सांसारिक भोगों में आसक्त रखने की चेष्टा का वर्णन है। इसी सर्ग से यह पता चलता है कि बुद्ध का विवाह यशोधरा से हो जाता है। और उसे एक पुत्र राहुल उत्पन्न होता है। तीसरे सर्ग में वृद्ध, व्याधिग्रस्त और मरे हुए मनुष्य को देखकर बुद्ध के हृदय में संवेग उत्पन्न होने की चर्चा है। चौथे सर्ग में शुद्धोदन के पुरोहित की आज्ञा से सुन्दरियों का उन्हें कामासक्त बनाये रखने के प्रयत्न की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चर्चा है। पाँचवें सर्ग में अभिनिष्क्रमण का मनोहर वर्णन है। छठे सर्ग में छन्दक के लौटने और सातवें सर्ग में बुद्ध के तपोवन-प्रवेश का उल्लेख है। आठवें सर्ग में शुद्धोदन के अन्तःपुर के स्त्री-पुरुषों के करुणा पूर्ण विलाप का चित्रण है। नवें सर्ग में शुद्धोदन के मन्त्री और पुरोहित का बुद्ध के साथ सम्वाद वर्णित है। दशवें सर्ग में बुद्ध के राजगृह-गमन और ग्यारहवें सर्ग में मगधेश्वर ( संभवतः बिम्बिसार से उनके वार्त्तालाप का वर्ण है। बारहवें सर्ग में अराड नामक ऋषि से बुद्ध की भेंट और उनसे शिक्षा-ग्रहण की बात कही गई है। तेरहवें सर्ग में भगवान् बुद्ध की मार-विजय की चर्चा है। चौदहवें सर्ग में बौद्ध-धर्म की शिक्षाओं का समावेश है। पन्द्रहवें और सोलहवें सर्ग में धर्मचक्र प्रवर्त्तन की चर्चा है। ( १७ वें सर्ग में बुद्ध का निर्वाण वर्णित है )।

यदि साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से देखा जाय तो इसे महाकाव्य कहा जा सकता हैं। समग्र काव्य में शान्तरस प्रधान है। शृङ्गार और करुण उसके अंग बनकर आये हैं। 'शैली वैदर्भी है। नगर, पर्वत, वन, निर्झर इत्यादि का पर्याप्त वर्णन है। भगवान् बुद्ध उच्च कुल सम्भूत धीरोदात्त नायक हैं। विवाह और कुमारोत्पत्ति का भी वर्णन है; किन्तु अत्यन्त संक्षिप्त है। भाषा सरल और बहुत-कुछ अलंकृत भी है; किन्तु कालिदास के काव्यों की-सी न उसमें सरसता है और न भाषा का परिष्कार ही है। कालिदास के काव्यों में जीवन के महान् उद्देश्य संसार के भिन्न-भिन्न पहलुओं के साथ चित्रित किए गये हैं। अश्वघोष ने भी अपने काव्य का लक्ष्य निर्वाण-प्राप्ति बनाई है; किन्तु उसका उद्देश्य उसके काव्यों में स्पष्ट रूप से झलकता रहता है। कालिदास के काव्यों में उनका उद्देश्य बहुत-कुछ गूढ़ रहता है। अतः उनके काव्य अधिक मनोरम और सरल हो सके हैं।

**सौन्दरनन्द :**—सौन्दरनन्द अश्वघोष का प्रथम महाकाव्य है। इस काव्य का विषय नन्द और सुन्दरी की कहानी है जो महावाग और निदान कथा में कही गयी है। अश्वघोष ने इसे एक सुन्दर महाकाव्य का रूप दे दिया है। उसके काव्य का प्रारंभ कपिलवस्तु नामक नगरी के निर्माण से होता है। उसके बाद वह राजा शुद्धोदन के वैयक्तिक गुणों तथा सुशासन का वर्णन करता है। आगे चलकर सर्वार्थ सिद्ध अर्थात् बुद्ध तथा उनके सौतेले भाई नन्द के जन्म का वर्णन किया गया है। तीसरे सर्ग में बुद्ध का पूरा-पूरा वर्णन दिया गया है। चौथे सर्ग में सुन्दरी के सौन्दर्य और नन्द के साथ उसके विवाह और प्रेम का वर्णन है। इसी सर्ग में भगवान् बुद्ध का नन्द के दरवाजे पर भिक्षा के लिए आना और उनका वहाँ से लौटना वर्णित है। पाँचवें सर्ग में नन्द को बुद्ध से भेंट होती है और बुद्ध उसके न चाहने पर भी उसे परिव्राजक बना डालते हैं। छठे सर्ग में सुन्दरी के विलाप का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



करुणापूर्ण वर्णन है। सातवें सर्ग में नन्द के मन का द्वन्द्व चित्रित किया गया है। वह परिव्राजक होकर भी फिर गृहस्थाश्रम में लौट जाना चाहता है। आठवें सर्ग में कोई श्रमण स्त्रियों के दुर्गुणों की चर्चा कर उसे विरक्त करने की चेष्टा करता है। नवें सर्ग में स्त्रियों की अपवित्रता और विषय-वासना की गहरी निन्दा की गयी है पर इससे नन्द का मन सुन्दरी के सौन्दर्य से विरक्त नहीं हो सका। तब वह श्रमण नन्द के मोह की चर्चा भगवान् बुद्ध से कर देता है। भगवान् बुद्ध नन्द को लेकर उसी प्रकार स्वर्ग की तरफ चलते हैं जिस तरह अभिमन्यु के वध से निकल और मोहग्रस्त अर्जुन को श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्ग की तरफ ले गये थे। स्वर्ग की ओर बढ़ते हुए भगवान् बुद्ध नन्द को हिमालय पर ले जाकर किसी बन्दरी को दिखाकर उससे पूछते हैं कि हे नन्द! यह एक नेत्रवाली बन्दरी तुम्हें सुन्दर मालूम देती है या तुम्हारी पत्नी। नन्द अपनी स्त्री को उस बन्दरी से अधिक सुन्दरी बतलाता है। यह सुनकर बुद्ध उसे इन्द्र के नन्दन-कानन में ले जाते हैं और वहाँ पर अनेक सुन्दर अप्सराओं का दर्शन कराते हैं। नन्द उन सुन्दरियों को देखकर उनपर मुग्ध हो जाता है और तब भगवान् बुद्ध उसे मर्त्यलोक में चलकर इन अप्सराओं को प्राप्त करने के लिए तपस्या करने का उपदेश देते हैं। ग्यारहवें सर्ग में आनन्द नामक बुद्ध का शिष्य उसे यह समझाता है कि अप्सराएँ भी काल के वशीभूत हैं और स्वर्गनिवासियों को भी पृथ्वी पर लौटकर आना पड़ता है। इसलिए निर्वाण के लिए प्रयत्न करना उत्तम होगा। आनन्द के इस उपदेश से नन्द लज्जित हो जाता है और वह निर्वाण के लिए प्रयत्न करने का दृढ़ निश्चय कर लेता है। इसके बाद वह बुद्ध भगवान् के पास जाता है और उनसे निर्वाण प्राप्त करने का उपाय पूछता है। तेरहवें से अठारहवें सर्ग के बीच में शील की प्राप्ति, इन्द्रियों पर विजय और निर्वाण-प्राप्ति के उपाय इत्यादि का वर्णन होता है। इस उपदेश को सुनकर नन्द अपने ही लिए नहीं, बल्कि सभी लोगों के कल्याण के लिए निर्वाण प्राप्त की चेष्टा करता है।

सौन्दरनन्द शास्त्रीय दृष्टि से तो महाकाव्य कहा जा सकता है; क्योंकि इसमें आठ से अधिक सर्ग हैं, नन्द एक धीरललित नायक और सुन्दरी एक अनुरक्ता नवोढ़ा नायिका है। इसमें जीवन के द्वन्द्वों का चित्रण कर वासनात्मक जगत् से क्रमशः मोक्ष की ओर अग्रसर होने के मार्ग बतलाये गये हैं; किंतु अधिकांश में यह काव्य के बदले एक उपदेशपूर्ण बौद्ध-धर्म का धर्मशास्त्र है। इसमें कथा का उतना ही अंश काव्यात्मक रूप में उपस्थित किया गया है जितने से कवि के अभिप्राय की सिद्धि हो सके। कवि का अभिप्राय है बौद्ध धर्म की व्याख्या और उसकी ओर सामान्य जनता को आकृष्ट करना। यह बात वह आठवें सर्ग से अठारहवें सर्ग तक बराबर करता चला गया है। इन दश-ग्यारह सर्गों के नामों से ही यह प्रकट होता है कि यह ग्रंथ बौद्ध-धर्म के उपदेशों का संग्रह है, सांसारिक मानव-जीवन की कोई महती व्याख्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



नहीं। अतः इसे महाकाव्य कहने में कुछ संकोच-सा मालूम होता है; किंतु कवि ने जो कुछ वर्णन किया है, वह सरस, स्वाभाविक और मनोहर है। धर्म की व्याख्या भी उसने बहुत-कुछ मनोरंजक ढंग से की है। अतएव यह एक धार्मिक खण्ड काव्य कहा जा सकता है; किन्तु अश्वघोष जैसे महाकवि की रचना होने के कारण इसे भी महाकाव्य ही मान लिया गया है। इसीलिए इसकी पुष्पिका में इसे महाकाव्य ही कहा गया है।

**किरातार्जुनीय**—इस महाकाव्य के रचयिता महाकवि भारवि हैं। हमें इनके वंश और जीवन-वृत्त का कुछ भी पता नहीं है, केवल इतना ही मालूम है कि ये सन् ६३४ ई० के पहले के हैं; क्योंकि इनकी Ihole के अभिलेख में चर्चा की गयी है। काशिका वृत्ति में भी इनकी चर्चा है। इनके ऊपर कालिदास का प्रभाव स्पष्ट है और इधर माघ कवि ने इनका पूरा-पूरा अनुकरण किया है। बाणभट्ट ने इनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है। इससे यह मालूम होता है कि बाण के ये बहुत पहले के नहीं हैं। अतएव इनको ५०० ई० के लगभग रख सकते हैं। इनका किरातार्जुनीय महाभारत के वन पर्व की एक कथा पर अवलंबित है। यह कथा छब्बीसवें अध्याय से छियालिसवें अध्याय तक कही गयी है। इस कथा के अनुसार द्वैतवन में पहुँचने पर द्रौपदी और भीम ने युधिष्ठिर के जुए में हारने से कौरवों से की गयी प्रतिज्ञा तोड़कर उनसे युद्ध करने का अनुरोध किया है; किंतु युधिष्ठिर ने अपना धर्म त्यागना स्वीकार नहीं किया। इसी बीच में उनके पास महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास आते हैं और राजा युधिष्ठिर से अर्जुन को तपस्या करने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर भेजने का अनुरोध करते हैं। अर्जुन युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर अपने सब भाइयों और द्रौपदी से विदा लेकर हिमालय पर्वत श्रेणी में स्थित इन्द्रकील पर्वत के लिए प्रस्थान कर देते हैं। इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन भगवान् शंकर की आराधना करते हैं और उनसे पाशुपत अस्त्र लेना चाहते हैं। अर्जुन की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर किरात देश में वहाँ आते हैं और अर्जुन से युद्ध करके उसके पराक्रम से प्रसन्न हो जाते हैं और अपना पाशुपत अस्त्र उसे प्रदान करते हैं। अर्जुन वहाँ अन्यान्य देवताओं के भी दर्शन करते हैं और उनसे तरह-तरह के अस्त्र प्राप्त करते हैं। फिर अर्जुन इन्द्र के साथ इन्द्रलोक में जाते हैं और अपने रूप पर आसक्त उर्वशी की उपेक्षा कर देते हैं।

इस महाकवि ने अपने समग्र काव्य में इतना ही कथानक रक्खा है। उसने अपनी रुचि के अनुकूल यत्र-तत्र घटाया और बढ़ाया भी है। कवि ने अपनी कथा को कलात्मक रूप देने के लिए युधिष्ठिर के द्वारा दुर्योधन का शासन देखने के लिए एक गुप्तचर किरात भेजने की कल्पना की है। काव्य का प्रारम्भ इसी गुप्तचर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



के भाषण से होता है। संक्षेप में, इस काव्य का कथानक यह है—

सर्ग १ युधिष्ठिर के भेजे हुए दूत का लौट आना और दुर्योधन के शासन-नैपुण्य का वर्णन करना। दूत का सत्कृत होकर अपने स्थान पर जाना। भीम के सम्मुख युधिष्ठिर का द्रौपदी से दूत के द्वारा दिए गए समाचार का कथन। द्रौपदी का युधिष्ठिर से उत्तेजनापूर्ण भाषण।

सर्ग २ भीम का युधिष्ठिर से कौरवों के साथ युद्ध करने की प्रार्थना। युधिष्ठिर का भीम को समझाना। उसी समय व्यास जी का आना और उनका युधिष्ठिर द्वारा सत्कार।

सर्ग ३ युधिष्ठिर-व्यास-सम्वाद। व्यास का अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिए इन्द्रकीले पर्वत पर जाने का उपदेश। व्यास के चले जाने पर अर्जुन का उक्त मुनि के द्वारा भेजे हुए यक्ष के साथ तपस्या करने के लिए इन्द्रकील पर्वत के लिए प्रस्थान।

सर्ग ४ कवि का शरद् वर्णन, यक्ष का शरद्वर्णन और अर्जुन तथा यक्ष का हिमाचल के निकट पहुँचा।

सर्ग ५ हिमालय का वर्णन। हिमालय में पहुँचते ही यक्ष का अपने घर चला जाना।

सर्ग ६ इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का चढ़ना। उनकी उग्र तपस्या का वर्णन। अर्जुन की तपस्या सुनकर इन्द्र का उनकी तपस्या भंग करने के लिए अप्सरायें भेजना।

सर्ग ७ स्वर्ग से इन्द्रकील पर्वत पर सेना के साथ अप्सराओं का आना।

सर्ग ८ अप्सराओं और गंधर्वों की पुष्प-संचय-क्रीड़ा एवं जल-विहार का वर्णन।

सर्ग ९ संध्या, चन्द्रोदय, रति-क्रीड़ा, मद्यपान, सुरत तथा प्रभात का वर्णन।

सर्ग १० अर्जुन की अप्सराओं द्वारा परीक्षा। भिन्न-भिन्न ऋतुओं का वर्णन तथा अप्सराओं के सारे प्रयत्नों का विफल होना।

सर्ग ११ इन्द्र का ऋषि-वेष में अर्जुन के पास आना और प्रत्यक्ष होकर उनको शिवाराधन का उपदेश।

सर्ग १२ अर्जुन की विकट तपस्या। उनकी तपस्या से द्वेष करता हुआ मूक दानव का वराह रूप में अर्जुन को मारने के लिए आना। किरातवेशी शिव का सेना के साथ मूक दानव से अर्जुन की रक्षा करने के लिए आना।

सर्ग १३ अर्जुन का वराह को देखकर तर्क करना और उसके ऊपर शिव के साथ-ही-साथ बाण-प्रहार। अर्जुन का वराह के शरीर से अपना बाण निकालने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



का प्रयत्न। भिल्लवेश-धारी शिवगण का उनको रोकना। अर्जुन के न मानने पर भिल्ल का शिव से कहना।

सर्ग १४ शिव की सेना का अर्जुन से युद्ध।

सर्ग १५ पुनः युद्ध-वर्णन।

सर्ग १६ शिव और अर्जुन का शस्त्र-युद्ध।

सर्ग १७ शिव की सेना तथा शिव से युद्ध।

सर्ग १८ शिव और अर्जुन का मल्ल-युद्ध। अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न होकर शंकर का अपना स्वरूप दिखलाना और अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान करना।

इन अठारह सर्गों में कवि ने महाभारत के इन बीस अध्यायों की कथा कही है। कथावस्तु में अन्तर तो बहुत कम हुआ है। किरात गुप्तचर की कल्पना की बात पहले ही कही जा चुकी है। सातवें सर्ग से लेकर ग्यारहवें सर्ग तक की कथा कवि-कल्पित है। अर्जुन के इन्द्रलोक-गमन और उर्वशी-प्रत्याख्यान का वर्णन कवि ने अपने उद्देश्य के अनुकूल न होने से त्याग दिया है। यद्यपि कथावस्तु में बहुत कुछ साम्य है; फिर भी कवि का विषय-विवेचन और भाषा-शैली सर्वथा नवीन है। संवाद-वर्णन में कवि का कौशल अपूर्व है, इसके संवादों में संक्षिप्तता शिष्टता और अर्थ-गांभीर्य का पूर्ण समावेश है। जब एक वक्ता बोलने लगता है तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे अब दूसरे को कुछ कहने का अवकाश ही नहीं है; किन्तु जब दूसरा पहले का उत्तर देने लगता है तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे इसी का कहना ठीक हो। वाल्मीकीय रामायण महाभारत और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस इत्यादि कुछ काव्यों को छोड़कर भारतीय साहित्य में इस कोटि के संवाद अन्यत्र नहीं मिलते।

भारवि एक उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। इनके श्लोकों में समाजनीति, लोकनीति और राजनीति की स्वयंसिद्ध उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। साथ ही भाषा, भाव, छन्द, रस और अलंकारों पर इनका पूरा-पूरा अधिकार है। इस काव्य का नायक चन्द्रकुल संभूत वीर अर्जुन है। उसके उत्कर्ष के लिए प्रतिनायक के रूप में किरातवेशधारी स्वयं शिव की कल्पना की गयी है। इसका प्रधान रस वीर है जिसका शृंगार और अद्भुत इत्यादि रस सहायक बनकर आये हैं। इसमें बन, पर्वत, नदी और ऋतुओं का बड़ा ही मनोहर और हृदयग्राही वर्णन है। इस काव्य का फल दिव्य अस्त्र की प्राप्ति है। भारवि की वर्णनशैली अपूर्व है। शरद् ऋतु का, पर्वतों का, नदियों का, वृक्षों का, अर्जुन की तपस्या का तथा युद्ध का इन्होंने जितना विस्मयकारी वर्णन किया है उतना कोई दूसरा कवि नहीं कर सका है। इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में उन्होंने काव्य-विषयों के अनुकूल छंदों की योजना की है। इनकी कविता के भाव, भाषा, छंद और शैली सबों में पूर्ण सामंजस्य मिलता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



है। कुछ विदेशी आलोचक इनकी शैली से परिचित न होने के कारण इनकी पूरी-पूरी प्रशंसा नहीं करते। कुछ श्लोकों में शब्दालंकारों और चित्र काव्यों की रचना करने के कारण विदेशी आलोचकों ने इनकी निंदा की है—Bharvi, however is guilty of errors of taste from which Kalidas is free. Specially in Cants. XV, he sets himself to try toursdeforce of the most foolist kind, redolent of the excesses of the Alexandrian poets. (kieth's History of Sanskrit Literature, Page 114.) इन महाशयों को भारतीय काव्य-पद्धति के मनोविनोद का ज्ञान नहीं था। यद्यपि इस तरह के खिलवाड़ काव्य के लिए आवश्यक नहीं हैं फिर भी उससे कवियों के भाषाधिकार की सूचना तो अवश्य मिलती है और ऐसे पद्य दो-ही चार हैं, अधिक नहीं। अतएव इन थोड़े से पद्यों के कारण किसी महाकवि के संबंध में इस तरह की बातें करना अनर्गल प्रलाप के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

**भट्टिकाव्य** :—महाकवि भट्टि का महाकाव्य रामचरित या रावणवध है; किन्तु सर्वसाधारण में यह भट्टिकाव्य के नाम से ही प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ का प्रधान उद्देश्य है व्याकरण और काव्यशास्त्र के छात्रों को आसानी से उक्त विषयों का ज्ञान प्रदान करना। इसका लेखक एक कट्टर वैष्णव और रामभक्त प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ के अंतिम अध्याय की पुष्पिका में उसे महावैयाकरण भट्टि कहा गया है। यथार्थ में वह महान् वैयाकरण है भी। वैयाकरण ही नहीं, वह अलंकारशास्त्र का पूरा-पूरा मर्मज्ञ और लौकिक तथा वैदिक संस्कृत साहित्य का महान् वैदिक पण्डित है। संस्कृत और प्राकृत, दोनों ही भाषाओं पर उसका असाधारण अधिकार है। यहाँ तक कि एक समग्र सर्ग ही उसने ऐसी भाषा में लिखा है जो संस्कृत भी है और प्राकृत भी। उसका इन भाषाओं पर इतना प्रगाढ़ अधिकार है कि उसे देखकर विस्मित रह जाना पड़ जाता है। अपने बाईस सर्गों के महाकाव्य में उसने चार काण्ड ऐसे हैं। वे रखे हैं—प्रकीर्ण, अधिकार, प्रसन्न और तिङ्। प्रथम चार सर्गों में भिन्न-भिन्न विषयों के विशेष सूत्रों के उदाहरण उसने उपस्थित किये है, इसलिए उन्हें प्रकीर्ण काण्ड के भीतर रखा है। पाचवें से नवें काण्ड तक उसने सामान्य सूत्रों के उदाहरण रक्खे हैं, अतः उन सर्गों को अधिकार काण्ड कहा है। दशवें से तेरहवें सर्ग तक प्रसन्नकाण्ड है जिनमें अलंकारों और गुणों के उदाहरण हैं। तेरहवाँ सर्ग समूचा ऐसी भाषा में लिखा है जो संस्कृत और प्राकृत दोनों ही हैं। चौदहवें से बाईसवें सर्ग तक तिङन्त प्रत्ययों अर्थात् नौ लकारों की विभक्तियों के उदाहरण हैं। इस प्रकार यह काव्य विशुद्ध काव्य न होकर हिन्दी की रीतिकालीन परम्परा का जनक उदाहरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


त्मक पद्यों का समुच्चयमात्र है। ऐसी दशा में काव्य में पूर्ण प्रबंधात्मकता एवं वर्णन-चारुता का समुचित समावेश होना कठिन है। फिर भी इस कवि ने यथाशक्ति इन गुणों को अपने काव्य में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया है। इसके बहुत से पद्य तो बड़े ही मनोहर हुए हैं। कथा भी भगवान रामचन्द्र के लोक-पावन चरित्र से संबंधित है। इसकी कथावस्तु का पता इसके सर्गों के नामों से ही लग सकता है। इसके सर्गों के नाम क्रमशः ये हैं—श्री रामसंभव, सीतापरिणय, रामप्रवास, सीताहरण, सुग्रीवाभिषेक, सीतान्वेषण, अशोकवनिकाभंग, मारुतिसंयम, सीताभिज्ञानदर्शन, प्रभातवर्णन, विभीषणागमन, शरबंध, कुंभकर्णवध, रावणविलाप, रावणवध, विभीषणप्रलाप, विभीषणाभिषेक, सीताप्रत्याख्यान, सीतासंशोधन, और अयोध्यागमन।

यह कवि वलभी के राजा श्रीधरसेन या श्रीधरसूनु के आश्रय में था। बलभी में इस नाम के चार राजे हुए, जिनमें अंतिम की मृत्यु ६४१ ई० में हुई थी; अतः ये ७वीं सदी के प्रारंभ में ही हुआ होगा। इसका ग्रंथ अपने विकट बन्धनों के कारण ऐसा कठिन हुआ है कि बिना व्याख्या के उसे समझना असंभव है। इस बात की चर्चा स्वयं कवि ने भी अपने ग्रंथ के अन्त के दो श्लोकों में की है। साहित्य के द्वारा व्याकरण और काव्यशास्त्र में प्रवेश करने की लालसा रखनेवाले छात्रों के लिए यह परमोपयोगी है। इसमें प्रकृतिवर्णन और चरित्र-चित्रण बड़े ही सुन्दर और मार्मिक हैं। विशुद्ध काव्य न होने पर भी यह बड़ा ही लोकप्रिय रहा है और इसकी परम्परा हिन्दी के कवि केशवदास से लेकर हरिऔध तक चलती रही है। यद्यपि इन लोगों ने अपने ग्रंथों में व्याकरण के उदाहरण नहीं दिये हैं फिर भी अलंकार, रस, छंद, नायक-नायिका वर्णन इत्यादि में उन लोगोंने भट्टि का ही अनुकरण किया है। अपनी इस लोकप्रियता के कारण भट्टि की काव्यलता सदैव हरी रहनेवाली है और वह कभी मुरझा नहीं सकती।

**शिशुपाल वध**—शिशुपाल वध महाकवि माघ की कृति है। इस महाकाव्य की पण्डितों में बड़ी प्रशंसा है। संस्कृत का एक श्लोक कहावत के रूप में व्यवहृत होता है, जो यों है:—

> उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
> दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः॥

अर्थात् कालिदास की उत्कृष्टता उनकी उपमाओं में है, भारवि की उत्कृष्टता उनके अर्थगौरव में है, दण्डी की उत्कृष्टता उनके पदों के लालित्य में है; किंतु माघ के काव्य में तो ये तीनों ही गुण पाये जाते हैं। इससे बढ़कर माघ के सम्बन्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



में और कुछ नहीं कहा जा सकता। यहाँ यह विचार करना नहीं दीख पड़ता कि इस लोकोक्ति में सत्यता कहाँ तक है। यहाँ यही है कि महाकवि माघ संस्कृत के धुरन्धर कवियों की पंक्ति में भी आदरणीय स्थान के अधिकारी हैं।

महाकवि माघ के शिशुपालवध का आधार-ग्रंथ महाभारत है। महाभारत के सभा पर्व में एक अर्घाहरण पर्व है जिसमें छत्तीसवें से पैंतालिसवें अध्याय तक की कथा शिशुपालवध में कही गई है। शिशुपालवध की कथा संक्षेप में यों है—

भगवान कृष्ण के पास नारद ऋषि का आना और शिशुपाल के वध के लिए प्रार्थना करना। शिशुपाल के वध के लिए उद्धव, बलराम और कृष्ण की मंत्रणा। द्वारका से भगवान् श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान तथा द्वारका और समुद्र का वर्णन। मार्ग में रैवतक पर्वत का वर्णन। क्रीड़ा की इच्छा से वहाँ कृष्णचन्द्र का अपनी सेना के साथ ठहर जाना। वहाँ क्रमशः छहों ऋतुओं का वर्णन। भगवान श्रीकृष्ण का अपने अनुचरों के साथ वनविहार। वनविहार के पश्चात् जलक्रीड़ा। सूर्यास्त वर्णन। रात्रि में स्त्री-पुरुषों का मधुपान करना। प्रभात वर्णन। इन्द्रप्रस्थ के लिए पुनः प्रस्थान और यमुना का वर्णन। कृष्ण और पाण्डवों का समागम और कृष्ण को देखकर स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन। वहाँ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भीष्म की सम्मति से भगवान कृष्ण को अर्घ्य-प्रदान। शिशुपाल के हृदय का क्षोभ और सेना के साथ उसका युद्ध के लिए प्रस्तुत होना। शिशुपाल के दूत और सात्यकि का विवाद। श्रीकृष्णचन्द्र का सेना के साथ शिशुपाल से युद्ध करने के लिए प्रस्थान। वहाँ दोनों सेनाओं का परस्पर युद्ध। चित्रकाव्य के द्वारा द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन। अंत में शिशुपाल का संहार।

माघ ने महाभारत की कथा में यत्र-तत्र परिवर्तन किया है। इससे उसकी मौलिकता का परिचय मिलता है। कृष्ण के समक्ष नारद का आना और शिशुपाल-वध के लिए उसकाना तथा दूसरे सर्ग में श्रीकृष्ण बलराम और उद्धव का वार्त्तालाप ये सभी कवि की कल्पनाएँ हैं। द्वारका से प्रस्थान करने पर द्वारका समुद्र, रैवतक पर्वत, षड्ऋतुओं और यमुना का वर्णन—ये सब मौलिक हैं। इन्द्रप्रस्थ में कृष्णचन्द्र को देखकर स्त्रियों की जो विलास-चेष्टाएँ होती हैं, यह भी कवि की कल्पनामात्र है।

महाभारत के अनुसार कृष्ण को अर्घ्य देने के बाद शिशुपाल कभी कृष्ण को, कभी भीष्म को और कभी युधिष्ठिर को गालियाँ देता रहा और भगवान कृष्णचन्द्र उन्हें चुपचाप गिनते रहे; किन्तु जब वह सौ गालियाँ दे चुका तो उन्होंने अपने चक्र से उसका सिर काट डाला; किन्तु कवि ने पूरा-पूरा युद्ध का वर्णन करने के लिए शिशुपाल-द्वारा श्रीकृष्ण की पूजा का विरोध होने पर भीष्म से उसको उत्तर दिलवाया है और तब शिशुपाल यज्ञशाला से बाहर होकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


अपनी सेना सजकर युद्ध के लिए प्रस्तुत होने लगा है। शिशुपाल का दूत आकर पाण्डवों और कृष्ण को या तो उसकी आज्ञा मानने के लिए कहता है या युद्ध करने के लिए ललकारता है। सात्यकि उस ललकार का उत्तर देता है और दोनों सेनाएँ डटकर युद्ध करने लगती हैं। इस प्रकार दोनों सेनाओं के युद्ध का वर्णन हुआ है और श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल मारा गया है। महाकाव्य की ये सारी बातें महाभारतीय कथा से भिन्न हैं और उसकी कल्पना शक्ति के निदर्शन हैं।

महाकाव्य की कथा में जो परिवर्त्तन किये गये हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं। जो संवाद महाभारत में बहुत लम्बे-लम्बे हैं, उन्हें संक्षिप्त पर गंभीर बनाया गया है। दोनों सेनाओं के युद्ध की बात लाकर कवि ने महाभारत की कथावस्तु को किरातार्जुनीय की कथा के समान अधिक काव्योपयुक्त बनाया है। निस्सन्देह माघ में उत्कृष्ट कोटि की कवि-प्रतिभा है। यद्यपि उसमें भारवि के समान संक्षिप्तता गंभीरता और मर्यादा नहीं है फिर भी उसमें वर्णन की विशालता, कल्पनाओं की प्रचुरता, काव्योपयुक्त मधुरता और अनुपम सौन्दर्य है। चित्रकाव्य लिखने में उसने भारवि का अनुकरण किया है। किन्तु इस तरह के काव्य का संभवतः उस समय बहुत प्रचार रहा होगा जैसे सूर के समय में दृष्टकूटों का। माघ भाषा पर पूर्ण अधिकार रखता है और उसने भट्टि के समान बहुत-से व्याकरण के नियमों के उदाहरण भी दिये हैं। उसने छन्दों का प्रयोग बड़े ही उपयुक्त ढंग से किया है। वह एक वैष्णव कवि मालूम होता है। विन्ध्य और रैवतक का विशेष ज्ञान रखने के कारण कुछ आलोचकों का ख्याल है कि वह भारत के किसी दक्षिण-पश्चिम प्रान्त का रहनेवाला था; किन्तु इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

माघ ने अपने सम्बन्ध में कुछ कहा है जैसा कि संस्कृत के पण्डित प्रायः नहीं किया करते। उसके पिता का नाम दत्तक सर्वाश्रय था। उसके पितामह का नाम सुप्रभदेव था जो वर्मलात नामक राजा का राजपण्डित था। वर्मलात नामक राजा का एक अभिलेख ६२५ ई० का मिला है जिससे यह प्रतीत होता है कि माघ सातवीं सदी के अन्त में उत्पन्न हुआ होगा। माघ ने भारवि का अनुकरण किया है; किन्तु जहाँ भारवि ने शिव का महत्त्व वर्णन किया है वहाँ माघ ने विष्णु का। जैसे भारवि ने अपने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया है उसी तरह माघ ने अपने प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में श्री शब्द का प्रयोग किया है। दोनों ही राजनीति के महान् पण्डित हैं। जिस प्रकार किरातार्जुनीय में द्रौपदी, भीम और युधिष्ठिर के भाषण महाकाव्य के सम्वादों में उत्तम समझे जाते हैं उसी प्रकार शिशुपालवध में कृष्ण, बलराम और उद्धव के भाषण महत्त्वपूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



समझे जाते हैं। शिशुपालवध में भाषा में माधुर्य और परिष्कार है तो किरातार्जुनीय में गम्भीरता और गरिमा है जो शिशुपालवध से उसे विशेष महत्त्व प्रदान करती है। दोनों ही कवि अपने-अपने ढंग के निराले हैं और उनमें से किसी को बड़ा-छोटा कहना असम्भव है।

**नैषधीयचरित :**—महाकवि श्रीहर्ष के महाकाव्य का नाम नैषधीयचरित है। इसमें २२ सर्ग हैं। संस्कृत के पाँच महाकाव्य और एक खण्ड काव्य अलंकृत प्रबंध काव्यों के प्राण समझे जाते हैं। उन्हें दो वर्गों में बाँटा गया है। प्रथम वर्ग लघुत्रयी कहलाता है। इसमें कालिदास के ३ ग्रंथ हैं—कुमार संभव, रघुवंश और मेघदूत। दूसरे वर्ग अर्थात् बृहत्त्रयी में किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीय चरित हैं। श्रीहर्ष का नैषधीयचरित बृहत्त्रयी के अन्य दो काव्यों से भी आकार में बहुत बड़ा है। जहाँ किरातार्जुनीय में १०४० तथा शिशुपाल वध में १६३६ ही पद्य हैं वहाँ नैषधीयचरित में २८३१ पद्य हैं। इस ग्रंथ में दर्शन, साहित्य और राजनीति इन सबका बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन है। इस महाकाव्य का आधार ग्रंथ महाभारत है। महाभारत के वन-पर्व में बृहदश्व नामक ऋषि ने धर्मराज युधिष्ठिर से नल-दमयंती की कथा कही है। यह कथा उस पर्व के ५३ वें अध्याय से ७६ वें अध्याय तक लगातार कही गयी है। महाभारत की कथा सरल, सरस, करुणापूर्ण तथा स्थान-स्थान पर विस्मय और रोमांच उत्पन्न करनेवाली है। इसमें बृहदश्व और युधिष्ठिर की भेंट, नल का एक हंस को पकड़ना, उसको दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना, दमयन्ती-स्वयंवर में देवों का नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना, नल-दमयन्ती का विवाह, कलि की प्रेरणा से नल का पुष्कर नामक राजकुमार से जुआ खेलना, जुए में उसका सब-कुछ हार जाना, दमयन्ती का अपने बच्चों को अपने पिता के पास भेजना और स्वयं नल के साथ रहना, नल द्वारा दमयन्ती का जंगल में त्याग, दमयन्ती की अजगर और व्याध से रक्षा, उसका विदर्भ देश में अपने पिता-माता के पास पहुँचना, राजा नल और करकोटक नाग का संवाद, नल का ऋतुपर्ण राजा का सारथी होना, नल का पता लगने पर दमयंती का ऋतुपर्ण के साथ चतुराई से नल को अपने पिता के देश में बुलाना, नल और दमयन्ती का पुनर्मिलन तथा उनके राज्य का पुनः प्राप्त होना।

श्रीहर्ष ने अपने काव्य के लिए यह कथा तो ली है पर इस काव्य में उसका पूरा अंश नहीं आ सका है। इसमें नल के विवाह के उपरान्त नल-दमयन्ती के संभोग-शृंगार तक का ही वर्णन है। पीछे की कथा इसमें नहीं कही गयी है। श्रीहर्ष की वर्णन-क्षमता अद्भुत थी। किसी भी विषय का वर्णन प्रारंभ करने पर वह न तो थकता था और न उसकी प्रतिभा कभी कुंठित होती थी। वर्णन की क्षमता और वर्ण्य-विषय के विस्तार में श्रीहर्ष के समकक्ष का कोई भी कवि नहीं पैदा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


हुआ। भाषा पर उसका पूर्ण अधिकार था। वह अलंकार, छन्द, रस, भाव और दर्शन सब कुछ का पंडित था। प्राचीन साहित्य में तो वह पारंगत था ही; कामशास्त्र और राजनीति पर भी उसका पूर्ण अधिकार था। प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में उसका कौशल अपूर्व था। श्रीहर्ष का चन्द्रोपालंभ विश्वविख्यात है।

उसके पिता का काम श्रीहीर पण्डित था और उसकी माता का नाम मामल्य देवी। वह कान्यकुब्ज के महाराज विजयचन्द्र और जयचन्द्र की सभा के पंडितों का अध्यक्ष था। जनश्रुति है कि उसके पिता शास्त्रार्थ में किसी पंडित से हार गये थे। अतएव मरते समय उन्होंने अपने पुत्र से विद्याध्ययनकर उसे परास्तकरने का अनुरोध किया था। श्रीहर्ष ने चिन्तामणि का जपकर विद्या प्राप्त की थी और अपने पिता के शत्रु को परास्त किया था। नैषधकाव्य की रचना भी वे उस मंत्र के प्रभाव से ही होना बताते हैं। उस काव्य के अतिरिक्त उन्होंने कई ग्रंथ लिखे थे जिनमें खण्डनखण्डखाद्य पंडितों में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

---

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# खण्ड काव्य

## मेघदूत

महाकाव्य और खण्डकाव्य ये दोनों ही प्रबंधकाव्य हैं। इन दोनों में अन्तर आकार और विषय-विवेचन में हैं। महाकाव्य भी दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के महाकाव्यों में समग्र राष्ट्र का जीवन प्रतिविम्बित होता है। वास्तविक महाकाव्य वे ही हैं, जिनसे राष्ट्र के विकास, उत्थान, पतन, सभ्यता, संस्कृति, पुरुषार्थ, असमर्थता, आशा, निराशा, सौन्दर्य-भावना, दर्शन, विज्ञान, कला, अनुश्रुति एवं इतिहास का पता चलता है। उनमें कला गौण और भाव प्रधान होते हैं या कभी-कभी दोनों का सामंजस्य होता है। ऐसे महाकाव्यों के प्रणेता अद्वितीय शक्ति-सम्पन्न महात्मा या महर्षि होते हैं। इनके महाकाव्य आगे के कवियों के लिए उत्तेजक और आधार होते हैं। हमारे यहाँ संस्कृत साहित्य में ऐसे दो महाकवि हैं—महर्षि वाल्मीकि और भगवान् वेदव्यास। दूसरे प्रकार के महाकाव्य वे हैं जिनमें समग्र मानव-जीवन का चित्र खींचा जाता है। समस्त राष्ट्र के किसी महान् प्रयत्न को कथानक बनाकर उक्त राष्ट्र का चित्रण उनका प्रधान उद्देश्य नहीं होता। वे मानव-जीवन के समग्र भाग के कलात्मक चित्र अंकित करने के लक्ष्य को सामने रखकर लिखे जाते हैं। उनकी कथा किसी प्राचीन महाकाव्य पुराण या इतिहास से ली जाती है और उनके मानव-जीवन की प्रायः प्रत्येक स्थिति का कलात्मक चित्रण होता है। ऐसे महाकाव्यों के लक्षण संस्कृत साहित्य के लक्षण-ग्रन्थों में निश्चित से हो गये हैं। ऐसे महाकवियों में कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भट्टि, माघ और श्रीहर्ष प्रमुख हैं।

खण्डकाव्य इन काव्यों से भिन्न है। उनको न तो किसी राष्ट्र का चित्रण करना है और न किसी व्यक्ति के समग्र जीवन का। वे वर्णनात्मक भी होते हैं और चिन्तनात्मक भी। किन्तु चिन्तन और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उनका प्रधान लक्ष्य होता है। वे किसी न किसी प्रधान रस से सम्बन्ध रखते हैं। शृंगार, वीर और करुण इन तीनों में से कोई-न-कोई रस उनका आधार होता है। ऐसे खण्ड-काव्यों में मेघदूत सर्वथा अद्वितीय हैं। वह सोलहो आने शृंगार का ग्रन्थ है। उसका प्रधान रस है विप्रलंभ शृंगार किन्तु स्थान-स्थान पर उसमें सम्भोग-शृंगार भी आ हो गया है। कतिपय पद्यों में तो संभोग-शृंगार इतना उत्तान हो गया है कि उसका पढ़ना-पढ़ाना भी असम्भव-सा है। फिर भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


मेघदूत भारतीय-साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी अनुपम है। वह एक नैसर्गिक कवि-प्रतिभा की परिपक्वता का अनुपम प्रसाद है। मन्दाक्रान्ता-जैसे लम्बे और कठिन छंद को अपनी कोमल-करुण भाव-व्यंजना का साधन बनाकर कवि ने जिस मधुर संगीत की सृष्टि की है, उसकी मिठास अतुलनीय है। कवि का प्रत्येक पद रस में सराबोर है। उसमें प्रेमियों के पावन पर ऐहिक प्रेम के सहज एवं स्वाभाविक विश्लेषण और विवेचन है। सम्भव है, इस काव्य की रचना की प्रेरणा कवि को महर्षि वाल्मीकि की रामायण से मिली हो। इस बात की सम्भावना बहुत कुछ निश्चय में परिणत होती हुई दीख पड़ती है, जब कि हम मेघदूत का उसके उद्गम के अनुसन्धान की दृष्टि से अध्ययन करते हैं। मेघदूत का प्रथम पद्य ही जनकतनया का स्मरण करता है। फिर बारहवें पद्य में पुरुषों में बन्दनीय भगवन् रघुपति के चरणों का उल्लेख करता है। अंत में उत्तरमेघ के ३७ वें पद्य में तो यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी को मैथिली के समान कह ही देता है। प्रेरणामात्र तो कवि ने वाल्मीकि से ली है; किन्तु उसकी पूर्ति में उसने अपूर्व मौलिकता, दक्षता और सौन्दर्य का प्रदर्शन किया है। डाक्टर कीथ ने भी इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—But the idea is carried out with marked originality and beauty. यहाँ पर यह देखना है कवि ने राम के सीता-सन्देश से मेघ के सन्देश में कौन सी भिन्नता या नवीनता रक्खी है और उससे काव्य में कहाँ तक उत्कर्ष आया है।

सबसे पहली बात तो यह है कि राम और सीता ईश्वर और उसकी शक्ति के अवतार होते हुए भी मानव थे। उनका दूत कोई मानव ही हो सकता था। अतएव उन्होंने वानर जाति में उत्पन्न हनुमान नामक बन्दर को अपना दूत चुना; किन्तु यक्ष तो देव-योनि का है। उसका दूत मानव भी हो सकता था जैसा कि इन्द्र आदि ने दमयन्ती के पास जाने के लिए नल को दूत बनाया था; किन्तु कालिदास का अभिप्राय इससे सिद्ध नहीं होता। उन्हें केवल सन्देश ही नहीं भेजना था। उन्हें तो चित्रकूट से लेकर अलका तक के प्राकृतिक सौंदर्य, इतिहास, भूगोल, सभ्यता, संस्कृति और जन-प्रकृति का भी चित्रण करना था। अतएव, उन्होंने मेघ को ही अपने काव्य का दूत बनाया जो नवीन और उपयुक्त था।

मेघदूत की दूसरी विशेषता प्रेम-चिह्न अर्थात् अंगूठी इत्यादि का अभाव है। उसकी तीसरी विशेषता है मेघदूत के सभी पद्यों को विरही यक्ष के मुँह से कहलाना। ऐसा करने से उसने सारे काव्य में विप्रलंभ शृंगार का सन्निवेश कर दिया है और उसके सभी पद्यों में विरही के विचार या भाव भर दिये हैं। सबसे बड़ी बात है इस काव्य का भावैक्य जो कवि की प्रतिभा और नवीनता के बिना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


सम्भव नहीं होता। कालिदास के एक आलोचक प्रो० जी० सी० झाला ने ठीक ही कहा है—Perhaps the could might have described the yakshas love-born condition to his beloved; but such description even at its best could not have revealed the agony of the lover's heart. Above all, the various links in the chain of the plot would have remained rather loosely connected with each other and the unity of the poem would have suffered..............Indeed, the Meghdutaas Kalidas has conceived it, is one deep sight of a love-striken heart doomed to separation and its beats being heard from stanza to stanza. The originality of Kalidas's design has rescued this description from being merely a description and turned it into an expression of the lover's anguish. इस प्रकार मेघ को संदेशग्राहक बनाकर अंगूठी आदि किसी प्रेम-चिह्न या पहचान की चर्चा न कर और समग्र सन्देश स्वयं यक्ष के ही मुँह से कहलाकर कालिदास ने इसमें वह विशेषता उत्पन्न कर दी है जिसके कारण मेघदूत की कथावस्तु में एकता, सरसता, विचित्रता और आकर्षण की प्रचुरता उत्पन्न हो गयी है। मेघदूत की यह नवीनता कालिदास की भावुकता और उनकी मानव-मनोविज्ञान की अभिज्ञता का प्रमाण है।

किन्तु क्या मेघ कभी दूतत्व कर सकता है? प्रसिद्ध आलंकारिक भामह ने इस पर शंका की है और इसे अयुक्तिमत् कहा है; किन्तु उन्हें मेघदूत की रमणीयता से विवश होकर अपने कथन में सुधार करना ही पड़ा है। वे कहते हैं।

यदि चोत्कण्ठया यत्तदुन्मत्त इव भाषते ॥
तथा भवतु भूम्नेयं सुमेधोभिः प्रयुज्यते ॥

[ काव्यालङ्कार १-४४ ]

अर्थात् यदि कोई उन्मत्तावस्था में पागल-सा प्रलाप करता है तो वह क्षम्य हो सकता है। अच्छी प्रतिभावाले इसी उपाय का अवलम्बन करते हैं। स्वयं कवि को भी इस प्रकार की आलोचना का भय था, अतः उसने पाँचवें पद्य में इसका उत्तर दे दिया है। उसने स्पष्ट कहा है कि कामार्त प्राणी चेतन या अचेतन का विचार नहीं करते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



निस्सन्देह, आलंकारिकों की प्रतिभा से कवि की प्रतिभा अधिक तीव्र और दूरव्यापिनी होती है। कवि-कला प्रकृति के बंधन अर्थात् नियतिकृत नियम से कुछ भिन्न है। आचार्य मम्मट ने इसे ठीक-ठीक पहचाना है। अपने काव्य-प्रकाश के प्रारंभ में ही वे कहते हैं—

नियतिकृत नियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारतीकवेर्जयति ॥

अर्थात् प्रकृति के नियमों से रहित केवल आह्लाद से पूर्ण परम स्वतंत्र और नौ रसों के सन्निवेश से रुचिर निर्माण धारण करनेवाली कवि की वाणी धन्य है। इस प्रकार इस काव्य का सत्य भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है वह आह्लाद, जो इसके पठन-पाठन से सहस्रों वर्षों से सहृदयों को मिलता आ रहा है और जिसके कारण मेघ द्वारा संदेश भेजना कभी अयुक्तिमत या Absurd नहीं माना गया, यहाँ तक कि भामह को छोड़कर किसी अन्य ने इसकी चर्चा भी नहीं की।

मेघदूत की इस प्रारंभिक आलोचना के पश्चात् उसमें वर्णित विषयों पर दृष्टि डालिए। अपने स्वामी के शाप से वर्ष भर के लिए रामगिरि में प्रवास करते हुए एक विरही यक्ष ने किसी प्रकार आठ महीने काटे; किन्तु मेघों का आगमन प्रारम्भ होते ही वह विरह से व्याकुल हो गया। अपनी व्याकुलता से उसे अपनी प्रियतमा की आकुलता का स्मरण हो आया। उसने सोचा कि यदि मैं अपना कुशल-समाचार इस प्रथम मेघ के साथ ही अपनी प्रियतमा के पास नहीं भेजता तो उसके जीती रहने में भी संदेह हो जायगा। वह बेचारी प्रेम-पीड़ा के उद्दीपन से मर जायगी। उसका फूल-सा कोमल और शीघ्र भग्न होनेवाला हृदय इस विरह-वेदना से चूर-चूर हो जायगा। इसीलिए उसने उस प्रथम मेघ से ही अपनी प्रियतमा की प्राणरक्षा का अवलंबन—अपना कुशल-संदेश भेजना चाहा। उसने मेघ की प्रशंसा और पूजा की तथा अलका में स्थित अपनी प्रियतमा के पास अपने संदेश ले जाने की प्रार्थना की। मार्ग में मेघ के स्वागत-सत्कार शुभ-शकुन, उसके प्रयत्न की सफलता, उसके संगी-साथी इत्यादि का उसने उल्लेख किया। इसके पश्चात् उसने अपने मित्र रामगिरि से सस्नेह आलिंगन कर विदा माँगने की प्रार्थना की। पहले उसने मेघ को उसका मार्ग बतलाना प्रारंभ किया; किन्तु मार्ग ऐसा बतलाया जो कुछ वक्र होने पर भी उसके लिए सर्वथा सुखकर था। उस मार्ग में मेघ के थकने पर विश्राम के लिए पहाड़ थे और क्षीण होने पर तथा प्यास लगने पर पीने के लिए पानी भी। उसके मार्ग में मालदेश, आम्रकूट पर्वत, नर्मदा नदी, दशार्ण देश, विदिशा नगरी, नीचैः पर्वत, जूही से भरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



हुए कुंज, निर्विंध्या नदी, उज्जयिनी नगरी, भगवान् स्कंध का मंदिर, चर्मण्वती नदी, दशपुर नामक नगर, ब्रह्मावर्त देश, कुरुक्षेत्र, सरस्वती नदी, कनखल नामक स्थान, गंगा नदी, हिमालय पर्वत, क्रौंचरंध्र नामक पहाड़ और कैलास पर्वत पड़ते थे। उसने उत्तर-मेघ में अलका नगरी का वर्णन और अपने घर का पता बतलाया। तत्पश्चात् उसने अपनी प्रियतमा के सौन्दर्य और सौकुमार्य की चर्चा चलायी। अन्त में उसकी विरहावस्था का वर्णन कर अपने संदेश कहे। इस प्रकार इस काव्य की कथावस्तु में सौन्दर्य, चमत्कार ऐतिहासिक और भौगोलिक कुतूहल इत्यादि की विशद् योजना की गयी है। अतः यह न समझना चाहिए कि कालिदास का यह वर्णन किसी यात्रा-वर्णन या भूगोल-लेखक या इतिहास-लेखक की कृति के समान है। इस रूखे-सूखे स्थान, नदी, पर्वत, मंदिर नगर और जंगल के वर्णन में उस अमर कवि का वह अलौकिक कवित्व है जो उसके अतिरिक्त किसी अन्य कवि को कभी प्राप्त न हुआ।

किन्तु मेघदूत का यथार्थ सौन्दर्य उसके संस्कृत रूप में ही है। किसी अन्य भाषा में प्रकट नहीं किया जा सकता। हिंदी में उसके कई पद्यात्मक अनुवाद हुए जैसे राजा लक्ष्मण सिंह का, पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी का और आचार्य केशव-प्रसाद मिश्र का; किन्तु किसी में भी उसके मूल का स्वाद नहीं आया। श्री जी० सी० झाला कहते हैं—The Summary in English, although it is given in detail and mostly in literal translation. fats to do justice to fhe beauty of the original. When the harmony of the sound is holf its poetry, no translation can be succeed in reproducing the enphony of Entonation, the tilt, the delicate music of the original sanskrit which make the stanzas haunt the ear. यथार्थ में 'शामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेननूनम्' के मधुर, करुण और सरस स्वाद का अनुभव इसके किसी भाषानुवाद में नहीं आ सकता। इसी प्रकार गंगा के उल्लेख में कवि ने जो गंगा की-सी भाषा-तरंगें उठायी हैं वे किस भाषा के अनुवाद में प्राप्त हो सकती हैं? उदाहरणार्थ,

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ॥

उक्त आलोचक ने बिलकुल ठीक कहा है कि Sound and sense have been wedded together अर्थात् शब्द और अर्थ का यहाँ पूर्ण सामंजस्य है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



यक्ष के घर का जो सुन्दर पर कारुणिक चित्र खींचा गया है, उससे हमारे हृदय में उसके प्रति पूर्ण सहानुभूति जाग्रत होती है। अलका, उज्जयिनी, हिमालय और कैलाश का वर्णन अप्रतिम सौन्दर्य से परिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त मार्ग की वस्तुओं और स्थानों का वर्णन जिस कौशल के साथ हुआ है, वह संस्कृत साहित्य में सर्वथा नूतन है। प्रकृति में मानवीकरण करके कवि ने उसमें अलौकिक शृंगार की सृष्टि कर दी है। इसके अतिरिक्त उसने मेघदूत में मैत्री-भाव, आतिथेय और अतिथि-भाव तथा प्रेमी-प्रेमिकाओं के अंतःकरण का विशद विश्लेषण और मनोहर विवेचन कर हमारे हृदयों को अनायास पुलकित होने की सामग्री प्रदान कीहै। इस काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास—जैसे रसोत्कर्ष-विधायक अलंकारों का ही प्रायः प्रयोग हुआ है। शृंगाररस की प्रधानता होने पर भी इस काव्य का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा है। यद्यपि कुछ पद्य अत्यधिक शृंगारपूर्ण हैं तथापि इसमें प्रेम का उज्ज्वल स्वरूप ही अंकित हुआ है। वह स्वाभाविक, सरल, स्वच्छ और कल्याणमय दाम्पत्य-स्नेह है जो समग्र समाज की सृष्टि और संचालन का मूल है। कालिदास का यह प्रेम-वर्णन लोकमंगलविधायक और सर्वथा प्रशंसनीय है।

**पवनदूत**—पवनदूत एक छोटी पर सुन्दर साहित्यिक रचना है जो कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर लिखी गयी है। कालिदास का मेघदूत इतना सुन्दर और सरस है कि उसका अनुकरण बहुत से कवियों ने किया है। इस ग्रंथ के कम-से-कम ३५ अनुकरण करनेवाले कवि हुए हैं; किन्तु उनके समय के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कालिदास की कविता का सबसे पहला अनुकरण धोयी धोयीक नामक कवि का पवनदूत है। धोयी का नाम भिन्न-भिन्न लिखित ग्रंथों में भिन्न-भिन्न ढंग से लिखा गया है। जयदेव ने अपने ग्रंथ गीतगोविन्द में उसका नाम धोयी ही लिखा है। महाराज कुम्भ ने भी गीतगोविन्द में अपनी रसिकप्रिया नामक टीका में लिखा है कि बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबार में उमापति धर, जयदेव, शरण गोवर्द्धन, श्रुतिधर और धोयी ये छः प्रसिद्ध कवि रहते थे। किन्तु कुछ लोगों के अनुसार लक्ष्मणसेन के दरबार में केवल पाँच ही कवि थे—गोवर्द्धन, शरण, जयदेव, उमापति, और कविराज। अतः विद्वानों का विचार है कि धोयी का ही दूसरा नाम या उपाधि कविराज है। इसीलिए जयदेव ने भी उसे 'धोयीकविक्ष्मापतिः' लिखा है। कविक्ष्मापति का अर्थ है कविराज। इससे स्पष्ट है कि कविराज धोयी की उपाधि थी।

धोयी का समय क्या था, इस सम्बन्ध में पूरा-पूरा निश्चय नहीं किया जा सकता। इतना मालूम है कि वह लक्ष्मणसेन का राजपंडित था। लक्ष्मणसेन संभवतः १२वीं सदी के पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध में राजगद्दी पर बैठे थे। लक्ष्मणसेन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



का समय सदुक्ति कर्णामृत के अनुसार ११२५ से १२०५ वि० संवत् तक होना चाहिए।

घोयी का जन्म कहाँ हुआ था, इस बारे में मतभेद है। उसकी जाति के सम्बन्ध में भी विवाद है। कुछ लोगों के अनुसार वह ब्राह्मण था और कुछ लोगों के अनुसार वह बंगाली वैद्य था। इसलिए उसकी जाति और जन्मस्थान के बारे में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

घोयी का केवल एक ही ग्रंथ 'पवनदूत' हमें प्राप्त होता है। यह कहना कठिन है कि उसने केवल एक यही ग्रंथ लिखा था या कुछ और भी; किन्तु एक जगह पर पवनदूत में (अर्थात् पद्य सं० १०४ में) उसने कहा है कि उसने कई अमृतमय वाक्य सन्दर्भों की रचना की है। इससे स्पष्ट है कि उसने पवनदूत से अतिरिक्त कुछ और भी ग्रंथ लिखे थे।

घोयी के समसामयिक बड़े-बड़े विद्वान् और कवि थे। स्वयं लक्ष्मणसेन भी एक अच्छे कवि और विद्वान् थे। जयदेव के अनुसार उमापतिधर, स्वयं जयदेव, शरण, गोवर्द्धन और घोयी ये सब लक्ष्मणसेन की सभा में थे। राजा कुंभ के अनुसार श्रुतिधर नामक एक और विद्वान् लक्ष्मणसेन की सभा में था' किन्तु श्रुतिधर तो घोयी की ही उपाधि थी। अतएव पाँच ही कवि लक्ष्मणसेन की सभा में थे। इन कवियों के अतिरिक्त ईशान, पशुपति और हालायुध ये सब लक्ष्मणसेन की सभा में थे। इनके अतिरिक्त पुरुषोत्तम देव नामक एक और विद्वान् लक्ष्मणसेन के दरबार में थे। जिसने पाणिनी के सूत्रों पर भाषाकृत नामक भाष्य लिखा है।

घोयी की शैली बहुत कुछ कालिदास की शैली का अनुकरण करती है। अनुकरण ग्रंथ होने पर भी पवनदूत में अनेक पद्य मौलिक हैं। उन पद्यों के पढ़ने पर यह प्रतीत होता है, जैसे हम किसी यथार्थ कवि की रचना पढ़ रहे हैं। उसमें कालिदास की शैली के सब गुण पाये जाते हैं। उसके ६४ से ८४ तक संख्या के पद्य जो विरहिणी गन्धर्व कन्या की करुण दशा का चित्रण करते हैं, बड़े ही मार्मिक और मनोहर हैं। कवि का वह वर्णन प्रत्यक्षवत् सजीव और करुणापूर्ण हैं। उसने कालिदास का अनुकरण करते हुए कभी-कभी कालिदास की पंक्तियों को ले लिया है; लेकिन आगे की पंक्तियों में उसने इतनी मौलिकता भर दी है कि समग्र पद बिलकुल मौलिक-सा बन जाता है।

पवनदूत की कथावस्तु—पवनदूत की कथा यह है. "मलय पर्वत पर गंधर्वों की एक बस्ती थी जिसका नाम था कनकनगरी। वहाँ पर गन्धर्वराज की कन्या कुवलयवती रहती थी। लक्ष्मणसेन जब दिग्विजय करते हुए उस नगर से होकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



निकले तो कुवलयवती ने उन्हें देख लिया और उनके प्रेम में फँस गयी। वह रात-दिन उन्हीं की चिन्ता में रहने लगी। जब वसन्त काल आया और शीतल मन्द, सुगन्ध हवा बहने लगी तो उसका विरह और भी बढ़ गया। राजा लक्ष्मणसेन के पास अपना सन्देश भेजने के लिए उसने पवन को ही अपना दूत बनाया। बस, कहानी का सार इतना ही है; किन्तु कवि ने मलय-पर्वत से लेकर बंगाल की राजधानी विजयपुर तक की यात्रा का वर्णन किया है। उसके बाद उसने कुवलयवती को विरहावस्था का वर्णन किया है।

पवनदूत का ऐतिहासिक आधार—इस ग्रंथ के अनुसार लक्ष्मणसेन ने दिग्विजय की यात्रा की थी और मलय पर्वत तक गये थे। प्रश्न यह है कि यह कवि की कल्पनामात्र है या इसमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी है? अभिलेखों के आधार पर तो यह बात सत्य नहीं समझी जा सकती; किन्तु भिन्न-भिन्न ताम्रपत्रों पर खुदे हुए लेखों से यह पता चलता है कि लक्ष्मणसेन ने दूर-दूर देशों तक यात्रा की थी। मधई नगर के ताम्रपत्र पर लिखा है कि उसने कुमारावस्था में कलिंग की स्त्रियों के साथ क्रीड़ा की थी। इसपर दूसरे ताम्रपत्र के आधार पर काशी के ऊपर लक्ष्मणसेन की विजय सिद्ध होती है।

पवनदूत के आधार पर भौगोलिक ज्ञान—मेघदूत के समान पवनदूत से भी कुछ भौगोलिक ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे—कालिदास ने मेघदूत में आम्रकूट से अलका तक के मार्ग का वर्णन किया है उसी तरह धोयी ने मलय पर्वत से विजयपुर तक का वर्णन किया है। यह सत्य है कि कवि के वर्णन से हम मार्ग का ठीक-ठीक स्वरूप नहीं जान सकते, फिर भी हमें बहुत कुछ भौगोलिक वर्णन पवनदूत में प्राप्त होता है। कवि कनक नगरी से पवनदूत का प्रारम्भ करता है। पश्चिम घाट का यह दक्षिणी भाग होगा। मलय पर्वत को छोड़कर पवन पाण्ड्य देश जाता है जो मलय पर्वत से चार ही मील पर है। उसका नाम उरगपुर बतलाया गया है जो ताम्रपर्णी नदी के किनारे था। वहाँ से बढ़कर मेघ काँचीपुर चला जाता है। काँची की चोल महिलाओं का वर्णन भी कवि ने अच्छे ढंग से किया है। १३वें पद्य से पता चलता है कि काँची सुवला नामक नदी के किनारे थी। काँची से चलकर पवन कावेरी की तरफ जाता है और वहाँ से केरल देश की तरफ। वहाँ से पूर्व की तरफ लौटता है और माल्यवान् पर्वत पर पहुँचता है। वहाँ से चलकर वह पंचाप्सर झील के निकट पहुँचता है। इस यात्रा-वर्णन में कवि ने राम के मार्ग के ग्रामों में मलय-पर्वत और पंचाप्सर नामक झील, इन्हीं दोनों की चर्चा की है।

गोदावरी नदी के किनारे आन्ध्रदेश को पार करने के बाद पवन कलिंग नगरी की ओर चलता है। वहाँ से चलकर मेघ मुखलिंग के पास आता है जो पूर्वी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



घाट में है। कलिंग नगरी में पहुँचने पर पवन को विंध्य पर्वत तक आना था जो अमर कंटक तक था वहाँ से पवन को विंध्य और नर्मदा की तरफ़ जाने के लिए कहा गया है। विंध्य पर्वतमाला में शबरों का निवास स्थान बतलाया गया है। फिर कभी ययाति नगरी से होते हुए सुह्म देश में पहुँचता है। वहाँ से वह त्रिवेणी नामक स्थान पर आता है जो हुगली नदी के किनारे है और अन्त में लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर में पहुँचता है। विजयपुर को कोई राजशाही जिले में बतलाते हैं तो कोई नदिया में। इस प्रकार पवनदूत की कथा समाप्त हो जाती है।

कवि की वर्णनशैली बड़ी ही सुन्दर है। उसे ऐतिहासिक और भौगोलिक ज्ञान भी पर्याप्त है। वह मानव-प्रकृति से परिचित है और भारतीय संस्कृति और साहित्य से उसका पूर्ण परिचय है। वह एक सहज, शक्तिसंपन्न कवि है और केवल १०० पद्यों के ग्रंथ के आधार पर उसकी कीर्त्ति आजतक समग्र भारत में ही नहीं, अखिल विश्व में व्याप्त है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# मुक्तक काव्य

भर्तृहरि—मुक्तक काव्यों में कविवर भर्तृहरि के तीन शतकों को ले सकते हैं। ये तीनों भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रायः सौ-सौ पद्यों के संग्रह हैं। इन शतकों के नाम शृंगार शतक, वैराग्य शतक और नीतिशतक हैं। इन शतकों में कुछ प्रक्षिप्त पद भी हो सकते हैं, अतः इन पद्यों की मौलिकता के संबंध में निःसंदिग्ध रूप से कुछ कहना असंभव है। इन शतकों में जो पद्य पाये जाते हैं, उनमें से कुछ 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में और कुछ 'मुद्राराक्षस' में भी 'पाये जाते हैं। इन पद्यों के आधार पर कवि के समय के बारे में कुछ कहना कठिन है। भारतीयों की दृष्टि में ये तीनों शतक एक ही कवि की रचनाएँ हैं। ये कवि भर्तृहरि हैं। कुछ यूरोपीय विद्वानों का विचार है कि भर्तृहरि बौद्ध थे; किन्तु शतकों के पढ़ने से मालूम होता है कि वे शैव हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भर्तृहरि ने शतकों में अपनी रचनाओं के अतिरिक्त अन्य कवियों की भी कुछ रचनाएँ संग्रहीत कर ली है। कवि ने नीतिशक में सांसारिक अनुभव की बातें कही हैं। शृंगार शतक में शृंगार के महत्त्व और सौन्दर्य का चित्रण किया है। वैराग्य में उसने सांसारिक विषय-वासना से हटने का महत्त्व प्रदर्शित किया है। भर्तृहरि के संबंध में कहा जाता है कि भर्तृहरि राजा विक्रमादित्य के भाई थे और संभवतः स्त्रियों के संबध में कटु अनुभव होने के कारण वे संसार से विरक्त हो गये थे। कुछ लोग उन्हें भट्टिकाव्य के रचयिता भट्टि ही मान लेते हैं; किन्तु इन बातों के लिए कोई प्रमाण नहीं है। भर्तृहरि के शतक संस्कृत के महत्त्व को प्रकट करते हैं। उनके शतकों का प्रत्येक पद प्रसंग की अपेक्षा नहीं रखता अर्थात् वह प्रसंग से मुक्त होने के कारण मुक्तक काव्य के अन्तर्गत आ सकता है। भर्तृहरि का प्रत्येक पद्य एक पूरे भाव को अभिव्यक्त करता है। इस तरह के मुक्तक काव्य अर्थ-गांभीर्य से भरे होते हैं। इन पद्यों में से प्रत्येक एक-एक छोटा काव्य होता है, अतएव उसके भाव को अधिक परिष्कृत और संक्षिप्त बनाना कठिन है। बड़े-बड़े छंदों के प्रयोग से कवि एक ही पद्य में पूरा-पूरा भाव लाने में समर्थ हो जाता है। भर्तृहरि ने तरह-तरह की बातें कही हैं। उदाहरण के लिए उत्तम पुरुष के लक्षण के बारे में उसने बताया है कि विपत्ति में धैर्य धारण करनेवाला, अभ्युदय में क्षमा करनेवाला, सभा में वाक्पटुता दिखलानेवाला और युद्ध में विक्रम प्रदर्शित करनेवाला मनुष्य मिलना कठिन है। उक्त प्रकार के मनुष्यों के अतिरिक्त यश में रुचि रखनेवाले और वेदाभ्यास में व्यसन करनेवाले स्वभाव से ही महात्मा हैं। इसी प्रकार उसने तरह-तरह के जीवन के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



अनुभवों का चित्रण किया है। भर्तृहरि के काव्य मनोहर, उपदेशप्रद और आनन्दवर्द्धक हैं। उसके तीनों शतक उत्तम काव्य के नमूने हैं और उनसे मुक्तक काव्य का महत्त्व सूचित होता है।

**अमरु या अमरुक**—अमरुक कवि के संबंध में हमें विशेष मालूम नहीं है। उसके मुक्तक पद्यों का संग्रह अमरुक शतक के नाम से प्रसिद्ध है। उसके कई रूप मिलते हैं जिसमें ६० से ११५ तक पद्य मिलते हैं। इसकी चार शाखाएँ मिलती हैं जिनमें से प्रत्येक में ५१ पद्य ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। कुछ ऐसे पद्य भी पाये जाते हैं जो अमरुक कवि के नहीं हैं; किन्तु वे अमरुक कवि के काव्य में मिला दिये गये हैं। कुछ पद्य जो अमरुक के बतलाये जाते हैं उसकी कविता में नहीं मिलते। अर्जुन वर्मा ने जिनका समय सन् १२१५ है, इस ग्रंथ को बहुमूल्य बतलाया है। अमरुक कवि के समय का निर्णय करना कठिन है। आनन्दवर्द्धन का समय ८५० ई० के करीब है। इन्होंने अमरुक के पद्यों को अपने ग्रंथ में उद्धृत किया है। ८०० ई० के आसपास में वामन ने लेखक का नाम देकर उद्धरण दिया है। इन उल्लेखों के आधार पर यह सिद्ध है कि ७५० ई० के आसपास ये पद्य लिखे गये थे। इन पद्यों से यह सिद्ध होता है कि उक्त लेखक ने यह ग्रंथ ६५० ई० के पहले ही लिखा था।

अमरुक के बारे में कहा जाता है कि वह स्वयं शंकराचार्य की रचना है। जिस समय शंकराचार्य शास्त्रार्थ में मंडन मिश्र की स्त्री के द्वारा पराजित कर दिये गये थे उसी समय उन्होंने किसी मृतक काश्मीरी राजा के शरीर में प्रवेश किया था और स्त्रियों से संपर्क रखकर उन्होंने इस काव्य की रचना की। अमरुक ने जिस प्रेम की चर्चा की है, वह बहुत कुछ स्वाभाविक और सरल है। कवि ने प्रेम का पूरा-पूरा लुप्त होना नहीं बतलाया है।

उसके पद्यों के संबंध में कहा गया है कि उनमें से एक-एक सैकड़ों प्रबंधों के समान है। इसमें बहुत कुछ सत्यता है। एक-एक पद्य में इतना भाव भरा है कि उसकी पूरी व्याख्या एक-एक ग्रंथ में की जा सकती है। किसी-किसी पद्य में तो इस तरह के वार्तालाप हैं जिनके आधार पर एक-एक नाटक लिखा जा सकता है। प्रत्येक पद्य सरस और सालंकार है। ध्वनि और काव्य गुणों की प्रत्येक पद्य में प्रचुरता है। अलंकार तो एक-एक पद्य में आठ-आठ दश-दश दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि अमरुक ने सौ ही पद्य लिखे हैं; किन्तु अपने काव्य की उत्कृष्टता के बल पर वह महाकवियों के बीच में स्थान पाने के योग्य है।

**आर्यासप्तशती**—मुक्तक काव्यों में आर्यासप्तशती का बहुत ऊँचा स्थान है। इसके लेखक आचार्य गोवर्द्धन बतलाये जाते हैं जो राजा लक्ष्मण सेन के दरबार के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


पण्डित थे और जो गीत-गोविन्दकार कविवर जयदेव के समकालीन थे। गीत-गोविन्द में कविवर जयदेव ने लिखा है कि शृंगार पूर्ण रचना में आचार्य गोवर्द्धन का प्रतिद्वन्द्वी कोई भी नहीं हुआ। आर्यासप्तशती में ७०२ आर्याएँ हैं। आचार्य गोवर्द्धन ने अपने काव्य के कतिपय अन्तिम श्लोकों में अपने काव्य की उत्कृष्टता और मधुरता की चर्चा की है। उन्होंने लिखा है कि यह आर्यासप्तशती अकेली है। इसकी सहायिका ध्वनि है। अतएव यह तीनों लोकों के काव्य का सार है। इसमें उक्ति की चतुरता स्पष्ट है। यह मंजरी के समान श्रोताओं के कानों को विभूषित करनेवाली है और काम रूपी भौंरा इसपर सदा मँड़राता रहता है। 'मैंने ऐसे सन्दर्भ की सृष्टि की है जो कविता युद्ध में सिंहनाद के तुल्य है, संगीत के सारे स्वर जिसके अनुवाद-मात्र हैं, जिसकी समता केवल सुधा ही कर सकती है और विद्वानों के आनन्द का जो एकमात्र साधन है।' कवि ने जो अपनी कविता के सम्बन्ध में गर्वोक्ति की है, वह यथार्थ है ; बल्कि उसकी कविता की उत्कृष्टता देखते हुए उसकी गर्वोक्ति नहीं के समान है। इस आर्यासप्तशती के पद्य मुक्तक हैं और गाथा सप्तशती के समान उत्कृष्ट हैं। इसमें जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं का चित्रण है, जिसमें विशेषता शृंगार रस की है। शृंगार रस के प्रत्येक पहलू का कवि को ज्ञान था। नायक-नायिकाओं के भेद-प्रभेद और उनकी असंख्य चेष्टाओं की अभिव्यंजना इस काव्य में की गयी है। शृंगार रस का ऐसा कोई भी पहलू नहीं है जिसपर कवि ने दृष्टि न दौड़ायी हो। इस प्रकार जीवन के एक प्रधान भाग की पूरी-पूरी विवेचना आर्यासप्तशती में मिलती है। इस कवि ने गाथा सप्तशती के भी कुछ भाव लिये हैं किंतु उन्हें परिष्कृत और मनोहर बनाकर। भारतीय साहित्य में सप्तशतियों की संख्या असंख्य है ; किंतु प्राकृत की गाथासप्तशती, संस्कृत की आर्यासप्तशती और बिहारी की हिंदी सतसई या सप्तशती सर्वथा अनूठी हैं और मुक्तक काव्य के क्षेत्र में हिंदी, प्राकृत और संस्कृत में इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा ग्रंथ नहीं है।

**भामिनी विलास :**—यह कविराज जगन्नाथराय जी की रचना है। ये महाविद्वान्, उत्कृष्ट कवि और विख्यात आलंकारिक थे। ये मुगल बादशाह शाहजहाँ के दरबार के मुख्य कवि थे। इन्होंने भामिनी-विलास के चतुर्थ विलास के ४५ वें पद्य में अपना परिचय दिया है। उसमें उन्होंने कहा है कि मैंने प्रतिदिन नियम-पूर्वक शास्त्रों का अध्ययन किया है और सब किसी की प्रतिष्ठा की है। मेरा नवीन वय दिल्ली के सम्राट् की छत्रच्छाया में बीता है। इस समय मैंने उस दरबार का पद त्याग दिया है और इस समय मथुरा में बसकर भगवान् की सेवा कर रहा हूँ।

पंडितराज जगन्नाथ के कई ग्रंथ हैं जिनमें उनका 'रसगंगाधर' अत्यन्त प्रसिद्ध है। उनकी 'गंगा लहरी' भी एक सुन्दर स्तुति काव्य है। उनके मुक्तक काव्यों में भामिनी-विलास अत्यन्त उत्कृष्ट है। इसमें चार विलास हैं—प्रास्ताविक विलास, शृंगार-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


विलास, करुणविलास और शांत विलास। प्रास्ताविक विलास में १२६, शृंगार विलास १०२, करुणा विलास में १८ और शांत विलास में ४६ पद्य हैं। यह ग्रंथ कुछ-कुछ भर्तृहरि के शतकों के समान है। प्रास्ताविक विलास में विविध विषयों के पद्य हैं जो बड़े ही मनोहर हैं। शृंगार विलास के पद्य शृंगार रस के हैं। कवि ने शृंगार सम्बन्ध एक-से-एक बढ़कर सुन्दर पदों की रचना की है। करुण विलास छोटा है जो पत्नी-विरह का चित्रण करता है। शान्त विलास में वैराग्य-सम्बन्धी पद्य हैं। कवि ने इन सभी विलासों में बड़े ही सुन्दर पद्यों की रचना की है और बहुत-कुछ अमरुक शतक का अनुकरण किया है। जगन्नाथ की भाषा सरल, सरस और स्वच्छ है और वह सहृदयों के हृदय को अकृत्रिम भाव से आकृष्ट करने में समर्थ है।

**घटकर्पर काव्य :**—घटकर्पर कवि का लिखा हुआ एक छोटा-सा घटकर्पर काव्य है जो केवल २२ पद्यों का है। इसमें वर्षा-वर्णन के अतिरिक्त कुछ अन्य भावों के भी पद्य हैं जो सरस और सुन्दर हैं; किंतु इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। फिर भी घटकर्पर का नाम कालिदास के नवरत्नों में गिना जाता है।

—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# गीत काव्य

## गीतगोविन्द

संस्कृत के अन्तिम महाकवि जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबार में थे। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि गोवर्द्धनाचार्य, धोयी, शरण, उमापतिधर और जयदेव इन पाँच कविरत्नों से राजा लक्ष्मणसेन की सभा विभूषित थी। जयदेव किंदुविल्व ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम भोजदेव था। इनकी कथा सिक्खों के आदि ग्रंथ में और भक्तमाल में कही गई है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने बड़े प्रतिभाशाली कवि की कोई दूसरी कृति हमें उपलब्ध नहीं है। फिर भी उनका गीतगोविंद ही इतना मधुर और सरस हुआ है कि उन्हें सदैव अमर बनाये रखने में समर्थ रहेगा। इस कवि की कीर्ति का प्रमाण है वह मेला जो इनके जन्म स्थान पर आज तक लगता चला आता है। उस मेले में रात भर उनकी कविताओं का गान होता है। १४६६ ई० में बंगाल के प्रतापरुद्र नामक राजा ने उस मेले में सम्मिलित होनेवाले नर्त्तकों और वैष्णव गायकों को आज्ञा दी कि वे सब जयदेव के पद्यों को कंठाग्र कर लें। सन् १२६२ में एक पद उनका अभिलेखों में अंकित हुआ था। जयदेव ने अपने को कविराज राज कहा है। इस बात का प्रमाण उनको अपने ही देश की प्रतिष्ठा से प्राप्त होता है। अपने देश के अतिरिक्त सर विलियम जोंस के अनुवाद द्वारा उनकी कीर्ति जर्मनी तक पहुँच गई और महाकवि गोटे ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

जयदेव की कविता सर्वथा मौलिक है। जोंस साहब के अनुसार उसमें ग्रामीण नाटक तथा लैसन साहब के अनुसार उसमें गीति नाट्य का स्वरूप मिलता है। श्रोडर साहब ने उसका नाम यात्रा रक्खा है। पिशल और लेवीन उसे गीत और नाटक के बीच में रक्खा है; किन्तु कवि ने जिस रूप में वह काव्य लिखा है उससे उसको स्वरूप स्पष्ट है उन्होंने उसे सर्गों में बाँटा है। इससे स्पष्ट है कि वह एक काव्य है, नाटक नहीं। अन्यान्य कवियों के काव्यों और इस काव्य में अंतर है। अन्यान्य कवियों के काव्य गेय हैं और संभवतः उनमें ताल-लय का आरोप भी किया जा सकता है; किन्तु उन काव्यों में गेयता से अधिक श्रव्यता है। पर जयदेव का काव्य सोलहो आने गेय है और वह ताल-लय समन्वित है। कवि इसमें इस ढंग से गीतों की रचना करता है जैसे राधा और कृष्ण उसके मस्तिष्क के समक्ष ही अपनी सारी लीलाएँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


कर रहे हों। ऐसे सजीव गीतों में काव्य की सृष्टि करना संस्कृत साहित्य में एक नवीन काव्य-पद्धति का निर्माण करना था।

इस काव्य के नायक हैं रसिकराज श्रीकृष्ण और नागरी राधा उसकी नयिका है। इस काव्य में कवि की सबसे बड़ी विशेषता है श्रव्य और गेय पदों का अत्यन्त स्वाभाविक मिश्रण। प्रत्येक गीत के प्रारम्भिक पद्य श्रव्य हैं; किन्तु गीत ताल-लय समन्वित और प्रत्यक्ष से भाव चित्रित करनेवाले हैं। इस प्रकार इस काव्य में गीत और श्रव्य पद्यों का सरस मिलन है जिससे काव्य में एकरसता नहीं आने पाती। बड़े आश्चर्य का विषय है कि विद्यापति, सुर, नन्द आदि महाकवियों ने भी जयदेव की इस विशेषता की ओर दृष्टि नहीं दौड़ायी। उन्होंने केवल गीत काव्यों का ही सृजन किया, बीच-बीच में श्रव्य पद्यों से एकरसता हटाने का प्रयत्न नहीं किया। इसीलिए कभी-कभी सूरसागर का देर तक पाठ करने पर तबीयत ऊब-सी जाती है।

इस काव्य में बारह सर्ग और चौबीस प्रबंध हैं। प्रथम सर्ग में चार प्रबंध हैं। प्रारम्भ के पद्यों में कवि ने अपना और अपने साथियों का परिचय दिया है। उसके बाद पहले प्रबंध में भगवान् श्रीकृष्ण के दशावतारों की चर्चा की गई है। दूसरे प्रबंध में श्रीकृष्णचन्द्र के महत्त्व, सौन्दर्य और भक्तिवत्सलता की चर्चा की गई है। तीसरे प्रबंध में राधा की सखी अत्यन्त मधुर गीतों में श्री कृष्ण के वासंतिक विहार का वर्णन करती है। चौथे प्रबंध में राधिका की सखी श्रीकृष्ण को दिखलाती हुई गोपियों के साथ उनकी शृंगार चेष्टाओं का वर्णन करती है। दूसरे सर्ग के प्रारंभिक पद्य में राधिका कृष्ण की ओर लक्ष्य करके सखी से कहती है। यह पाँचवाँ प्रबन्ध है। इस गीत में राधिका ने कृष्ण से मिलने की अभिलाषा बड़े ही मधुर शब्दों में अभिव्यंजित की है। छठे प्रबंध के गीत में भी राधिका ने अपनी सखी से कृष्ण से मिलाने की प्रार्थना की है। तीसरे सर्ग में कृष्ण भी राधा से मिलने के लिए व्रज की सुन्दरियों को छोड़कर यमुना के किनारे आकर विषाद करने लगते हैं। सातवें प्रबन्ध के गीत में इसी विषाद का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग के प्रारंभिक पद्य में राधिका की सखी प्रेम से उद्भ्रान्त श्रीकृष्ण से राधिका का विहर-वर्णन करती है। इस गीत में कवि ने अपनी स्वाभाविक, सरल, मधुर और धाराप्रवाहिक भाषा में विरहिणी राधिकी की चेष्टाओं की बड़ी मार्मिक व्याख्या की है। राधिका का यह विरह-वर्णन नवें प्रबन्ध में भी चलता रहता है। पाँचवें सर्ग के प्रारंभिक पद्य में श्रीकृष्ण राधा की सखी से उसे मनाकर अपने पास लाने की प्रार्थना की करते हैं। इसलिए दशवें प्रबंध के गीत में राधिका की सखी उससे कृष्ण की विरह-वेदना का वर्णन करती है। ग्यारहवाँ वें प्रबन्ध में श्री कृष्ण के स्थान इत्यादि का निर्देश कर राधिका से शीघ्र उसके पास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding by MoE-Grant-2


चलने की प्रार्थना करती है। छठें सर्ग के प्रारम्भ के पद्य में विरहिणी राधा चलने में असमर्थ बतलाई गई है। इसलिए दूती को फिर श्रीकृष्ण के पास जाकर राधा की शारीरिक अवस्था का वर्णन करना पड़ा है। सातवें सर्ग के प्रारंभिक पद्य में चन्द्रोदय का वर्णन है और उसके पश्चात् चंद्रकिरणों से संतप्त राधिका की विरहावस्था का वर्णन है। इसी समय में अपनी सखी को बिना कृष्ण के आती हुई देखकर वह विकल होकर विलाप करने लगती है। उसके मन में यह शंका हो जाती है कि कृष्ण कदाचित् और नायिकाओं के साथ रमण करने जा रहे है। इस प्रकार चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें प्रबन्धों में राधिका का विलाप ही वर्णित हुआ है आठवें सर्ग के प्रारम्भ में यह पता चलता है कि श्रीकृष्ण प्रभातकाल में राधिका के पास आते हैं। इसलिए १७ वें प्रबन्ध में राधिका के उपालंभों का वर्णन है। नवें सर्ग में राधिका की सखी राधिका से मान त्यागकर कृष्ण से मिलने का उपदेश देती है। १८ वें प्रबन्ध में इसी उपदेश का वर्णन है। १० वें सर्ग में राधिका और कृष्ण के संध्याकालीन मिलन का वर्णन है। १६ वें प्रबन्ध में कृष्ण राधिका से मिलन की इच्छा प्रकट करते हैं। ११ वें सर्ग में राधा की सखी उसे प्रसन्न कर उसे श्रीकृष्ण के पास ले जाती है। २० वें प्रबन्ध में सखी के इस उपदेश का गीत के रूप में वर्णन है। २१ वाँ प्रबन्ध भी इसी सर्ग में है। इस प्रबन्ध में सखी राधिका को सब प्रकार से सुसज्जित होकर कृष्ण के साथ प्रेमक्रीड़ा करने का उपदेश देती है। २२वें प्रबन्ध में श्रीकृष्ण राधा को देखकर प्रसन्न होते हैं। १२ वें सर्ग में श्रीकृष्ण पल्लव शय्या पर सोई हुई राधिका से बातें करते हैं। २४ वें प्रबन्ध में राधा और कृष्ण का प्रेम-संभाषण होता है और इस प्रकार यह गीत-गोविंद काव्य समाप्त होता हैं।

साहित्य की दृष्टि से विचार करने पर यह काव्य बड़ा ही अनूठा है। न तो यह विशुद्ध काव्य है, न केवल मुक्तक गीत ही है, न नाटक ही है और फिर भी सब कुछ है। इसीलिए यूरोपीय आलोचकों को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इसका नामकरण करने का अवसर मिल गया है। इसमें जीवन का एक खण्ड चित्रित है, जिसे संभोग और विप्रलंभ शृंगार की अवस्था कह सकते हैं। इसे सांसारिक विलास के अर्थ में भी ले सकते हैं और पूर्ण भक्तों के लिए यह भगवान् की अमृतमयी लीला भी हो सकती है। यह एक सामान्य सांसारिक प्रेम का वर्णन भी है और साथ ही जीवात्मा और परमात्मा के पारस्परिक संबंध का रहस्यात्मक चित्रण भी। इस प्रकार अभी तक संस्कृत के जितने काव्य लिखे गये थे उनसे यह सब तरह से विचित्र है। छोटा होने पर भी यह काव्य अपने साहित्यिक गुणों के कारण बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जिस तरह कालिदास का 'मेघदूत' छोटा होने पर भी अपनी साहित्यिक गरिमा के कारण महाकाव्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


के समक्ष रखा जाता है उसी तरह 'गीतगोविन्द' भी अपनी साहित्यिक गरिमा के कारण बड़े-बड़े महाकाव्यों से भी अधिक प्रसिद्ध हो चुका है। डाक्टर कीथ के निम्नलिखित वाक्य जयदेव के काव्य के संबंध में सर्वथा सत्य हैं—

Jayadeva"s work is a masterpiece, and it surpasses in its completeness of effect any other Indian poem. It has all the perfection of the miniature word-pictures which are so common in Sanskrit poetry, with the beauty which arises as Aristotle asserts from magnitude and arrangement. All the sides of love, save that of utter despair and final separation, are brilliantly described; all the emotions of longing, of awakened hope, of disappointment, of hot anger against the unfaithful one, of reconciliation, are portrayed by the actors themselves or Radha's friend in songs which are perfect in metrical form and display at its highest point the sheer beauty of words of which Sanskrit is prieminently capable. The result, however of this achievement is to render any translation useless as a substitute for the original; if it be untranslatable is a proof of the attainment of the highest poetry Jayadeva has certainly claimed to that rank.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# गद्य साहित्य की उत्पत्ति और विकास

संस्कृत भाषा का प्रारंभिक स्वरूप हमें छंदोवद्ध ही मिलता है। ऐसा तो कहा नहीं जा सकता कि भाषा का प्रारंभ छंदों-वद्ध से ही होता है; क्योंकि छन्दों का बन्धन कृत्रिम और अध्ययन साध्य है। स्वाभाविकता है छंदमुक्त स्वच्छन्द गद्य के प्रयोग में ही। अतएव ऋग्वेद के छंदात्मक स्वरूप की उत्पत्ति के समय तत्कालीन आर्यों में किसी-न-किसी प्रकार का गद्य अवश्य प्रचलित रहा होगा; किंतु आज हमें उसका पता नहीं है। यदि हम उसके स्वरूप का कुछ अनुमान करना चाहते हैं तो ऋग्वेद के पद्यों का अन्वय कर ही कुछ उसका आभास पा सकते हैं; किंतु गद्य का प्रयोग अधिक दिनों तक रुका नहीं रहा। यजुर्वेद में गद्य का प्रयोग हमें अवश्य मिलता है; पर वह साहित्यिक नहीं है, बिल्कुल व्यवहारात्मक है। इसलिए उसे साहित्य के नमूने की तरह पर व्यवहृत नहीं कर सकते। ब्राह्मणों में गद्य का बहुत-कुछ उपयोग किया गया; किंतु उनमें भी गद्य का व्यवहारात्मक स्वरूप ही अधिक दृष्टिगोचर होता है। परिष्कृत और अलंकृत गद्य का उनमें पता नहीं लगता। उपनिषदों में गद्य का व्यवहार है। इनमें स्थान-स्थान पर साहित्यिकता है पर ऐसे स्थल बहुत कम हैं। गृह्य, धर्म और स्रौत सूत्रों में गद्य का स्वरूप मिलता है पर उसमें भी व्यवहारात्मकता विशेष और साहित्यिकता बहुत कम है। इस प्रकार वैदिक संस्कृत में गद्य का प्रचुर प्रयोग होने पर भी उसका साहित्यिक रूप नहीं निखर पाता। लौकिक संस्कृत में भी गद्य-साहित्य बहुत-कुछ उपेक्षित रहा है। कुछ पुराणों में यत्र-तत्र गद्य का प्रयोग हुआ है। श्रीमद् भागवत के भी पंचम स्कंध में गद्य का स्वरूप मिलता है; किन्तु वह पद्य साहित्य के समान सुशक्त और समर्थ नहीं है।

अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और कामशास्त्र में गद्य का उपयोग हुआ है; किन्तु अभी तक जितना साहित्य इन शास्त्रों में निरूपित हुआ है, उतना पूर्णतया साहित्यिक नहीं मिला। गद्य का साहित्यिक स्वरूप हमें पहले-पहल विष्णुशर्मा के पंचतंत्र में ही मिलता है। उसके पश्चात् तो तन्त्रों और कथाओं की झड़ी लग गई और गद्य का साहित्यिक स्वरूप निर्मित होने लगा। इस प्रकार गद्य में वास्तविक साहित्य का समारंभ हो गया। पंचतंत्र के अतिरिक्त हितोपदेश की रचना सरल और सुन्दर साहित्यिक भाषा में हुई। इस प्रकार गद्य के प्रारंभिक स्वरूप के निर्णय के लिए हमें पंचतंत्र और हितोपदेश की ओर ही दृष्टि डालनी पड़ेगी।

पंचतंत्र किस काल की रचना है, यह बतलाना आसान नहीं है। पंचतंत्र की कथाओं का उद्गम वैदिक कथाओं के अनुकरण से हुआ होगा। ऋग्वेद में पुरुरवा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


और उर्वशी का वृतान्त शतपथ ब्राह्मण में शुनःशेप की कहानी तथा इसी तरह की अन्यान्य कहानियाँ-कहानियों की उत्पत्ति और विकास का कारण बनी होंगी। महाभारत में कुछ पशु-पक्षियों की कहानी मिलती है। संभव है, पंचतंत्र की कहानियों में उन्हीं की देखा-देखी पशु-पक्षियों का प्रवेश कराया गया होगा। इस तरह की कहानियाँ पंचतंत्र और हितोपदेश में विशेष मिलती हैं; किंतु कहानी अपने पूर्ण रूप में केवल पशु-पक्षियों की ही कहानी नहीं है, अपने पूर्ण स्वरूप में इसका उद्देश्य शिक्षाप्रद होता है और वह निश्चित रूप से उस कहानी से व्यक्त होता रहता है। बहुत-सी कहानियाँ एक ही कहानी से बँधी रहती हैं और उनमें मनुष्य के विचार और कर्म पशु-पक्षियों के ऊपर आरोपित किये जाते हैं; किन्तु बहुत-सी कहानियाँ उपदेश हीन होती हैं और उनमें सीधी-सादी जनता के साधारण भाव प्रकट किये जाते हैं। जो कहानियाँ प्रेम से सम्बन्ध रखती हैं, उनमें राजकुमारों और राजकुमारियों के प्रेम का सम्बन्ध रहता है; किन्तु जिनमें पशु-पक्षियों का संबंध रहता हैं, उनमें सामान्यनीति के नियम, बुद्धि की तीव्रता, जीवन के व्यवहारों में कुशलता इत्यादि का वर्णन रहता है।

**पंचतंत्र**—पशु-पक्षियों से संबंधित कथाएँ संस्कृत में पंचतंत्र में कही गई हैं। पञ्चतंत्र का असली रूप तो गायब हो गया। पञ्चतंत्र एक ऐसा ग्रंथ है जिसका इतिहास विश्व-साहित्य में किसी भी ग्रंथ से अधिक चित्ताकर्षक है। पंचतत्र के प्रारम्भ से ही साहित्य का प्रारम्भ हो जाता है। इस ग्रंथ में ५ भाग हैं—मित्रभेद, मित्रलाभ, सन्धिविग्रह, लब्धनाश और अपरिक्षितकारिता; किन्तु ये सब कहानियाँ प्रस्तावना के रूप में परस्पर मिला दी गई हैं। पंचतंत्र की कहानियाँ सर्वसाधारण की कथाओं के समान सरल पर सुंदर गद्य में कही गई हैं। बहुत-सी कहानियाँ एक साथ जोड़ दी गई हैं; किन्तु उनके जोड़ने में, एकता लाने में बहुत कुछ चतुरता प्रदर्शित हुई है। ब्राह्मणों और जातकों से इन कहानियों को बहुत कुछ सहायता मिली है। इन कथाओं में स्थान-स्थान पर सुन्दर-सुंदर श्लोक जड़े होते हैं। पञ्चतंत्र का एक ही स्वरूप नहीं है। इसके कई रूप पाये जाते हैं जो भिन्न-भिन्न स्थानों पर रखे गये हैं। पंचतंत्र का मौलिक रूप अपने पहलवी अनुवाद के समय अर्थात् ५७० ई० तक था; किंतु अब उसका पता नहीं है। उसकी कथावस्तु, तारीख तथा स्थान की बात हमलोगों को मालूम नहीं है। हर्टल, और एडगर्टन ने तरह-तरह के मिलनेवाले रूपों की तुलना करके उसके मूल रूप को निकालने का प्रयत्न किया था। इस पंचतंत्र की रचयिता विष्णुशर्मा कहा जाता है। उसने महिलारौप्य नामक नगर के अमरशक्ति नामक राजा के पुत्रों के उपदेश के लिए कहानियों का लिखा जाना बतलाया है। पंचतंत्र के मुख्य चार स्वरूप मिलते हैं। पहला उसका पहलवी रूप था जो अब नहीं मिलता। इसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



रूप से सीरिया और अरब के पंचतंत्रों की कहानियाँ हैं। पंचतंत्र की कहानियाँ इसी रूप से होकर यूरोप के साहित्य में पहुँची हैं। उसका दूसरा रूप गुणाढ्य की वृहद्कथा में मिलता है। क्षेमेंद्र और सोमदेव ने भी पंचतंत्रों के आधार पर वृहत् कथामंजरी और कथा सरित्सागर लिखा है। इसका चौथा रूप नेपाल और बंगाल का हितोपदेश है। हितोपदेश बंगाल में अधिक प्रचलित था। यह एक स्वतन्त्र ग्रंथ था और कामंदकीय नीतिशास्त्र से प्रभावित था। इस पञ्चतन्त्र में कहानियाँ सुन्दर और सरल हैं। उनसे यह पता चलता है कि उसका लेखक वर्णन करने में परम निपुण है। वह एक संसारी आदमी है। उसने मानव-जीवन को अच्छी तरह देखा है और नीति-सम्बन्धी विषयों से जीवन का सम्बन्ध स्थापित किया है। इस प्रकार पंचतंत्र बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ था और इसे संसार के साहित्य में स्थान दिया जाता है।

**गुणाढ्य की वृहत् कथा**—गुणाढ्य की वृहत् कथा पैशाची प्राकृत में लिखी गई थी। इसका समय ठीक-ठीक नहीं बतलाया जा सकता। सुबंधु और बाण ने ६०० ई० के आसपास इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। संभवतः यह ईसा की चौथी सदी का होगा। मौलिक वृहत् कथा के आकार का पूरा-पूरा पता नहीं है। मूल वृहत् कथा का विस्तार कितना था; यह भी नहीं बताया जा सकता। वृहत्-कथा मंजरी को क्षेमेंद्र ने और कथा सरित्सागर को सोमदेव ने १०६३ से १०८२ ई० के बीच में लिखा। सोमदेव के ग्रंथ के समान क्षेमेंद्र के ग्रंथ लंभक कहे जाते हैं। इसमें ७५० श्लोक हैं; किन्तु सोमदेव का ग्रंथ २१००० श्लोक में लिखा गया है। क्षेमेन्द्र ने संक्षेप में बहुत से भाव प्रकट करने का प्रयत्न किया है। वृहत् कथा श्लोक संग्रह बुद्धस्वामी का रचा हुआ है; किंतु वह बहुत कुछ अधूरा है। फिर भी उसमें बुद्धस्वामी ने भी श्लोकों ही में लिखा है जिसमें ४५२९ श्लोक है। कुछ लोगों का विश्वास था कि क्षेमेंद्र के पंचतंत्र का स्वरूप और १८६३ में प्राप्त नेपाल की सामग्री वृहत्-कथा श्लोक-संग्रह ही था। यह ग्रंथ ८ वीं या ९वीं शताब्दी का हो सकता है। वृहत्-कथा के भिन्न-भिन्न संस्कृत रूपों में उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त की कथाएँ कही गयी हैं।

चंचल स्त्रियों की कहानी के अन्त में इस नरवाहन दत्त ने मदनमंजूषा नामक किसी देवकन्या से विवाह किया है और विद्याधरों के देश का साम्राज्य प्राप्त किया; किन्तु मदनमंजूषा को प्राप्त करने के पहले वह बहुत से देशों में भ्रमण करता है तथा असंख्य सुन्दरियों के साथ विवाह करता जाता है। काश्मीर के ग्रन्थों में और नेपाल के ग्रन्थ में कथाओं के रूप में कुछ महत्त्वपूर्ण भेद है। जहाँ के दो ग्रन्थों वृहत्कथामंजरी और कथा सरित्सागर—में बहुत सी कथायें ऐसी मिलती हैं जो मूल कथा से विशेष सम्बन्ध नहीं रखतीं, वहाँ नेपाल के वृहत्कथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



श्लोक संग्रह में मूल कथा के ही ऊपर ध्यान रखा गया है। असम्बद्ध कथाओं के ऊपर नहीं। इन तीनों ग्रन्थों के आधार पर मूल ग्रन्थ अर्थात् गुणाढ्य की बृहत्कथा के दोष गुणों का विचार करना कठिन है। कथासूत्र एक होने पर भी वर्णन शैली, भाषा, संग्रहों में हेरफेर आदि से मूल कथा के वास्तविक स्वरूप और उसके गुण दोषों का अनुमान करना कठिन है; किन्तु यदि हम केवल इन तीनों ग्रंथों में पायी जानेवाली कथाओं के रूपों पर ही ध्यान दें तो भी गुणाढ्य एक महान् कथाकार प्रतीत होता है। यद्यपि नरवाहनदत्त राजकुमार हैं, फिर भी कथायें राजदरबारों के ही घेरे में सीमित, नहीं रहतीं और न इसमें केवल युद्ध या वीरता संबंधी कथायें ही कही गई हैं। इसमें सामान्य जनता के जीवन चित्र प्राप्त होती हैं। इसमें मानव-जीवन के भिन्न-भिन्न चित्र प्राप्त होते हैं। जिनसे बहुत शिक्षाएँ, प्राप्त होती हैं। सारा ग्रंथ आनन्द, उल्लास, विनोद, और आश्चर्य आदि मनोभावों से भरा है और गुणाढ्य की कहानी-कला का यह एक उज्ज्वल प्रमाण है।

**हितोपदेश**—हितोपदेश का प्रचार प्रायः बंगाल में ही है। यह एक प्रकार से स्वतंत्र ग्रंथ है। इसका संग्रहकर्त्ता नारायण नामक कोई व्यक्ति था। इस संग्रह में ५ तंत्र नहीं हैं, बल्कि ४ ही हैं। नारायण का आश्रयदाता धवलचंद्र था जो १३७३ ई० के पहले था। इसमें सन्देह नहीं कि ये कहानियाँ पंचतंत्र से ही ली गई हैं; किंतु नारायण ने किसी ऐसे ग्रंथ की सहायता से, जिसका हमें पता नहीं है, इन कहानियों में से कुछ को हटा दिया है, कुछ को बदल दिया है, कुछ का परिष्कार कियां है और कुछ में कुछ नये उपदेश कामनंदकीय नीतिशास्त्र से लेकर मिला लिया है। इस प्रकार यह हितोपदेश पंचतंत्र का एक स्वरूप होते हुए भी उससे बहुत भिन्न है।

**सिंहासनद्वात्रिंशिका**—यह कहानी संग्रह बहुत आकर्षक तो नहीं है पर राजा भोज और विक्रमादित्य के संबंध में होने के कारण इसका काफी प्रचार हुआ। इसमें ३२ कहानियाँ हैं। कहा जाता है कि किसी टीले को खोदने पर धारा के राजा भोज को एक सिंहासन मिला। यह राजा ११ वीं सदी में हुआ था। जब वह सिंहासन पर बैठने लगा तो उस सिंहासन में लगी हुई ३२ पुतलियों ने एक-एक करके उसे मना किया। राजा को मना करते समय विक्रमादित्य के महत्त्व को सूचित करने के लिए उनमें से प्रत्येक ने एक-एक कहानी कही। इन्हीं कहानियों का संग्रह उपर्युक्त नाम से प्रसिद्ध है। डाक्टर कीथ के अनुसार ये कहानियाँ बहुत आकर्षक नहीं हैं। इस पुस्तक की कहानियों के प्रारंभ और अंत में वर्णनात्मक पद्य हैं। इसके गद्य भाग के बीच में भी शिक्षाप्रद पद्य भरे गये हैं। यह ग्रंथ वैताल पंचविंशति से पीछे का प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये कहानियाँ धारा के राजा भोज के समय की लिखी हुई नहीं हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



**वैतालपंचविंशतिका**—इस ग्रंथ का विषय बृहत्कथामंजरी और कथा सरित्सागर दोनों ही में पाया जाता है। एक संग्रह शिवदास के द्वारा किया गया है जो गद्य और पद्य दोनों ही में है। यह ग्रंथ सिंहासन द्वात्रिंशिका से पहले का मालूम होता है।

**दशकुमारचरित**—दशकुमारचरित के रचयिता दण्डी कवि कहे जाते हैं। दण्डी का एक अलंकार ग्रंथ भी है काव्यादर्श। दण्डी का समय अभी विवादग्रस्त है। यदि उनके काव्यादर्श पर विचार न करें तब तो उनके समय का निर्णय करना और भी कठिन हो जायगा। यदि हम काव्यादर्श को भामह से पहले रक्खें तो दशकुमारचरित के भूगोल से हमें यह पता चलेगा कि यह श्रीहर्ष के समय के पहले का है। दण्डी की शैली से भी यह बात प्रमाणित होती है कि वह सुबंधु और बाण से पहले के हैं। ऐसी कोई बात दण्डी के ग्रंथों में नहीं मिलती जिससे हम उनको सुबंध और बाण से पीछे रक्खें। दशकुमारचरित की कथावस्तु गुणाढ्य के ग्रंथ को ही आदर्श मानकर निश्चित की गई है। इस ग्रंथ में दण्डी ने जिन दश कुमारों के चरित्र का चित्रण किया है, उनके साहस का कार्य नरवाहनदत्त के कार्यों के समान हैं। इसमें ८ उच्छ्वास हैं। पाटलिपुत्र के राजा राजहंस और उसकी रानी वसुमती की कथा से प्रारंभकर कवि ने उनके पुत्र और उनके मंत्रियों के पुत्र-पौत्रों के चरित्र का वर्णन किया है। यह राजहंस मालव के राजा से परास्त हो गया था; किन्तु उसके पुत्र ने अपने मंत्रि-पुत्रों के साथ मिलकर मालेवश्वर को परास्त किया और अपना राज्य फिर प्राप्त किया। बीच में इन कुमारों ने पृथक्-पृथक् देशों में जाकर जो कार्य किये उसका उसमें पूरा-पूरा वर्णन दिया गया है।

दशकुमार चरित्र में प्रेम कथा, जुआ खेलना और सांसारिक व्यसनों में फँसना इत्यादि विषय प्रधानतया आते हैं। दण्डी ने ऐसे चरित्र के लोगों का बड़ा ही सजीव चित्र अंकित किया है। इसमें विस्मय, जादू, राजकुमारियों को वशीकरण करने आदि का वर्णन है; किंतु कुमार राजवाहन के मित्रों में से ७ के चरित्रों का वर्णन करना दण्डी का प्रधान लक्ष्य है। दण्डी ने अपने काव्यादर्श में लिखा है कि काव्य का विषय अच्छा होना चाहिए और उसके पात्र धीरोदात्त होना चाहिए; किंतु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस कथाग्रंथ को लिखते समय उन्होंने इसपर ध्यान नहीं दिया। इस ग्रन्थ में जुआ, सेंध देना, धूर्तता, धोखेबाजी, हिंसा, हत्या, वेश बदलकर ठगना, लड़कियों को भगाना, अनुचित रूप से प्रेम करना ये सब विषय बड़े ही चित्ताकर्षक ढंग से वर्णित हुए हैं। दशकुमार चरित्र एक कल्पित कथा है; किंतु यह आधुनिक यूरोप की सजीव कहानियों की तरह लिखा गया है। यह व्यंग्यात्मक नहीं है, फिर भी इसमें कुछ-न-कुछ व्यंग्य का भाग है ही। इसीलिए दण्डी ने जान-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



बूझकर इसकी घटनाएँ ऐसे नगरों में रक्खी हैं जहाँ संसार के बुरे आदमी मिला करते थे। दण्डी ने देवलोक, राजकुमारों और ब्राह्मणों को भी बहुत प्रतिष्ठा नहीं दी है। इस ग्रंथ में आदर्श के बदले यथार्थ वाद बहुत अधिक है। इसमें हास्य, व्यंग्य और नाट्य बहुत-कुछ है।

दण्डी एक स्वाभाविक लेखक है। उसकी लेखन-शैली में थकानेवाली जटिलता नहीं है। इसमें ओज और सौन्दर्य के लिए विशेष स्थान है। दण्डी का सबसे बड़ा महत्त्व इस बात में है कि उसकी भाषा ओजपूर्ण और सुन्दर है। यह ग्रंथ कलात्मक और समाज को ललकारनेवाला है। इसलिए उसकी योग्यता के सम्बन्ध में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए।

**सुबन्धु**—सुबन्धु के बारे में भी हमारा ज्ञान विशेष नहीं है। सुबन्धु की चर्चा सबसे पहले हर्षचरित्र के प्रारंभ में महाकवि बाण ने की है वह यों है—

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥

अर्थात् वासवदत्ता के द्वारा कवियों का अभिमान निश्चय ही नष्ट हो गया जैसे कि इन्द्र के द्वारा दी हुई कर्ण की शक्ति से पाण्डु पुत्रों का दर्प नष्ट हो गया। सुबन्धु का नाम वाक्पतिराज ने गौड़वहों में भी लिया है। शेष पूर्ण पद लिखने में उसकी विशेष ख्याति है। सुबन्धु बाण से अवश्य ही पहले हुआ है। उसने उद्योतकार धर्मकीर्त्ति की चर्चा की है। इससे स्पष्ट है कि वह ७वीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। अतः वह बाण का समकालीन रहा होगा; किन्तु उसकी वासवत्ता बाण के हर्षचरित और कादम्बरी से पहले लिखी गयी होगी

वासवदत्ता का नाम भारतीय साहित्य में बहुत विख्यात है। यह ग्रंथ कथा है या आख्यायिका है, यह कहना कठिन है; किन्तु यथार्थ में कथा और आख्यायिका में कोई वास्तविक भेद भी नहीं है। अतः इसे कथा कहा जाय या आख्यायिका कोई विशेष अंतर नहीं आता। आख्यायिका अपने नायक के द्वारा ही कहीं जाती है। वह उच्छ्वासों में बैठी रहती है और इसमें वक्त्र तथा अपर-वक्त्र छंदों का जहाँ-तहाँ उपयोग किया जाता है, इसकी कहानी कादम्बरी से बहुत-कुछ मिलती है, इसलिए इसे कथा ही कहना ठीक होगा। इसमें कहानी विशेष नहीं है; किन्तु भाषा और शब्द के उपयोग में चतुरता बहुत हैं।

इसकी कथा यों है—राजा चिंतामणि को एक सुन्दर पुत्र था। जिसका नाम कंदर्पकेतु था। उसने स्वप्न में एक ऐसी कन्या देखी जो उससे भी बढ़कर सुन्दर थी।—उसकी नींद टूट गई और अपने मित्र मकरन्द के साथ वह उस अनजान कन्या के साथ निकल पड़ा। विंध्य वन में जाने पर रात के समय वह राजपुत्र जब चिंतित होकर जग रहा था तो उसने एक मैना पत्ती को अपने पति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


से बातें करते हुए सुना। मैना पक्षी ने कहा कि हे प्रिये! आज मुझे इसलिए देर हो गई कि मैंने शृंगारशेखर राजा की उस वासवदत्ता नामक लड़की को देखा जिसने स्वप्न में एक सुन्दर युवक को देख लिया है और उसके प्रेम में व्याकुल हो गई है। उसने अपनी सखी तमालिका को उस युवक से मिलने के लिए भेजा है। पाटलिपुत्र में वह सखी उस लड़के को आसानी से देख सकती है; किन्तु राजा उसकी शादी विद्याधरों के राजा पुष्पकेतु से तुरत कर देना चाहता है। वह राजकुमार जाकर उस राजकुमारी से मिलता है और उसको लेकर जादू के घोड़े पर चढ़कर विंध्यवन में चला जाता है। वहाँ वे दोनों सो जाते हैं और जब राजकुमार जगता है तो अपनी प्रेमिका को नहीं पाता है। विपत्ति का मारा हुआ वह राजकुमार वर्षों तक इधर-उधर घूमता रहता है। अन्त में एक जगह पहुँचने पर एक मूर्ति को छू देता है जिससे वह जीवित हो उठती है और उसे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि यह उसकी प्रियतमा वासवदत्ता ही है। इसके पश्चात् कंदर्पकेतु उसे लेकर आनन्दपूर्वक अपनी राजधानी में रहने लगता है।

कहानी की कथावस्तु सीधी-सादी है और इसमें कोई विशेष चमत्कार नहीं है। जो कुछ वासवदत्ता में सौन्दर्य है वह पर्वत, नदी, झरने, राजकुमार का शौर्य, राजकुमारी के सौन्दर्य, युद्ध, अभिशाप इत्यादि के वर्णन में हैं। चरित्र-की उच्चता का विशेष ध्यान नहीं रखा गया है। सुबन्धु का सबसे बड़ा गर्व यह है कि उसने ऐसी रचना की है जिसके प्रत्येक अक्षर में श्लेष है। इसमें गद्य और पद्य दोनों ही हैं मगर दोनों ही के शब्दों में श्लेष है। इसके अतिरिक्त उसकी रचना में वास्तविक संगीत है, अनुप्रासों में मनोरम ध्वनि है और श्लेषों में सुन्दर औचित्य है। वासवदत्ता में गौड़ी शैली का प्रयोग किया गया है। इसीलिए इसमें बड़े-बड़े समास हैं, वर्णन में अतिशयोक्ति है, अनुप्रासों की अधिकता है और शब्द और अर्थ में सामंजस्य है। सबसे बड़ी विचित्रता सुबन्धु में यह है कि वह बहुत बड़े-बड़े वाक्यों का निर्माण करने में दक्ष है।

**महाकवि बाणभट्ट**—यह सौभाग्य की बात है कि बाणभट्ट ने हर्षचरित के ढाई उच्छ्वासों में अपने वंश का तथा अपना परिचय दिया है। वह वात्स्यायन-वंश का ब्राह्मण था। उसके परदादा का नाम पशुपति, दादा का नाम अर्थपति और पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राज्यदेवी था। उसकी माता का देहान्त उसकी कम उम्र में ही हो गया था और चौदह वर्ष की उम्र तक उसके पिता ने ही उसका लालन-पालन किया था। कादम्बरी में जो उसने सुग्गे के बच्चे की कहानी लिखी है उसमें बहुत-कुछ उसका अपना अनुभव भी मिला हुआ है। पिता की मृत्यु के बाद बाण तरह-तरह के लोगों से मिलता रहा। युवावस्था में ही वह बहुत दूर-दूर तक भ्रमण करता रहा और अंत में अपने निवासस्थान


RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


प्रीतिकूट ( आधुनिक शाहाबाद जिले का पियरो ग्राम ) में लौट आया। अपने स्थान पर रहते समय उसे महाराज हर्षवर्द्धन के भाई कृष्ण का पत्र मिला। कृष्ण का पत्र पाकर बाण हर्ष से मिला ; किंतु राजा ने उसका विशेष आदर नहीं किया। फिर भी बाणभट्ट वहाँ से हटा नहीं और अंत में राजा का स्नेह-पात्र बन गया। बस, निश्चित रूप में बाण के संबंध में इतना ही मालूम है।

हर्षचरित की रचना के बारे में उसका कहना यह है कि जब वह घर लौटकर गया तो उसके ग्रामवासियों ने उससे राजा का चरित्रवर्णन करने के लिए कहा और उन्हीं की प्रार्थना से यह ग्रंथ लिखा गया; किन्तु यह ग्रंथ अधूरा ही है और उसकी कादम्बरी भी अधूरी ही है जिसकी पूर्त्ति उसके पुत्र भूषण या पुलिन्दभट्ट ने की है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि बाण ने पहले कौन-सा ग्रंथ लिखा; किन्तु बहुतों का विचार है कि उसने पहले हर्षचरित लिखा। इन दो ग्रंथों के अतिरिक्त बाण के दो और भी ग्रंथ बतलाए जाते हैं जिनके नाम हैं चण्डी-शतक और पार्वती-परिणय ; किन्तु बहुतों के विचार में ये ग्रंथ १५वीं सदी के वामनभट्ट बाण के लिखे हुए हैं।

बाण ने हर्षचरित के पद्यों में सुबन्धु की वासवदत्ता की तारीफ की है। फिर हरिचंद, सातवाहन, प्रवरसेन, भास और कालिदास की कविता की तारीफ की है। उसके पश्चात् उसने बृहत्कथा की प्रशंसा की है। तदन्तर उसने अपने वंश का परिचय दिया है और फिर सम्राट् हर्ष से मिलने की चर्चा की है। आगे के उच्छ्वासों में उसने अपने भाई-बन्धुओं से हर्ष चरित का वर्णन किया है। हर्ष-चरित के प्रधान अंशों का उसने बड़े विस्तार के साथ चित्रण किया है। स्थाण्वीश्वर के महाराज पुष्पभूति और उनके साथी भैरवाचार्य के साहसपूर्ण कार्यों का वर्णन है। पुष्पभूति के पुत्र प्रभाकरवर्द्धन हुए। उनका प्रथम पुत्र राज्यवर्द्धन हुआ, दूसरा हर्ष और तीसरी पुत्री राज्यश्री हुई। राज्यश्री की शादी मौखरी वंश के ग्रहवर्मा से हुई। राज्यवर्द्धन और हर्ष हूणों के साथ युद्ध करने के लिए गये। इसी बीच में उनके पिता बीमार पड़े और उनकी मृत्यु हो गयी। पिता की मृत्यु के कुछ पहले ही ये दोनों भाई घर आ चुके थे। इनकी माता सती हो गयी और ज्यों ही ये पिता की प्रेतक्रिया कर निश्चित हुए कि राज्यवर्द्धन ने हर्ष को ही राज्य दे देना चाहा और स्वयं संन्यास लेने की इच्छा करने लगा। हर्ष ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसी समय उन्हें यह समाचार मिला कि मालवा के राजा ने ग्रहवर्मा को मार डाला है और राज्यश्री को कैद कर लिया है। हर्ष घर पर ही रह गया। उसे फिर यह समाचार मिला कि राज्यवर्द्धन ने मालव के राजा को परास्त कर लिया था; किंतु गौड़ के राजा ने धोखे से उसे मार डाला। हर्ष ने जाकर अपनी बहन को सती होने से बचाया। ऐतिहासिक दृष्टि से हर्षचरित की घटनाएँ पूरी-पूरी विश्वसनीय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


नहीं मालूम होतीं। फिर भी सेनाओं का सजीव चित्रण, राजदरबारों का जीवन, बौद्धों और हिन्दुओं के संबंध और ब्राह्मणों के कर्त्तव्य इत्यादि का जो सुन्दर वर्णन मिलता है, वह बड़ा ही मूल्यवान् है।

हर्षचरित आख्यायिका की कोटि में है; किन्तु कादम्बरी की गणना कथा में होती है। कादम्बरी में एक बड़ी लम्बी कथा है और उसमें कई कथाएं एक-दूसरे से मिलती हुई चलती हैं। इस ग्रंथ के प्रारम्भ में भी कवि ने कुछ पद्य लिखे हैं। उसके बाद विदिशा के राजा शूद्रक की कथा प्रारंभ करते हैं। कादम्बरी की कथा लम्बी है पर बहुत प्रसिद्ध है। इसलिए इसका इसमें वर्णन नहीं किया जाता। यह कहानी एक विचित्र ढंग की है। प्रेम का जो स्वरूप बाण ने इसमें अंकित किया है, वह बड़ा ही परिष्कृत और सुन्दर है। प्रेम का वास्तविक स्वरूप कादम्बरी और चन्द्रापीड़ में दिखाई पड़ता है। बाणभट्ट ने चरित्र-चित्रण में कमाल किया है। चन्द्रापीड़, विलासवती, शुकनास, पत्रलेखा इत्यादि छोटे-छोटे पात्रों के चरित्र भी उसने बड़े कौशल से अंकित किए हैं। बाण ने शूद्रक और चन्द्रापीड़ के दरबारों की तड़क-भड़क का जितनी खूबी के साथ चित्रण किया है, उतनी ही खूबी के साथ शाल्मली पर रहनेवाले सुग्गों का तथा जाबालि ऋषि के शान्त आश्रम का भी किया है। हिमालय, अच्छोदसरोवर, महाश्वेता के आश्रम इत्यादि का वर्णन उसने बड़े ही अपूर्व ढंग से किया है। उसने मानवकृति के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य का मिश्रण कर उनके अनुपम स्वरूप के वर्णन में अलौकिक क्षमता प्रदर्शित की है। शुकनास के उपदेश में तथा कपिंजल के द्वारा पुंडरीक को दिए गए उपदेश में उसने अपना नैतिक तथा राजनैतिक ज्ञान प्रकट किया है। मानव-हृदय के भावों का जिस सौन्दर्य के साथ कादम्बरी में चित्रण हुआ है, उतने सौन्दर्य के साथ हर्षचरित में नहीं। इससे स्पष्ट है कि कादम्बरी की रचना हर्षचरित से पीछे हुई है। बाण का पुत्र भी एक अच्छा गद्य-लेखक है; किंतु वह बाण के समान उच्च कोटि का नहीं है।

बाण के वाक्य बड़े-बड़े हैं और उनमें विशेषणों की भरमार है। बाण ने अलंकारों का इतना प्रयोग किया है मानों वह उनके प्रयोग से थकता ही नहीं है। उसका गद्य संगीतात्मक है। यद्यपि उसके वाक्यों में लम्बे-लम्बे समास भी हैं फिर भी उनके बीच-बीच में सरल शब्द रक्खे गए हैं। बाण में औचित्य का भाव बहुत कुछ है। जब उसकी इच्छा होती है तो वह छोटे-छोटे वाक्य भी लिख देता है और उन्हीं छोटे वाक्यों में अपूर्व ओज और रस भर देता है। जब कभी वह चाहता है तो संक्षेप में भी वर्णन कर देता है; किन्तु सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन उसे विशेष पसन्द है। बाण बहुत बड़ा विद्वान् था। संस्कृत साहित्य और भाषा पर उसका अपूर्व अधिकार था। वह अपने पूर्ववर्ती-गद्य-लेखकों से बहुत आगे बढ़ गया है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2


और उसकी कादम्बरी संस्कृत साहित्य की एक अपूर्व मणि है। इस ग्रंथ का किसी दूसरी भाषा में ठीक-ठीक अनुवाद करना असम्भव है।

## चम्पू

गद्य-साहित्य के भेदों में चम्पू भी एक है। चम्पू में गद्य और पद्य मिश्रित रहते हैं। गद्य-पद्य का मिश्रण तो दृश्य काव्य, आख्यायिका और कथा में भी रहता है, अतएव यदि गद्य और पद्य का मिश्रण ही चम्पू कहा जाय तो इनमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। दृश्य काव्य में तो अभिनय प्रधान रहता है, अतएव वह चम्पू नहीं हो सकता। चम्पू एक श्रव्य काव्य है जो कथा और आख्यायिका से भिन्न समझा जाता है; क्योंकि उसमें वर्णन प्रधान होता है जो कथा या आख्यायिका की शैली से भिन्न होता है। चम्पू में जो पद्य मिश्रित किए जाते हैं वे या तो उपदेशप्रद होते हैं या कहानी का सारांश बतलाते हैं या कथा की किसी विशेष महत्त्वपूर्ण बात को अधिक शक्तिशाली बनाते हैं।

चम्पू का जो सबसे पुराना रूप मिलता है वह 'दमयन्ती-कथा' या 'नल-चम्पू' में। इसके लेखक त्रिविक्रमभट्ट हैं। इनका समय ९१५ ई० है। इसमें नल-दमयन्ती की कहानी है। इसके वर्णन में बहुत बड़े-बड़े वाक्यों का प्रयोग हुआ है जिनमें विशेषणों, लम्बे समासों और श्लेषों तथा अनुप्रासों की अधिकता है। इसके लेखक ने बाण का उल्लेख किया है और सरस्वती कण्ठाभरण में इसका भी उल्लेख मिलता है। इसकी कविता साधारण कोटि की है। इसके अतिरिक्त बहुत-से चम्पू पीछे की शताब्दियों में लिखे गये। सोमदेव नामक किसी दिगम्बर जैन ने 'यशस्तिलक' नामक ग्रंथ लिखा। १७वीं सदी में नारायण ने 'स्वाहा सुधाकर' नामक चम्पू लिखा जिसमें अग्नि देवता और उनकी पत्नी स्वाहा का वर्णन हुआ है। इसी प्रकार वेंकटाध्वरि ने 'विश्वगुणादर्श चम्पू' नामक ग्रंथ भगवान् रामचन्द्र के चरित्र के संबंध में लिखा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# रूपक

यूरोप में साहित्य का जो भाग ड्रामा या नाटक कहा जाता है, भारत में उसको रूपक कहते हैं। अँग्रेजी भाषा के प्रचार के कारण हमने भी आज रूपक के अर्थ में नाटक का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है; किन्तु नाटक को रूपक के अर्थ में लेना ठीक नहीं है। रूपकों के दश भेद हैं और रूपकों से छोटे-छोटे उपरूपक होते हैं जिनके अठारह भेद हैं। नाटक इन सब में प्रधान है। इसीलिए लोग नाटक शब्द का रूपक के अर्थ में प्रयोग कर देते हैं। रूपकों का प्रचार भारत में कब और कैसे हुआ, यह एक बड़ा ही विवादास्पद विषय है। रूपकों की उत्पत्ति और विकास का इतिहास हमें ठीक-ठीक मालूम नहीं है। कारण यह है कि कालिदास, अश्वघोष और भास के नाटकों से पहले के नाटकों का हमें पता नहीं है। संस्कृत साहित्य में नाटकों की उत्पत्ति का जो वर्णन मिलता है, वह यों है—

श्रव्य काव्य को छोड़कर मनोविनोद का कोई अन्य साहित्यिक साधन न होने से ब्रह्माजी ने तीनों वेदों से कथावस्तु, संवाद और संगीत लेकर पचमवेद नाट्यशास्त्र की रचना की। उसी को आचार्य भरत ने ग्रहण किया। आधुनिक विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद में संवाद हैं, अतएव धार्मिक कारणों से उन सवादों के आधार पर रूपकों का विकास हुआ होगा।

ऋग्वेद के करीब पंद्रह सूक्त संवादात्मक हैं। उदाहरणार्थ १०-९५, १०-१०, १०-८६, १०-१०८ इत्यादि। इन संवादों से यह विदित होता है कि भारतीय रूपकों का सूक्ष्म स्वरूप ऋग्वेद से ही प्रारम्भ होता है। कुछ लोगों का यह कहना है कि ऋग्वेद के इन सूक्तों में जो पद्यात्मक संवाद हैं उनमें कुछ-न-कुछ गद्य अवश्य रहा होगा; किंतु समग्र ऋग्वेद पद्यात्मक होने से वह भाग उसमें से हटा लिया गया है। इन लोगों के अनुसार ऋग्वेद के ये सूक्त बहुत कुछ रूपकों के समान ही रहे होंगे। इसलिए नाटकों का प्रारंभ इन ऋग्वैदिक आख्यानों के आधार पर ही हुआ होगा; किन्तु कुछ लोग इस बात को स्वीकार नहीं करते। इनके अनुसार नाटकों की उत्पत्ति धार्मिक कारणों से नहीं, बल्कि बिलकुल साँसारिक आवश्यकता के कारण हुई है। नाटकों के पहले लोग कठपुतलियों का नाच कराते थे और महाभारत में इस बात का उल्लेख भी है। अतएव इन कठपुतलियों के नाचों से ही इन संस्कृत रूपकों का उद्गम हुआ है। इसीलिए नाटकों का प्रबंधकर्त्ता आज भी सूत्रधार कहलाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



रूपकों की उत्पत्ति का कारण चाहे जो भी हो, इतना तो निश्चित है कि भारतवर्ष में नाटकों का अभिनय बहुत प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। पतंजलि के महाभाष्य में नाटकों के अभिनय का उल्लेख है। इन नाटकों का नाम 'कंस-वध' और 'बलि-बंधन' है। सन् १९१२ के आसपास में त्रिवेन्द्रम में गणपति शास्त्री ने १३ नाटक एक ही साथ प्राप्त किए और उन नाटकों को 'भास नाटक चक्र' के नाम से प्रकाशित किया। यह बात विवादास्पद है कि ये ग्रंथ भास के हैं या नहीं और यदि भास के हैं तो कब के हैं। भास के दो नाटकों का नाम संस्कृत-साहित्य में बहुत विख्यात था जिनमें से एक था 'स्वप्नवासवदत्तम्' और दूसरा 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'। इन १३ नाटकों में से दो नाटक इन नामों के है, अतएव यदि और नाटकों को नहीं, तो इन दोनों को भासकृत मानने का बहुत कुछ कारण हो सकता है; किंतु विद्वानों का दल इस संबंध में मतभेद रखता है। कुछ लोग इन नाटकों को यथार्थ में भास का लिखा हुआ बतलाते हैं और कुछ लोग इसके प्रतिकूल हैं। यदि ये नाटक भासकृत हों और यदि इनका समय ४थी शताब्दी ईसापूर्व हो, जैसा कि कुछ विद्वानों का मत है, तब तो नाटकों का विकास पतंजलि और पाणिनि के समय तक चला जाता है और भास के बाद अश्वघोष कालिदास आदि के नाटक अविच्छिन्न रूप से लिखे जाते रहे हैं।

**भास**—१९१२ ई० के पहले भास की कीर्त्ति बाण इत्यादि के उल्लेख पर ही निर्भर थी; किन्तु १९१२ में गणपति शास्त्री ने भासनाटकचक्र का प्रकाशन कर समग्र संसार के संस्कृतज्ञ विद्वानों को आश्चर्यित, चकित और बहुत-कुछ आश्वस्त बना दिया। किन्तु थोड़े ही दिनों में शास्त्री जी के द्वारा प्रकाशित नाटकों के भासकृत होने में लोगों को सन्देह होने लगा और एक बड़ा भारी साहित्यिक विवाद उठ खड़ा हुआ। इन नाटकों में से 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' रामायण से और 'मध्यमव्यायोग', 'दूतवाक्य', 'दूतघटोत्कच', 'कर्णभार', 'उरुभंग' और 'पचरात्रि' ये महाभारत से संबंधित हैं। 'स्वप्नवासवदत्ता', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'अविमारक' और 'चारुदत्त' ये प्राचीन कहानियों से संबंध रखते हैं; किन्तु 'बालचरित्र' का संबंध कृष्णचरित्र से है। यह विषय इतना विवादास्पद है कि यहाँ उस पर विचार करने के लिए अवकाश नहीं है। कुछ लोग इन्हें ५वीं सदी ईसा पूर्व रखते हैं और कोई ईसा की ११वीं सदी में। अभी तक निश्चित रूप से इस संबंध में कुछ कहना मुश्किल है। अधिकांश विद्वानों के मत से स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगंधरायण ये दो नाटक भासकृत हो सकते हैं; किन्तु शेष नाटकों के बारे में लोग यही समझते हैं कि ये भासकृत नहीं हैं। इसमें वत्सराजउदयन और उसकी पत्नी वासवदत्ता के विरह और पुनर्मिलन का वर्णन है। आरुणि नामक किसी राजा ने वत्सराजउदयन का राज्य छीन लिया था। उसके मंत्री रुमण्वान् ने अपने साथियों से परामर्श कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



किसी ज्योतिषी से राजा के भविष्य के संबंध में प्रश्न किया। ज्योतिषी ने बतलाया कि यदि किसी प्रकार मगधराज की बहन पद्मावती से उदयन की शादी हो जाय तो यह उसकी सहायता से अपना खोया हुआ राज्य फिर प्राप्त कर सकता है; किन्तु उदयन अपनी पत्नी वासवदत्ता को इतना प्यार करता था कि उसके जीती रहने पर दूसरा विवाह कर नहीं सकता था। इसलिए राजा को बिना बताए हुए उसके मंत्री रूमरावान् और यौगन्धरायण ने वासवदत्ता के जल जाने का बहाना कर उसे मगधराज की बहन पद्मावती के पास छिपा रक्खा और अन्त में उनके प्रयत्नों से राजा ने अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त किया। इसके पश्चात् वासवदत्ता प्रकट हुई और आश्चर्यपूर्वक राजा ने उसका स्वागत किया। राजा और पद्मावती दोनों ही प्रसन्न हुए और वासवदत्ता को राजमहिषी का पद दिया गया।

स्वप्नवासवदत्ता में विशेष दोष नहीं दिखलाए जा सकते। इसकी कथावस्तु शक्तिशाली है। इसमें लक्ष्य की एकता और परिणाम की अवश्यंभाविता है। कथा तो प्राचीन ही है; किन्तु उदयन और वासवदत्ता के स्वप्न में मिलन की बात कल्पना-प्रसून है। हर्ष ने जिस उदयन का चरित्र रत्नावली नाटिका में एक विलासी के रूप में चित्रित किया है, कवि ने उसके चरित्र को गंभीर, विश्वसनीय, प्रेमपूर्ण और कल्पनाशील बना दिया है। इस नाटक में वासवदत्ता की भावनाओं का चित्रण विशेष महत्त्वपूर्ण है। अपने पति के कल्याण के लिए उसने जो स्वार्थ-त्याग किया है, वह अनिवर्चनीय है। यह एक सद्भावनापूर्ण नाटक है। यद्यपि यह कालिदास की शकुन्तला के समान सुसंस्कृत और विकसित भावनाओं से परिष्कृत नहीं है तथापि इसका रचयिता एक उच्च कोटि का नाटककार है और इसको एक उत्तम कोटि के नाटक में स्थान देना सर्वथा समुचित है। भास के अन्यान्य नाटकों के संबंध में विद्वानों के विचार भिन्न-भिन्न हैं। अतएव उस विवादग्रस्त विषय का विवेचन यहाँ अनावश्यक है।

**कालिदास**—महाकवि कालिदास का स्थान विश्व के सर्वश्रेष्ठ नाटककारों में है। इनका अभिज्ञान शाकुन्तल संस्कृत साहित्य में तो सर्वश्रेष्ठ है ही, विश्व साहित्य में भी इसके समक्ष दो ही चार नाटक रखे जा सकते हैं। संस्कृत साहित्य में कभी-कभी तुलना के लिए यदि कोई नाटक रखा जाता है तो केवल भवभूति का उत्तररामचरित। अन्य नाटकों से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। महाकवि कालिदास की प्रतिभा किस प्रकार विकसित हुई है, इसका वास्तविक ज्ञान उनके तीन नाटकों के अध्ययन से प्राप्त हो सकता है। ये नाटक हैं मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञान शाकुन्तल; और संभवतः ऊपर दिए हुए क्रम से ही उनकी रचना भी हुई है। मालविकाग्निमित्र में की मालविका नामक राजकुमारी से राजा अग्निमित्र के विवाह का वर्णन है। इसकी कथा सीधी-सादी, पर चित्ताकर्षक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



है। यह राजाओं के अन्तःपुर में प्रायः घटती रहनेवाली घटनाओं में से एक है। यद्यपि यह कालिदास की प्रथम नाट्यकृति है तथापि नाट्यकला की दृष्टि से यह बड़ी ही सुन्दर है। किन्तु इस नाटक में वह गंभीरता नहीं है जो कालिदास की शकुन्तला में है। राजा अग्निमित्र और मालविका का पारस्परिक स्नेह ही इस नाटक का प्राण है। इसी प्रेम की परिणति के लिए इस नाटक की अन्यान्य घटनाओं की सृष्टि की गई है। पटरानी धारिणी ज्यों ही यह समझ जाती है कि मालविका पर राजा का स्नेह है तो जहाँ तक संभव है, वह उसको उनकी आँखों से दूर रखना चाहती है। किन्तु राजा की ओर से विदूषक का प्रयत्न यही रहता है कि राजा और मालविका मिलते रहें। इस प्रयत्न में रानी हार जाती है और विदूषक जीत जाता है। इस नाटक के भिन्न-भिन्न दशाओं का संस्थान भी बड़े ही कौशल के साथ हुआ है। इस नाटक में तरह-तरह की घटनाएँ घटी हैं; किंतु वे सभी नाटक के लक्ष्य को बढ़ानेवाली ही हैं। कालिदास की नाट्यकला का वास्तविक स्वरूप कथावस्तु की संक्षिप्तता में है। कथा का प्रत्येक सूत्र अविच्छिन्न रूप से बढ़ता रहता है। मालविकाग्निमित्र नाटक घटनापूर्ण नाटक है। विशालवर्णन कल्पना की ऊँची उड़ान और कवित्व का प्रदर्शन इसमें बहुत कम है। इस नाटक में जो कुछ काव्यत्व का अभाव है, उसकी अभिनेयता के कारण पूरा हो जाता है। इसके पात्र साधारण मानव हैं। राजा अग्निमित्र राजा होने पर भी एक साधारण प्रेमी के समान चित्रित किया गया है। अपनी पटरानी धारिणी के समक्ष वह एक सामान्य मनुष्य के समान मालविका के प्रेम को छिपाने की चेष्टा करता है। उसकी नीतिकुशलता विदर्भ राज के ऊपर चढ़ाई करने से प्रकट होती है। किन्तु रानी के ऊपर वह कभी प्रभुता नहीं दिखलाता। विदूषक तो इस नाटक का एक प्रधान पात्र ही है। वह प्रतिभाशाली, चतुर, स्वामिभक्त और प्रत्युत्पन्न मतिवाला है। वह स्वयं प्रसन्न रहनेवाला तथा हास्यविनोद की बातें करनेवाला है। रानी धारिणी तथा अन्यान्य स्त्री-पात्र भी सामान्य मनुष्यों के समान व्यवहार करते हैं। धारिणी के हृदय में अपने पति के प्रति स्नेह और उनकी प्रेमिकाओं के प्रति क्षमा के भाव हैं। कालिदास ने संवादों की योजना बड़ी सुन्दर की है। यद्यपि मालविकाग्नि की कथावस्तु आनन्दप्रद है; फिर भी इसमें उच्चकोटि का भावावेश और गंभीर चरित्रचित्रण नहीं है। जीवन के गंभीर प्रश्नों पर इसमें विचार नहीं किया गया है। यह नाटक पूर्णतया संसारी है। निस्सन्देह प्रेम जीवन का एक प्रधान भाव है; किन्तु इस नाटक में उसके कलापक्ष का ही विवेचन किया गया है, गांभीर्य का नहीं। उसने इस नाटक में लोकचरित्र दर्शन को प्रधान बनाया है, मानव-जीवन की समस्याओं का विवेचन नहीं।

मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने एक ऐतिहासिक कथा ली थी; किन्तु उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



पीछे उन्होंने अपने सभी ग्रंथों में पौराणिक कथाओं का ही उपयोग किया। मालूम होता है कि ऐतिहासिक कथाओं में उनकी कल्पना के लिए पर्याप्त स्थान नहीं मिला। इसीलिए उन्होंने उसे त्याग दिया। उन्होंने रामायण, महाभारत और पुराणों को अपने काव्यों के उद्‌गम का स्थान बनाया। कालिदास जितने बड़े नाटककार थे, उतने ही बड़े कवि थे। इसीलिए उन्होंने देवताओं, देवियों और उनके निवासस्थान हिमालय तथा कैलाश इत्यादि को अपने महाकाव्यों और नाटकों का वर्ण्य-विषय बनाया।

विक्रमोर्वशीय में राजा पुरूरवा और उर्वशी नामक अप्सरा के प्रेम की कहानी है। यह कहानी बहुत प्राचीन है। इसकी चर्चा ऋग्वेद के दशम मंडल के ९५ सूक्त में मिलती है। उस सूक्त में पुरूरवा और उर्वशी का संवादमात्र है। इस कहानी का दूसरा रूप शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। यह कहानी कतिपय पुराणों में भी कही गई है और इसने संवाद से कथा का रूप धारण किया है। यह कहानी विष्णु, पद्म और मत्स्य पुराण में, हरिवंश, भागवत तथा गुणाढ्य की बृहत्कथा में भी मिलती है। विष्णुपुराण तथा भागवत इत्यादि की कथा वैदिक सूक्त के आधार पर कही गई है, किन्तु बृहत्कथा की कहानी कालिदास के नाटक से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इसकी कथा संक्षेप में यों है—

राजा पुरूरवा सूर्यदेव की पूजा कर आकाशयान से लौटे आ रहे थे। उन्हें यह पता चला कि उर्वशी और उसकी सखी चित्रलेखा को केशी नामक दैत्य चुराकर भागा जा रहा है। वह उस दैत्य को पराजित कर उन अप्सराओं की रक्षा करता है। राजा जब दैत्य को पराजित कर लौटता है तो ये अप्सराएँ प्रसन्न होती हैं। किन्तु उर्वशी जो बहुत भयभीत हो चुकी थी, मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है और राजा उसको सान्त्वना देता है। राजा पुरूरवा को देखकर उर्वशी उसके प्रेम में निमग्न हो जाती है और राजा भी उसको देखकर उसपर आसक्त हो जाता है। जब इन्द्र को यह पता लगता है कि राजा पुरुरवा ने केशी को युद्ध में परास्त कर दिया है तो वह राजा पुरूरवा को स्वर्ग में आमंत्रित कर उसे स्वयं उर्वशी के साथ उसकी राजधानी में भेजने की इच्छा करता है; किन्तु राजा इसे स्वीकार नहीं करता। इसी बीच में राजा उर्वशी के लिए चिन्तित होकर अपनी रानियों और राजकाज से अन्यमनस्क हो जाता है। रानी औशीनरी अपनी दासियों से यह पता लगा लेती है कि राजा उर्वशी के लिए चिन्तित हैं। एक दिन राजा अपने विदूषक को लिए हुए प्रमोदोद्यान में टहल रहा है। वहाँ आम्रमंजरी देखकर उसको उर्वशी-संबंधी विरह असह्य हो जाता है। राजा का विरह देखकर विदूषक उसे सलाह देता है कि या तो स्वप्न में उर्वशी की संगति कीजिए या उसका एक चित्र बनाकर देखते रहिए। राजा कहता है कि या तो उर्वशी मेरे प्रेम को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



जानती ही नहीं या जान-बूझकर मेरी परवाह नहीं करती। इसी बीच में उर्वशी भोजपत्र पर लिखी हुई अपनी पत्रिका राजा के सामने गिरा देती है। राजा उसको पढ़कर और यह समझकर कि उर्वशी भी उसे प्यार करती है, प्रसन्न हो जाता है और विदूषक को देकर उसे सुरक्षित रखने का आदेश देता है। इसी समय चित्रलेखा एक आकाशवाणी सुनती है और उर्वशी को लेकर तुरत इन्द्र के पास लौट जाती है। विदूषक के पास रक्खा हुआ पत्र हवा से उड़कर निपुणिका के पास चला जाता है। रानी बिगड़कर राजा के पास जाती है और राजा विदूषक की इस असावधानी से बहुत रुष्ट होता है। राजा उसे तरह-तरह से समझाने का यत्न करता हैं; किन्तु रानी रूठकर चली जाती है। भरत के दो शिष्यों के बीच में वार्त्तालाप होता है जिसका आशय यह है कि दिक्पालों और इन्द्र के सामने उर्वशी ने लक्ष्मी स्वयंवर नामक नाटक में नायिका का भाग लिया था। उस स्वयवर में अपने प्रेमी का नाम पूछे जाने पर उसने पुरुषोत्तम के बदले पुरूरवा कह दिया। इससे भरतमुनि क्रुद्ध हो गये। उन्होंने शाप दिया कि यह स्वर्ग में रहने लायक नहीं है। उर्वशी ने जब बहुत प्रार्थना की तों इन्द्र ने पुरूरवा के साथ उसे तब तक रहने का आदेश दिया जब तक उसके कोई पुत्र न हो। राजा संध्या समय किसी शून्य स्थान में रानी से मिलने के लिए जाता है; किन्तु इसी बीच में चित्रलेखा और उर्वशी उसके पास आ जाती हैं। वे परस्पर बातें करती हैं। इसी बीच रानी आ जाती हैं। अप्सराएँ अन्तर्हित हो जाती हैं। रानी आती हैं और राजा के सामने प्रतिज्ञा करती हैं कि आज से आप जिस किसी को प्यार करेंगे, मैं स्नेह की दृष्टि से देखूँगी। रानी यह प्रतिज्ञा कर चली जाती है। उर्वशी राजा के पास आती है और पीछे से उसकी आखें बन्द कर लेती है। चित्रलेखा वहाँ से चली जाती है और उर्वशी और राजा अपने महल में लौट आते हैं। इसी बीच में उर्वशी गंधमादन वन में पुरूरवा के साथ जाती है। वहाँ राजा से रुष्ट होकर कुमारवन में प्रवेश करती है और लता में परिणत हो जाती है। राजा पागल बनकर प्रलाप करता हुआ उसे खोजता फिरता है। राजा अपने पागलपन में घूमते-घामते उसका आलिंगन करता है और वह फिर उर्वशी बन जाती है। कुछ समय बीतने के बाद उर्वशी आयुस् नामक अपना पुत्र जिसे उसने बहुत दिनों तक छिपा रक्खा था, राजा को समर्पित कर स्वर्ग चली जाती है।

इस नाटक में इन स्वर्गीय अप्सराओं का प्रवेश करने से कुछ दृश्य बड़े ही सुन्दर हो गये हैं। कवि की कल्पना मर्त्यलोक से स्वर्ग तक स्वच्छन्द विहार करती रहती है। राजा स्वर्गीय वनों में विहार करता हुआ दिखलाया गया है। वहाँ कोयलें कूक रही हैं, सरोवरों में हंस तैर रहे हैं, चट्टानों पर मोर पर फैलाकर नाच रहे हैं, गुंजार करते हुए भौंरे कमलों का रस पी रहे हैं, हाथी अपनी हथिनियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



और बच्चों के साथ जंगलों में विहार कर रहे हैं और ऊपर आकाश में मेघ मंडल बाँधकर घूम रहे हैं। यथार्थ में कालिदास ने इस नाटक में बड़े ही सुन्दर दृश्यों का चित्रण किया है। इस नाटक में गद्य और पद्य दोनों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग हुआ है। इस नाटक में ३१ प्राकृत या अपभ्रंश पद्य पाए जाते हैं। कुछ लोग उन्हें प्रक्षिप्त मानते हैं। लेकिन यदि ये पद्य यथार्थ में कालिदास के लिखे हुए हों तो इनसे नाटक का सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। इस नाटक का महत्त्व चरित्र-चित्रण और मनोभावों के विश्लेषण पर निर्भर करता है। उर्वशी को कालिदास ने सामान्य नारी के समान चित्रित किया है। राजा पुरुरवा को पहली बार देखते ही उसने जो भाव व्यक्त किए हैं, वे बिलकुल मानवोचित हैं। उसकी विरहदशा, उसकी ईर्ष्या और उसका मान ये सब सामान्य नारी के समान हैं। उसके हृदय की उदारता वहाँ प्रकट होती है जहाँ वह अपने पुत्र को पुरुरवा की पटरानी को माता के समान प्रणाम करने के लिए सिखाती है। यह नाटक अधिकांश में कविता से विभूषित है। इसमें सुन्दर से सुन्दर वर्णनों का प्राचुर्य है। राजा के रथ का आकाश में उड़ने का वर्णन बड़ा ही सुन्दर है। उर्वशी की मूर्च्छा जिस समय छूट रही है, उस समय राजा ने उसके स्वरूप का जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही मनोहर है। विरही पुरुरवा का प्रलाप भी साहित्यिक सौन्दर्य का आदर्श है। नाटक में कमी क्रिया या व्यापार की है जिसके अभाव की पूर्त्ति अभिज्ञान शाकुन्तल में हुई है। इस नाटक में नाटककार कालिदास कवि कालिदास से छिप जाते हैं।

संस्कृत की एक कहावत है 'काव्येषुनाटकं रम्यं तत्रापि च शकुन्तला' अर्थात् काव्यों में नाटक सुन्दर है और नाटकों में भी शकुन्तला सबसे सुन्दर है। यथार्थ में कालिदास की कोई भी रचना उसकी कल्पना, मानव-मनोविज्ञान, हृदगत भावों के चित्रण, भाषा पर अधिकार, शास्त्रीय ज्ञान और शास्त्र तथा लोक के आचार-व्यवहार का ज्ञान का उस प्रकार परिचय नहीं देता जिस प्रकार शकुन्तला नाटक। कालिदास को भारत का शेक्सपीयर कहा गया है। उनकी शकुन्तला इसे सर्वथा यथार्थ सिद्ध करती है। गेटे, लैशन, श्लीगल, हम्बोल्ट, मौनियर, विलियम्स, हर्डर, हिलैब्रैण्ड आदि पाश्चात्य जगत् के विख्यात विद्वानों और साहित्य-रसिकों ने विश्व के नाटककारों में कालिदास का स्थान बहुत ऊँचा बतलाया है। इस ग्रंथ का अनुवाद संसार की सभी प्रमुख भाषाओं में हुआ है। इस नाटक का नाम अभिज्ञान शाकुन्तल इसलिए रक्खा गया है कि अभिज्ञान अर्थात् परिचय के लिए दी हुई अंगूठी से शकुन्तला की दुष्यंत को स्मृति हो आई है। दुष्यन्त और शकुन्तला का चरित्र कवि की अपनी कल्पना का प्रसाद है। यों तो यह कथा बहुत प्राचीन है। महाभारत में भी मिलती है पर इसका जो स्वरूप कालिदास के नाटक में है, वह उसके पहले रूप से सर्वथा अनूठा और आह्लादपूर्ण है। इसमें शृंगार रस की प्रधानता है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



किन्तु कालिदास का प्रिय विप्रलंभ शृंगार ही इसमें विशेषरूप से परिपक्व हुआ है। संक्षेप में इसकी कथा यों है—

हस्तिनापुर का युवक राजा दुष्यंत मृगया करते हुए कण्व के आश्रम में पहुँच जाता है। वहाँ शकुन्तला से उसका परिचय होता है और गंधर्व-विवाह भी। यह विवाह कण्व की अनुपस्थिति में होता है। वे जब आते हैं तो उसे उसके पति के पास भेजते हैं। शकुंतला गौतमी नामक तपस्विनी और दो कण्व के शिष्यों के साथ राजा दुष्यन्त के दरबार में पहुँचती है; किंतु राजा दुर्वासा के शाप से उसे नहीं पहचान पाता है। इसी बीच में आकाश से कोई अप्सरा आती है और शकुन्तला को लेकर उड़ जाती है। राजा शकुन्तला का प्रत्याख्यान तो कर देता है; लेकिन उसके हृदय में एक गहरी वेदना-सी मालूम होती है। कुछ ही दिनों में उसके समक्ष राजपुरुषों के द्वारा एक मछुआ राजा की अंगूठी चुराने के अपराध में पकड़कर लाया जाता है। राजा उस अंगूठी को देखकर शकुन्तला के साथ अपने विवाह का स्मरण करता है और उस मछुए को पुरस्कार देकर विदा करता है। राजा तभी से बहुत शोक और पश्चात्ताप में पड़ा हुआ चिंतन करता रहता है। इसी बीच में इन्द्र का सारथी राजा को कालनेमि से उत्पन्न राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिए इन्द्र की आज्ञा से बुलाने आता है। राजा स्वर्ग में जाता है और इन्द्र की आज्ञा लेकर इन राक्षसों से युद्ध कर उनका नाश कर देता है। फिर इन्द्र से मिलकर जब वह अपनी राजधानी की तरफ लौटता है तो मरीचि ऋषि और उनकी पत्नी का दर्शन करने के लिए हेमकूट पर्वत पर ठहर जाता है। वहीं एक सुन्दर बालक बाघिनी के बच्चे के साथ खेलने की चेष्टा करता है। राजा दौड़कर उस बच्चे को गोद में उठा लेता है। वह देवकन्या जो उस बच्चे को खिला रही थी शकुन्तला को बुला लाती है और राजा उसको देखकर उसके चरण पर गिर पड़ता है। शकुन्तला अपने पति और पुत्र के साथ मरीचि ऋषि से मिलकर और उनका आशीर्वाद लेकर पृथ्वीतल पर लौट आती है और ये लोग हस्तिनापुर में आनन्दपूर्वक रहने लगते हैं।

शकुन्तला की आलोचना करना भारतीय संस्कृति की आलोचना करना है। इसमें इतना अधिक रस भरा है कि आर्य और अनार्य सबको मुग्ध कर देता है। इसमें सांसारिक शृंगार भी है और तपस्या की महत्ता भी; प्राकृतिक सौन्दर्य भी है और मानवीय मनोहरता की छटा भी। भारतीय आश्रमों और आश्रमवासियों की सरलता, पवित्रता और उज्ज्वलता का परिचय अपने पूर्ण परिष्कृत रूप में यहीं मिलता है। शकुन्तला का प्रत्येक शब्द सरस, सार्थक और सजीव है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह ग्रंथ संस्कृत के महान ग्रंथों से टक्कर लेता है। शकुन्तला का पातिव्रत, उसकी स्वाभाविक लज्जा, उसका शील और सौजन्य सब कुछ अनुपम है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



उसकी तुलना यदि की जा सकती है तो सीता, सावित्री और दमयन्ती से ही। राजा दुष्यन्त प्रेम की मूर्त्ति है। यद्यपि उसकी और भी र नियाँ हैं जो कभी-कभी उसे उपालंभ भी दे देती हैं; किन्तु शकुन्तला से संबंध होने के पश्चात् राजा का प्रेम उसी में अनन्य भाव से केन्द्रित हो जाता है। दुष्यन्त प्रजावत्सल है, पराक्रमी है, और इन्द्र को भी सहायता पहुँचाता है; फिर भी उसकी शूरता उसे क्रूर नहीं बना पाती। वह धीरोदात्त नायक है, परस्त्री से पराङ्मुख है और देवताओं, ब्राह्मणों और अन्य पूज्य पुरुषों के प्रति प्रगाढ़ भक्ति रखता है। उसका विदूषक भी चतुर, विनोदप्रिय और उच्च स्तर का व्यक्ति है। इस नाटक में पद्य और गद्य का सम्मिश्रण बड़े ही कौशल के साथ हुआ है। प्रत्येक पद्य किसी सुन्दर भाव या कार्य का चित्र खींचने के लिए लिखा गया है। छोटे-छोटे वाक्य, सुगठित पद-विन्यास और सरस अर्थ कालिदास के वाक्यों की सम्पत्ति हैं। कालिदास की संस्कृत और प्राकृत दोनों ही उच्च कोटि की हैं। आश्रमवासी कण्व और शकुन्तला की दो सखियों के जो दो पवित्र चित्र कवि ने अङ्कित किया है, वह बड़ा ही मनोहर है। विश्व के किसी भी कवि ने मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्धों का ऐसा सुन्दर अंकन नहीं किया है, जैसा कालिदास ने। स्वयं कालिदास भी अपने दूसरे ग्रंथों में मानवीय प्रकृति और बाह्य-प्रकृति के बीच इतना सुन्दर संबंध स्थापित करने में सफल नहीं हो सके हैं। प्राकृतिक दृश्यों से परिपूर्ण वायुमण्डल इस नाटक में उतना ही सौन्दर्य उत्पन्न करने में समर्थ हैं जितना कि दुष्यंत की वह अंगूठी जिसने शकुन्तला की स्मृति दुष्यंत को दिलाई तथा स्वयं शकुन्तला भी। बिना प्रकृति के शकुन्तला का वास्तविक चरित्र प्रकट नहीं हो सकता था। कालिदास ने अपनी प्रतिभा से जंगल के पशुओं को भी मानवीय भावों से परिपूर्ण तथा वहाँ के जड़ पदार्थों को भी सचेतन बना डाला है।

## शूद्रक

संस्कृत-साहित्य में मृच्छकटिक का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें विविध-प्रकार की घटनायें और पात्र हैं। इसका रचयिता कोई शूद्रक नामक कवि है। कुछ लोगों का विचार है कि इसका रचयिता कोई अन्य था जिसने भास के चारुदत्त के आधार पर इसकी रचना कर उसको एक प्राचीन राजा के नाम पर प्रसिद्ध किया। कुछ लोगों के कथनानुसार यह संस्कृत का सबसे प्राचीन नाटक है जो चारुदत्त के पहले का है। इसके समय के सम्बन्ध में भी बड़ा विवाद है। इसका समय दूसरी सदी बी० सी० तथा ई० सन की छठीं सदी तक के बीच में अनुमान किया जाता है। इस नाटक की प्रस्तावना से यह पता चलता है कि शूद्रक कोई ब्राह्मण राजा था जो ऋक्, साम, हस्तिशास्त्र और वेश्याओं के चरित्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


से पूर्ण अभिज्ञ था। यह कहना कठिन है कि वास्तव में इस नाम का कोई राजा था या नहीं। कालिदास के पूर्ववर्ती नाटककार सोमिल्ल ने एक शूद्रक-कथा नामक पुस्तक लिखी थी। इससे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि शूद्रक नामक कोई व्यक्ति कालिदास से भी पहले था। दण्डी, बाण, कल्हण और सोमदेव ने भी उसका उल्लेख किया है। उसको विदिशा, प्रतिष्ठान, या वर्द्धमान का रहनेवाला बतलाया गया है।

इसका लेखक चाहे जो हो, यह सब तरह से अनूठा है। इसमें अत्यधिक नवीनता है। जीवन के व्यापक एवं गम्भीर स्वरूप का चित्रण इसमें प्राप्त होता है। इसमें नाटकीय तत्त्वों की अधिकता है। इसके पात्र नागरिक जीवन के भिन्न-भिन्न स्तरों के प्रतिनिधि हैं। इसके कार्य-व्यवहार में गतिशीलता है। जीवन का यथार्थ चित्र इसमें अंकित है। इसमें तत्कालीन जीवन के अनेक भागों के चित्र ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। कथावस्तु लम्बी होने पर भी आनन्दप्रद है। कल्पना की उड़ान और चरित्र-चित्रण का इसमें पूर्ण प्रदर्शन हैं। संवादों की योजना भी विशद है। संस्कृत-प्राकृत के ललित वृत्तों में सुन्दर-से-सुन्दर भावों का सरल एवं सुव्यवस्थित भाषा में अभिव्यञ्जन है। करुणा और मौन हास्य का इसमें विशेष सन्निवेश है। इसकी कथावस्तु दुःखान्त होते-होते बाल-बाल बच गई है। इसमें अङ्क दश हैं, अतएव कथा कुछ लम्बी-सी हो गई है। पर इसमें इतना अनुपम सौंदर्य है कि यह कहीं नीरस नहीं होने पाता।

**इसकी कथावस्तु यों है**—उज्जयिनी की सर्वश्रेष्ठ वेश्या वहाँ के दरिद्र पर उदारहृदय ब्राह्मण पर अनुरक्त हो गई। राजा का साला (शकार) अपने विलास का साधन बनाने के लिए उसे राजी करना चाहता था। एक दिन अँधेरीरात में उसे अपना पीछा करते देख वह चारुदत्त के घर में घुस जाती है। उस दुष्ट शकार से बचने के लिये वह अपना आभूषण वहीं छोड़ आती है। इस बात का पता उसकी दासी मदनिका के प्रेमी शर्वलिक को चल जाता है। वह चारुदत्त के घर में सेंध खोदकर वे आभूषण लाता है और मदनिका को दास्य से मुक्त करता है। आभूषणों की चोरी से चारुदत्त को चिन्तित देख उसकी पत्नी अपने बहुमूल्य रत्न उनके बदले में वसन्तसेना को दे डालती है। जब चारुदत्त का छोटा बच्चा घर से निकलता है तो वसन्तसेना अपने स्वर्णाभूषणों से उसकी मिट्टी की गाड़ी भर देती है। एक दिन चारुदत्त पुष्पकरण्डक नामक बगीचे में जा रहा था कि उसके साथ आर्यक नाम एक कैदी आ बैठा। इधर वसन्त सेना भूल से शकार की गाड़ी पर बैठ गई। आर्यक बगीचे से गायब हो गया। वसन्तसेना ने पुष्पकरण्डक में शकार की वासनापूर्ति अस्वीकार की, अतः उसने उसका गला घोंट दिया। वह वहीं मृतवत् पड़ी हुई थी कि एक बौद्धभिक्षु वहाँ आया और उसने उसकी प्राण-रक्षा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



की। शकार के अभियोग लगाने से चारुदत्त को वसन्तसेना को धोखे से मारने के अपराध में फाँसी की आज्ञा मिली।

इसी बीच आर्यक तत्कालीन राजा पालक का वध कर स्वयं राजा बन जाता है और अपने मित्र चारुदत्त की रक्षा करता है। शकार को आर्यक चारुदत्त पर मिथ्या अभियोग लगाने के कारण प्राणदण्ड देता है पर चारुदत्त की प्रार्थना से उसकी जान बच जाती है। अन्त में वसन्त सेना और चारुदत्त विवाह कर लेते हैं।

इस नाटक में अवान्तर घटनाओं की अधिकता है। इसमें एक अलग संसार ही दिखाई पड़ता है। इस संसार में जुआड़ी, बदमाश, राजनीतिक, चालबाज, साधु, दरबारी, आलसी, राजपुरुष, दाइयाँ तथा वेश्यायें सबकी सब दिखाई पड़ती हैं। नाटककार ने उन सबका चरित्र बड़े कौशल से चित्रित किया है। इसमें जिस प्रेम का चित्रण हुआ है वह न तो दुष्यन्त-शकुन्तला का या राम-सीता का दाम्पत्य-स्नेह है न रोमियो जुलिएट का आवेशपूर्ण पूर्वानुराग ही। इसमें उस प्रेम का चित्र है जो एक गुणज्ञ नागरिक का किसी पवित्रप्रेमाभिलाषिणी वेश्या के साथ हो सकता है। जहाँ एक ओर उदारता है वहाँ दूसरी ओर कृतज्ञता तथा आत्मसमर्पण की पराकाष्ठा है।

इस नाटक के विविध पात्रों में नायक और नायिका का चरित्र सर्वश्रेष्ठ है। प्रतिनायक के रूप में शकार संस्थानक का चरित्र भी बड़े कौशल से चित्रित किया गया है। किन्तु कवि की वास्तविक शक्ति का प्रमाण इसके प्रधान पात्रों का चरित्र ही है।

चारुदत्त एक उदारहृदय नागरिक है जिसका समग्र जीवन प्रेम और विलास में ही बीता है। पर उसके कई कामों में संयम भी पाया जाता है। प्रेम में भी वह संयम से ही काम लेता है। जितनी अधिक आसक्ति वसन्तसेना उस पर दिखलाती है उतनी वह उसके ऊपर नहीं। उसमें उच्चकुल के योग्य उदारता, ईमानदारी और आचार है; पर उसकी अत्यधिक उदारता ही उसको धनहीन बना देती है। फिर भी उसकी दुष्यन्त या रामचन्द्र से तुलना करना व्यर्थ होगा। वह सांसारिक व्यक्ति है, मर्यादापुरुष नहीं। उसमें संगीत का प्रेम है, वह कला का आदर करता है, साहित्य को आनन्द का साधन बनाता है और जुआ भी खेल लेता है। वह अपने प्रिय मित्र मैत्रेय के कहने पर भी वेश्यागमन से पराङ्मुख नहीं होता। यथार्थ में वसन्तसेना जैसी नायिका के लिए इसी प्रकार के नायक की आवश्यकता भी थी। वसन्त सेना भी न तो तपस्विनी बाला कुलललना है और न सीता-सी पवित्रता की मूर्ति ही। उसने एक नारकीय जीवन की घृणित झाँकी भी ले ली है। वेश्यासुलभ गुणों की उसमें पूर्णता है। वह सभा-चतुर, वाक्पटु, इङ्गितज्ञा, इङ्गितकुशल, और धनसम्पन्न है। पर उसका हृदय सामान्य वेश्याओं जैसा नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2


उसमें एक वेदना की ज्वाला जल रही है। उसमें मूक व्यथा है। वह पावन प्रेम की भूखी है। वह उसे चारुदत्त से प्राप्त होता है। चारुदत्त के नन्हें से पुत्र को देखते ही उसमें एक दूसरी वासना भी जाग उठती है। वह वात्सल्यसुख के लिए ललक पड़ती है और अपने स्वर्णाभूषणों के कारण उसमें बाधा आती देख उन्हें उतार फेंकती है। प्राण छूटते समय भी वह अपने प्रियतम के लिए—उनके नाम-स्मरण के लिये—तरसती रहती है। जब शकार संस्थानक उसका गला घोंटने लगता है तो वह उसके मुँह पर थूक देती है और बेहोश होते-होते भी उसके मुख से निकलता है 'नमोचारुदत्तस्स'। इस प्रकार वेश्यापन से पातिव्रत के मार्ग पर पहुँचकर उसका जीवन कृतकृत्य हो जाता है और सम्भवत: इस नाटक का प्रमुख संदेश यही है भी।

## सम्राट् हर्षवर्धन

सम्राट् हर्षवर्धन का शासन काल ई० सन् ६०६ से ६४८ तक था। ये बड़े ही साहित्यिक-रसिक और स्वयं साहित्यस्रष्टा थे। इन्होंने ३ नाटिकायें लिखी थीं। रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द। किन्तु कुछ आलोचकों का कहना है कि ये ग्रन्थ स्वयं श्रीहर्ष के लिखे हुए नहीं हैं। उनको किसी और ने लिखा है। मम्मट के अनुसार धावक नामक कवि को श्रीहर्ष से प्रचुर धन मिला था। बाणभट्ट तो उनके राजकवि थे ही। अतएव यह कहा जाता है कि इन ग्रन्थों को रचना हर्ष के किसी दरबारी कवि ने ही की है। पर इस बात के लिए कोई प्रमाण नहीं है। इत्सिंग ने हर्ष को नागानन्द का तथा दामोदर गुप्त ने किसी राजा को रत्नावली का रचयिता माना है। इससे स्पष्ट है कि ये नाटक ग्रंथ किसी अन्य के लिखे नहीं हैं। बाण ने हर्ष को एक सुकवि और जयदेव कविता कामिनी का हर्ष कहा है। अतएव ये ग्रन्थ हर्ष के ही लिखे हुए हैं, इसमें सन्देह के लिये अवकाश नहीं।

इनमें से रत्नावली और प्रियदर्शिका ये दो नाटिकायें मालविकाग्निमित्र से मिलती हैं। अन्तःपुर में घटनेवाली घटनाओं से ही इनका सम्बन्ध है। पहले में 'सागरिका' और दूसरे में 'आरण्यका' नामक राजकुमारियों का वत्सराज उदयन के साथ विवाह होने की बात लिखी गई है। 'नागानन्द' उन दोनों से भिन्न प्रकार का है। जीमूतवाहन नामक किसी राजकुमार ने सर्पों के बदले अपना शरीर गरुड़ को अर्पित कर दिया था। इसी बात का उसमें वर्णन है। इसमें करुणा की महिमा दिखलाई गई है। अतएव इसपर बौद्ध-प्रभाव स्पष्ट है। इन नाटकों की शैली सरस, सरल और प्रसाद गुण पूर्ण है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



# विशाखदत्त

विशाखदत्त के सम्बन्ध में हमें उसके 'मुद्राराक्षस' की प्रस्तावना से यह चलता है कि वह महाराज भास्करदत्त या पृथु का पुत्र तथा सामन्त बटेश्वरद का पौत्र था। किन्तु इससे अधिक उसने अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा कुछ लोग भरतवाक्य के आधार पर उसे चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का सम-कालीन मानते हैं; किन्तु यह अनुमान मात्र है। इसके आश्रय दाता के सम्बन्ध में कोई मत स्थिर नहीं है। कोई इसे अवन्तिवर्मा नाम 'मौखरी', (जिसके लड़के की शादी हर्ष की बहन राजश्री से हुई थी) का राजकवि तथा कोई काश्मीर के अवन्ति वर्मा का राजकवि बतलाते हैं जिसका समय ई० सन की ६वीं सदी है। इस कवि का आश्रयदाता कोई भी रहा हो, इसका समय ६वीं सदी से पूर्व ही अवश्य है।

'मुद्राराक्षस' संस्कृत के नाटकों में बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी कथावस्तु, और शैली, मृच्छकटिक की कथावस्तु और शैली से भी विच्छिन्न हैं। संस्कृत नाटकों के भारतीय आलोचक तो इसे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं देते क्योंकि इसमें परम्परा-गत नाटकीय लक्षण प्रायः नहीं मिलते; किन्तु यूरोपीय तथा उनके अनुयायी भारतीय आलोचकों के अनुसार इसमें न तो शृङ्गार का वर्णन है और न शृङ्गार के अनुकूल आवेष्टन का ही। न तो इसमें कोमल भावनायें हैं, न प्रेम-सौन्दर्य, और न धर्म या नीति ही। इसमें राजनीतिक दाँव-पेंच निःस्वार्थ राष्ट्र-सेवा एवं स्वामिभक्ति के दृश्य सुसज्जित है। वृहत्कथा में यह कथा मिलती है, पर बिल्कुल साधारण रूप में। उसमें कलात्मकता की झलक भी नहीं है। अतएव नाटक की कथावस्तु का वास्तविक स्वरूप विशाखदत्त ने ही निर्मित किया है।

इस नाटक की कथा इतिहास के आधार पर तो है; पर सर्वथा ऐतिहासिक नहीं है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त तो ऐतिहासिक पुरुष अवश्य हैं और सम्भव है राक्षस और सर्वार्थसिद्धि भी ऐतिहासिक पुरुष ही रहे हों; यद्यपि अनुश्रुतियों में उनके नाम नहीं पाये जाते। अन्यान्य पात्र काल्पनिक हैं। मुद्राराक्षस की घटना कहाँ तक ऐतिहासिक है यह नहीं कहा जा सकता।

इसकी कथा लम्बी और पेचीली है। राक्षस नन्दवंश का प्रधान मन्त्री था। नन्द वंश के विनाश के पश्चात् चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को भारत का सम्राट् बनाया पर; जब तक राक्षस चन्द्रगुप्त के पक्ष में नहीं आ जाता चाणक्य चन्द्रगुप्त का राज्य सुरक्षित नहीं समझता। यही कारण है कि वह उसको तरह-तरह से प्रयत्न कर वशीभूत करना चाहता है और उसे चन्द्रगुप्त का प्रधानामात्य बनाना चाहता है। राक्षस स्वामिभक्त है। वह चन्द्रगुप्त और चाणक्य से [illegible]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



उसमें एक वेदना की ज्वाला जल रही है। उसमें मूक व्यथा है। वह पावन प्रेम की भूखी है। वह उसे चारुदत्त से प्राप्त होता है। चारुदत्त के नन्हें से पुत्र को देखते ही उसमें एक दूसरी वासना भी जाग उठती है। वह वात्सल्यसुख के लिए ललक पड़ती है और अपने स्वर्णभूषणों के कारण उसमें बाधा आती देख उन्हें उतार फेंकती है। प्राण छूटते समय भी वह अपने प्रियतम के लिए—उनके नाम-स्मरण के लिये—तरसती रहती है। जब शकार संस्थानक उसका गला घोंटने लगता है तो वह उसके मुँह पर थूक देती है और बेहोश होते-होते भी उसके मुख से निकलता है 'नमोचारुदत्तस्स'। इस प्रकार वेश्यापन से पातिव्रत के मार्ग पर पहुँचकर उसका जीवन कृतकृत्य हो जाता है और सम्भवतः इस नाटक का प्रमुख संदेश यही है भी।

## सम्राट् हर्षवर्धन

सम्राट् हर्षवर्धन का शासन काल ई० सन् ६०६ से ६४८ तक था। ये बड़े ही साहित्यिक-रसिक और स्वयं साहित्यस्रष्टा थे। इन्होंने ३ नाटिकायें लिखी थीं। रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द। किन्तु कुछ आलोचकों का कहना है कि ये ग्रन्थ स्वयं श्रीहर्ष के लिखे हुए नहीं हैं। उनको किसी और ने लिखा है। मम्मट के अनुसार धावक नामक कवि को श्रीहर्ष से प्रचुर धन मिला था। बाणभट्ट तो उनके राजकवि थे ही। अतएव यह कहा जाता है कि इन ग्रन्थों की रचना हर्ष के किसी दरबारी कवि ने ही की है। पर इस बात के लिए कोई प्रमाण नहीं है। इत्सिंग ने हर्ष को नागानन्द का तथा दामोदर गुप्त ने किसी राजा को रत्नावली का रचयिता माना है। इससे स्पष्ट है कि ये नाटक ग्रंथ किसी अन्य के लिखे नहीं हैं। बाण ने हर्ष को एक सुकवि और जयदेव कविता कामिनी का हर्ष कहा है। अतएव ये ग्रन्थ हर्ष के ही लिखे हुए हैं, इसमें सन्देह के लिये अवकाश नहीं।

इनमें से रत्नावली और प्रियदर्शिका ये दो नाटिकायें मालविकाग्निमित्र से मिलती हैं। अन्तःपुर में घटनेवाली घटनाओं से ही इनका सम्बन्ध है। पहले में 'सागरिका' और दूसरे में 'आरण्यका' नामक राजकुमारियों का वत्सराज उदयन के साथ विवाह होने की बात लिखी गई है। 'नागानन्द' उन दोनों से भिन्न प्रकार का है। जीमूतवाहन नामक किसी राजकुमार ने सर्पों के बदले अपना शरीर गरुड़ को अर्पित कर दिया था। इसी बात का उसमें वर्णन है। इसमें करुणा की महिमा दिखलाई गई है। अतएव इसपर बौद्ध-प्रभाव स्पष्ट है। इन नाटकों की शैली सरस, सरल और प्रसाद गुण पूर्ण है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



# विशाखदत्त

विशाखदत्त के सम्बन्ध में हमें उसके 'मुद्राराक्षस' की प्रस्तावना से यह पता चलता है कि वह महाराज भास्करदत्त या पृथु का पुत्र तथा सामन्त बटेश्वरदत्त का पौत्र था। किन्तु इससे अधिक उसने अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा। कुछ लोग भरतवाक्य के आधार पर उसे चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं; किन्तु यह अनुमान मात्र है। इसके आश्रय दाता के सम्बन्ध में कोई मत स्थिर नहीं है। कोई इसे अवन्तिवर्मा नाम 'मौखरी', (जिसके लड़के की शादी हर्ष की बहन राजश्री से हुई थी) का राजकवि तथा कोई काश्मीर के अवन्ति वर्मा का राजकवि बतलाते हैं जिसका समय ई० सन की ६वीं सदी है। इस कवि का आश्रयदाता कोई भी रहा हो, इसका समय ६वीं सदी से पूर्व ही अवश्य है।

'मुद्राराक्षस' संस्कृत के नाटकों में बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी कथावस्तु, और शैली, मृच्छकटिक की कथावस्तु और शैली से भी विच्छिन्न हैं। संस्कृत नाटकों के भारतीय आलोचक तो इसे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं देते क्योंकि इसमें परम्परागत नाटकीय लक्षण प्रायः नहीं मिलते; किन्तु यूरोपीय तथा उनके अनुयायी भारतीय आलोचकों के अनुसार इसमें न तो शृङ्गार का वर्णन है और न शृङ्गार के अनुकूल आवेष्टन का ही। न तो इसमें कोमल भावनायें हैं, न प्रेम-सौन्दर्य, और न धर्म या नीति ही। इसमें राजनीतिक दाँव-पेंच निःस्वार्थ राष्ट्र-सेवा एवं स्वामिभक्ति के दृश्य सुसज्जित है। बृहत्कथा में यह कथा मिलती है, पर बिल्कुल साधारण रूप में। उसमें कलात्मकता की झलक भी नहीं है। अतएव नाटक की कथावस्तु का वास्तविक स्वरूप विशाखदत्त ने ही निर्मित किया है।

इस नाटक की कथा इतिहास के आधार पर तो है; पर सर्वथा ऐतिहासिक नहीं है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त तो ऐतिहासिक पुरुष अवश्य हैं और सम्भव है राक्षस और सर्वार्थसिद्धि भी ऐतिहासिक पुरुष ही रहे हों; यद्यपि अनुश्रुतियों में उनके नाम नहीं पाये जाते। अन्यान्य पात्र काल्पनिक हैं। मुद्राराक्षस की घटना कहाँ तक ऐतिहासिक है यह नहीं कहा जा सकता।

इसकी कथा लम्बी और पेचीली है। राक्षस नन्दवंश का प्रधान मन्त्री था। नन्द वंश के विनाश के पश्चात् चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को भारत का सम्राट् बनाया पर; जब तक राक्षस चन्द्रगुप्त के पक्ष में नहीं आ जाता चाणक्य चन्द्रगुप्त का राज्य सुरक्षित नहीं समझता। यही कारण है कि वह उसको तरह-तरह से प्रयत्न कर वशीभूत करना चाहता है और उसे चन्द्रगुप्त का प्रधानामात्य बनाना चाहता है। राक्षस स्वामिभक्त है। वह चन्द्रगुप्त और चाणक्य से [illegible]



RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चाहता है। इसी बीच में मलयकेतु नामक म्लेच्छनरेश और राक्षस की सन्धि हो जाती है। चाणक्य यह सब देखता और समझता रहता है। वह अपने गुप्तचरों से ऐसा प्रयत्न कराता है कि मलयकेतु और राक्षस में मतभेद हो जाय। अन्त में वही बात होती है। चाणक्य की प्रचण्ड प्रतिभा और कूटनीति के बल से मलयकेतु का विनाश होता है और राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनता है।

विशाखदत्त चरित्रचित्रण में परम प्रवीण है। वह चाणक्य को राक्षस ही के समान वीर, निःस्वार्थ, कुशल और राष्ट्रप्रेमी चित्रित करता है। उन दोनों के उद्देश्य अत्यन्त पवित्र हैं। उन दोनों के सिद्धान्त हैं उद्देश्य की पवित्रता बीच के साधन चाहे जैसे भी हों। किन्तु दोनों के चरित्रों में अन्तर है। चाणक्य की सूझ तीव्र है। वह अत्यधिक दूरदर्शी है। उसमें आत्म-विश्वास है और वह हमेशा चौकन्ना रहता है। किन्तु राक्षस कोमलहृदय, भावुक और कुछ प्रमादी भी है। जहाँ चाणक्य अपनी मंत्रणाओं को गुप्त रखनेवाला और अविश्वासी है वहाँ राक्षस स्पष्टवादी, स्नेहपूर्ण और उदार है। राक्षस की सज्जनता और स्वामिभक्ति से चाणक्य भी उससे प्रसन्न है। वह उसका अनिष्ट नहीं करना चाहता। वह उसको वश में करके चन्द्रगुप्त की सेना में अर्पित करना चाहता है। किन्तु राक्षस के गुण ही उसकी पराजय के कारण बनते हैं। चन्द्रगुप्त और मलयकेतु दोनों ही बहुत कुछ स्वतन्त्र हैं। वे चाणक्य या राक्षस के खिलौने नहीं हैं। चन्द्रगुप्त में गौरव, चरित्र की उच्चता, उच्चशिक्षा, पूर्ण शक्ति तथा अपने गुरु में निष्कपट भक्ति एवं विश्वास है। पर मलयकेतु में पितृभक्ति होने पर भी, अहंभाव, दुर्बलता, मूर्खता और हठ है। चन्दनदास का चरित्र भी मैत्रीभाव की दृष्टि से आदर्श है।

इसमें नाट्यकला की कुशलता प्रचुरमात्रा में दृष्टिगोचर होती है। इस कवि की शैली शक्तिशाली और धारा प्रवाही है। इसे छन्दों पर पर्याप्त अधिकार है। प्राकृतों का प्रयोग भी यह आसानी से कर लेता है। इसमें कालिदास के समान कविता की शक्ति नहीं फिर भी इसके कतिपय पद्य तो बड़े ही मनोरम हैं। इसकी शैली इसके वर्ण्य विषय के अनुकूल है और सब मिलाकर वह एक असाधारण कवि अवश्य है। इसके लिखे दो नाटक और भी बतलाये जाते हैं। एक का नाम है देवीचन्द्रगुप्त और दूसरे का राघवानन्द। देवी चन्द्रगुप्त के कुछ अंश तो मिलते हैं पर राघवानन्द नहीं मिलता।

## भट्टनारायण

भट्टनारायण एक सुप्रसिद्ध नाटककार हैं। दण्डी के अनुसार इनके तीन ग्रन्थ थे किन्तु आज इनका एक ही ग्रन्थ—केवल वेणी-संहार ही मिलता है। इनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे कन्नौज से बंगाल आये। इनके ग्रन्थ से वामन, आनन्दवर्धन, धनञ्जय और मम्मट इन सब अलंकारियों ने उद्धरण दिये हैं। वामन का समय ८०० ई० के पास है; अतः भट्टनारायण का समय ८०० ई० ही है।

वेणी-संहार की कथावस्तु महाभारत से ली गई है। इसमें कवि ने नाटकीयता लाने के लिये यथेष्ट परिवर्त्तन भी किया गया है। दुःशासन ने द्रौपदी का सभा के बीच चीरहरण करना चाहा था। उसके पहले ही उसने उसके केश भी खींचे थे। इस पर भीम ने दुःशासन और उसके अन्य भाइयों को मारकर उसके रक्त से ही द्रौपदी की वेणी बाँधने का प्रण किया था। युद्ध प्रारम्भ होने के पहले दुर्योधन अपनी पत्नी भानुमती से मिला था और उससे शृङ्गारपूर्ण बातें की थीं। इसके पश्चात् द्रोणवध होता है। अश्वत्थामा और कर्ण झगड़ पड़ते हैं। दुःशासन तथा कर्ण के पुत्र वृषसेन का वध होता है। इसके पश्चात् गान्धारी और धृतराष्ट्र दुर्योधन को युधिष्ठिर से सन्धि करने के लिये समझाते हैं। पर उसे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। अन्त में गदायुद्ध होता है। चार्वाक राक्षस दुर्योधन के हाथों से भीम की मृत्यु का मिथ्या सन्देश सुनाता है। इससे पाण्डवों की दशा शोकपूर्ण और अत्यन्त दयनीय हो जाती है; किन्तु इसी बीच में भीम दुर्योधन को मारकर आते हैं और द्रौपदी की वेणी बाँधते हैं।

भट्टनारायण ने महाभारत की एक सुप्रसिद्ध कथा अपने नाटक के लिये ली है। उसने समग्र युद्ध कथा को अपनी कृति के भीतर समाविष्ट कर डाला; फिर भी अपनी कथा-वस्तु, शैली और ओज में वह अपने काल के नाटकों से बिलकुल भिन्न है। यदि भास के नाटकों को छोड़ दें तो संस्कृत साहित्य का एक मात्र नाटक वेणीसंहार ही ऐसा है जिसमें वीर रस को प्रधानता दी गई है।

भट्टनारायण ने चरित्र-चित्रण अपने ढंग से अच्छा किया है। पर युधिष्ठिर और कृष्ण को छोड़कर अन्य पात्रों का चरित्र कुछ विकृत-सा कर दिया है। भीम में ओज तो पूर्णमात्रा में है; पर उसका अहंभाव और रौद्ररूप उसे कुछ जंगली-सा बना डालते हैं। इसी प्रकार अर्जुन का क्रोध भी भीम से कुछ ही कम है। द्रौपदी की करुणा का चित्रण सुन्दर हुआ है। पर उसकी घृणा और प्रतिहिंसा की भावना उसके सौम्य रूप को विकृत करती है। धृतराष्ट्र की दुर्बलता और कर्ण और अश्वत्थामा की ईर्ष्या भी नाटक को रोचक बनाती है, पर ये भाव शीघ्र ही लुप्त हो जाते हैं। दुर्योधन घमण्डी, स्वार्थी तथा शृंगारप्रिय भी है। किन्तु इसकी शृंगार प्रियता दिखलाना नाटक के लिए कोई महत्त्व नहीं रखती।

भट्टनारायण ने लम्बे-लम्बे समासबद्ध पदों का प्रयोग किया है, जो नाटक के उपयुक्त नहीं कहे जा सकते। कवि में काव्य-शक्ति और ओज अतीव दृ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



चित्रण की शक्ति, शब्द-झंकारपूर्ण पद्यों की रचना की कला इत्यादि अनेक गुण हैं, यद्यपि उसे अपनी समग्र कथा को नाटक के ढाँचे में बैठाकर सँभालने और एकता लाने में सफलता नहीं मिली है। वेणीसंहार में बहुत-से पद्य सुन्दर-सुन्दर हैं इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता नाटकीय दृष्टि से भी यह बहुत निम्नकोटि का नहीं माना जा सकता, अपनी वस्तु, चरित्र-चित्रण तथा वर्णनशैली के कारण इसे एक मध्यम श्रेणी का नाटक मानना उत्तम होगा।

## महाकवि भवभूति

महाकवि भवभूति का स्थान संस्कृत के नाटककारों में केवल कालिदास के बाद ही है। उन्होंने तीन नाटक लिखे हैं, मालती-माधव, महावीरचरित और उत्तर रामचरित। पहले में एक काल्पनिक प्रेमकथा है और दूसरे दो में भगवान् रामचन्द्र के लोक-पावन चरित्र। उसने अपने नाटकों की प्रस्तावना में अपना कुछ परिचय दिया है। इसके अनुसार वह पद्मपुर (सम्भवतः विदर्भ प्रान्त) का निवासी उदुम्बरवंशी काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण था। इसके पूर्वज विद्वान् थे। वे पंचाग्नि, सोमयाजी और कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अध्ययन करनेवाले थे। उसके पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जातुकर्णी था। उसने वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग तथा अन्यान्य विद्याओं का अध्ययन किया था। उसके गुरु का नाम ज्ञाननिधि था। उसका अपना वास्तविक नाम सम्भवतः श्रीकण्ठ था और सम्भवतः अपने काव्य कौशल से उसने भवभूति की पदवी प्राप्त की थी।

राजतरंगिणी के अनुसार भवभूति के आश्रयदाता कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा थे। इस यशोवर्मा को काश्मीर के राजा ललितादित्य ने समर में परास्त किया था। जेनरल कनिंघम के अनुसार ललितादित्य का शासनकाल सन् ६६३ ई० से ७२६ ई० तक था। किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार ललितादित्य का राज्यारोहण काल ६६५ ई० था। उसके पहले कामों में एक यशोवर्मा को परास्त करना भी था। यशोवर्मा के दरबार में गौड़वहो नामक प्राकृत महाकाव्य के रचयिता वाक्पति राज भी थे। वाक्पतिराज ने भवभूति का बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। डाक्टर भंडारकर के अनुसार भवभूति का समय ८वीं सदी का प्रथम चरण है। साहित्य में इस बात की पुष्टि के लिए पर्याप्त प्रमाण भी मिलते हैं। वामन ने भवभूति के नाटकों से पद्य अपने काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में उद्धृत किए हैं। वामन का समय ८वीं सदी का उत्तरार्द्ध है। इसीलिए भवभूति का समय ८वीं सदी का प्रथम चरण होना संभव है। बाद के अनेक लेखकों ने जैसे धनपाल, धनंजय, महीमभट्ट, राजशेखर तथा क्षेमेन्द्र ने भवभूति के पद्यों को उद्धृत किया है। अतएव भवभूति का ऊपर बताया हुआ समय ठीक मालूम होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भवभूति के तीन ग्रंथों में से दो तो रामायण से संबंधित हैं; किंतु एक संभवतः काल्पनिक है। हो सकता है कि इस नाटक की कहानी कथासरित् सागर की मदिरावती शीर्षक कहानी के आधार पर रची गई हो। इन तीनों नाटकों में से उत्तर रामचरित ही कवि की परिपक्व प्रतिभा का प्रसाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार महावीर चरित उनका प्रथम तथा मालती माधव दूसरा नाटक है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों नाटकों के लिखने से उन्हें विशेष यश नहीं मिला; बल्कि कुछ आलोचकों ने उनका उपहास भी किया। भवभूति ने कोई दूसरा ग्रंथ भी लिखा या नहीं, यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता। सुभाषित-संग्रह शार्ङ्गधर-पद्धति में उसके दो पद्य मिलते हैं, जो इन ग्रंथों में नहीं हैं। अतएव यह संभव है कि उसने कोई और ग्रंथ भी लिखा होगा।

निस्सन्देह भवभूति एक बड़े कवि हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से उनकी तुलना कालिदास से की जाती रही है। कुछ लोगों का विचार है कि कालिदास इनसे बढ़कर कवि और नाटककार हैं। इन लोगों का कहना है कि कालिदास की कविता हमेशा स्निग्ध और परिष्कृत है और कभी भी कर्णकटु नहीं होती; किन्तु भवभूति की कविता सर्वदा एक-सी नहीं रहती। वह कभी स्निग्ध और मधुर रहती है और कभी एकदम कर्णकटु और गंभीर हो जाती है। भवभूति की कविता में कुछ पद्य तो ऐसे हैं जो कालिदास के पद्यों से अधिक सुन्दर हैं; किन्तु कुछ पद्य ऐसे हैं जिनमें शब्द-बाहुल्य और काव्यत्व की कमी है। कालिदास दरबारी कवि थे; किन्तु भवभूति दरबार के विलास और व्यसन का कुछ भी वर्णन नहीं करते। वे प्रकृति के पक्के पुजारी हैं।

कुछ क्षेत्र तो ऐसे हैं जिनमें भवभूति अद्वितीय हैं। उनके नाटकों में उच्चता और गहराई है। उनका प्रत्येक चरित्र आदर्श और पूर्ण है। भवभूति में प्रकृति का प्रेम अपनी पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है। वह प्रकृति के केवल सौन्दर्य को ही नहीं देखते; बल्कि उसके भयानक और वीभत्स रूप पर भी नजर डालते हैं। उनका दृश्यचित्रण शक्तिशाली, सजीव और यथार्थ होता है। दण्डकवन और जनस्थान का जो स्वरूप उन्होंने चित्रित किया है वह इस कथन के प्रमाण हैं। भवभूति की गंभीरता का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि उनके किसी भी नाटक में विदूषक के लिए स्थान नहीं था। हृदय के सुकुमार भावों के चित्रण में वे अद्वितीय हैं। उनका वात्सल्य-चित्रण अल्प होने पर भी अत्यन्त मनोहर है। उनके रामचरित में बहुत-से पद्य ऐसे हैं जो सुकुमारता और कारुण्य को पूर्णतया अभिव्यक्त करते हैं। संस्कृत भाषा पर तो उनका अधिकार अप्रतिम है। उनकी शैली उनकी ही है। सबसे विचित्र बात उनमें यही है कि वे किसी दृश्य चित्रण करने में तद्रूप हो जाते हैं और उनके दृश्य भाव और शब्दों की ध्वनि में परिपूर्ण सामंजस्य रहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भिन्न-भिन्न पद्यों में कौन कहे, एक ही पद्य में जितने अंश में सुकुमार भाव व्यंजित रहता है, उतने की शब्दावली सुकुमार रहती है और जितने अंश के भाव कठोर हो जाते हैं, शब्दावली भी उसके अनुसार ही बदल जाती है।

प्रकृति-चित्रण में भवभूति रूढ़ियों की परवाह नहीं करते। बाल्मीकि के बाद के कवि यहाँ तक कि कालिदास भी प्रकृति का वर्णन परम्परा के अनुसार करते हैं। वे प्रायः उसके मनोहर रूप को ही देखते हैं। कोकिलों का कूजन, आम्रमंजरी का विकास, चन्द्रमा की चाँदनी का नायिकाओं पर उद्दीपन प्रभाव इत्यादि ही उनके उनके वर्णन के भीतर प्रायः पाए जाते हैं; किन्तु भवभूति इनकी उतनी परवाह नहीं करते। वे भयानक जंगलों का, उच्चपर्वत शृंगों का, या गूँजते हुए प्रपातों का वर्णन करना पसन्द करते हैं। इनके अतिरिक्त भवभूति प्रकृति के अनेक स्वरूपों का आँखों-देखा-जैसा वर्णन और चित्रण करते हैं।

भवभूति के नाटकों में कुछ दोष भी हैं। उत्तररामचरित को छोड़कर अन्य दोनों नाटकों में उनकी कथावस्तु का उतना चातुर्यपूर्ण विकास नहीं पाया जाता जितना कालिदास के नाटकों में पाया जाता है। मालतीमाधव में कुछ ऐसे दृश्यों का भी उन्होंने चित्रण किया है जिनसे कथावस्तु की एकता में बहुत-कुछ बाधा पड़ी है। उनमें समन्वय और सामंजस्य की भावना कुछ कम है। संकलनत्रय की वे विशेष परवाह नहीं करते। नाटकों में भी वे लम्बे-लम्बे समासबद्ध पद गद्य और पद्यों में व्यवहृत करते हैं। मालतीमाधव में उन्होंने इस तरह के पद्य और गद्य का विशेष व्यवहार किया है। उन्होंने बहुत-से अपने पद्य अपने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से उठाकर रक्खे हैं। इन तीनों नाटकों में समान भाव से मिलनेवाले अनेक पद्य हैं।

मालतीमाधव एक प्रेमकहानी है। माधव एक ब्राह्मणमंत्री का लड़का है और मालती भी पद्मावती के राजा के मंत्री की लड़की है। दोनों में परस्पर प्रेम आकस्मिक रूप से हो जाता है; किन्तु उनके विवाह में बाधा इसलिए पड़ती है कि पद्मावतीनरेश के राजा का साला मालती से शादी करना चाहता है। इसी कथा को लेकर मालती-माधव प्रकरण की रचना हुई है। मालती-माधव की कथा रोचक है। इसका चरित्र-चित्रण सुन्दर है। इसमें श्मशान तथा वन का वर्णन बड़ा यथार्थ और मनोहर है। महावीरचरित में सात अंकों में रामविवाह, रामवनवास, सीताहरण और रामराज्याभिषेक की कथा कही गयी है। यत्र-तत्र रोचकता और नाटकीयता लाने के लिए कथावस्तु में परिवर्त्तन भी किया गया है। इस ग्रंथ में नाट्यकला का पूर्ण परिपाक नहीं हुआ है। न इसके चरित्रों में उत्तरोत्तर विकास है, न मानव-हृदय का सूक्ष्म निरीक्षण ही। फिर भी वीररस का उसमें पूर्ण परिपाक हुआ है और इस रस का यह एकमात्र नाटक है। अतएव संस्कृत साहित्य में इसका एक अनोखा स्थान है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



भवभूति का सर्वोत्तम नाटक उत्तररामचरित है। इसमें सीता-वनवास, शम्बूकवध के लिए राम का दण्डकारण्य में जाना, उस दण्डकाएय में गंगा और सीता का वार्त्तालाप, जनक और कौशल्या का परस्पर मिलन और संवाद, अश्वमेध के घोड़े को कुश और लव का पकड़ना तथा अश्वरक्षक लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु का लव से वार्त्तालाप, राम का अश्वमेध के घोड़े के लिए जंगल में आना और सीता की प्राप्ति—इन बातों का वर्णन हुआ है। इसका मूलाधार रामायण का उत्तरकाण्ड है; किन्तु उत्तरकाण्ड दुखान्त है पर उत्तररामचरित सुखान्त। कवि ने उत्तरकाण्ड की कथा में नाटकीयता लाने के लिए अपने ग्रन्थ में निम्नलिखित परिवर्त्तन किए हैं—प्रारम्भ में चित्र दर्शन का दृश्य; दण्डकारण्य में छाया सीता की उपस्थिति; वाल्मीकि के आश्रम में जनक, कौशल्या, वशिष्ठ तथा अरुंधती आदि का आगमन; तथा अंतिम अंक में गर्भांक।

उत्तररामचरित में नाटक के प्रायः सभी गुण पाए जाते हैं। इसमें बाह्य-घटनाओं का घात-प्रतिघात विशेष महत्वपूर्ण नहीं। इसमें अंतर्द्वन्द्व की ही प्रधानता है। दाम्पत्य-जीवन और प्रणय का भवभूति ने इस नाटक में जितने कौशल के साथ पवित्रतापूर्ण चित्र खींचा है उतना विश्व के साहित्य में कहीं भी नहीं मिल सकता। भवभूति स्वयं एक उच्चचरित्र के व्यक्ति मालूम होते हैं। उनका आदर्श जीवन ही उनके नाटक के रूप में अंकित-सा हो गया है। भगवान् रामचन्द्र के पावन चरित्र-गायकों में वाल्मीकि, भवभूति और तुलसीदास ये तीनों ही नैतिकता की जीवित मूर्त्ति हैं और यही कारण है कि भारतीय संस्कृति की पूर्ण अभिव्यक्ति इन्हीं के काव्यों में हुई है।

**मुरारि**—मुरारि की एकमात्र कृति उनका अनर्घराघव नामक नाटक है। उसकी प्रस्तावना से यह पता चलता है कि वे मौद्गल्य गोत्र के थे। उनके पिता का नाम वर्द्धमानक और माता का नाम तंतुमती था। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। उनके समय के सम्बन्ध में केवल अनुमान का ही सहारा लेना पड़ता है। वे अनुमानतः ईसा की ९वीं सदी के अंत में या १०वीं सदी के प्रारंभ में रहे होंगे। इन्होंने रामायण को नाटक का रूप दिया है। भवभूति से इन्हें विशेष सहायता मिली है। यह ग्रंथ नाटक नहीं कहा जा सकता। इसका ऊपरी ढाँचा-मात्र नाटक का है। इसके गद्यात्मक संवादों में कोई विशेष रुचिकर बात नहीं। घटनाओं के वर्णन भी लम्बे और नाटकीय गुणों से रहित हैं। इस ग्रंथ का आकार बहुत बड़ा है। इसमें ५०० के करीब पद्य हैं। यह सब देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यदि कवि नाटक न लिखकर काव्य लिखता तो विशेष सफल होता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



मुरारि का यश एक मध्यम कोटि के कवि के रूप में स्मरण किया जायगा। नाटककार के रूप में नहीं। उनके काव्यों में भी कल्पना और व्यंग्य की उतनी प्रधानता नहीं, जितनी कालिदास और भवभूति में है। उसने अपने पद्यों में अलंकारों का समावेश प्रचुर मात्रा में किया है। भाषा पर उसको बहुत-कुछ अधिकार है, पर उसके नाटक में कोई विशेष चमत्कार नहीं है।

**राजशेखर**—राजशेखर भी मुरारि की ही कोटि का नाटककार है। राजशेखर में विशेषता यह है कि वह प्राकृत भाषा का भी पूर्ण पंडित है। उसने प्राकृत भाषा में भी दो-तीन नाटक लिखे हैं जिनमें कर्पूरमंजरी अत्यन्त प्रसिद्ध है और जिसका परिचय प्राकृत-साहित्य के वर्णन में दिया जा चुका है। उसके दो नाटक संस्कृत में लिखे गये हैं—बाल रामायण और बाल भारत। बालभारत के कुछ ही अंक मिलते हैं; किन्तु बालरामायण पूरा-पूरा मिलता है। राजशेखर ने अपने वंश इत्यादि का पूरा-पूरा परिचय दिया है। वह यायावर नामक वंश में उत्पन्न हुआ था, जिसमें सुरानन्द, तरल, कविराजा और अकालजलद इत्यादि प्रसिद्ध कवि हुए थे। अकालजलद उसका अपना पितामह था। उसके पूर्वज महाराष्ट्र में रहते थे किन्तु वह स्वयं कन्नौज में रहता था, क्योंकि वह कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल और उसके पुत्र महीपाल का अध्यापक था। उसकी पत्नी चौहानवंश की क्षत्रिया थी। वह विदुषी थी और उसकी चर्चा कर्पूरमंजरी और काव्यमीमांसा में राजशेखकर ने बड़े गर्व के साथ की है। राजशेखकर स्वयं ब्राह्मण था और इसलिए उसे चौहानवंश की क्षत्रिया से विवाह करने का अधिकार था। उसका समय १०वीं सदी का पूर्वार्द्ध अथवा ९वीं सदी का उत्तरार्द्ध था। उसका बालरामायण रामायण के ऊपर आधारित है। उसने कोई छोटी घटना न लेकर समग्र रामायण की घटना ली। अतएव वह नाटककार के रूप में विशेष सफल न हो सका। उसके बाल-रामायण में ७८० पद्य हैं, यहाँ तक कि उसकी प्रस्तावना में भी २० श्लोक हैं। उसका दूसरा नाटक बालभारत प्रचंडपांडव भी कहलाता है। इसके दो सर्ग प्राप्त हुए हैं जिसमें द्रौपदी-स्वयंवर और द्यूत क्रीड़ा तक की कथा है। राजशेखकर के नाटक बहुत उत्तम तो नहीं हैं; किन्तु उनसे उसकी विद्वत्ता सूचित होती है। यदि वह नाटक न लिखकर स्वतंत्र काव्यों का प्रणयन करता तो एक अच्छे कवि के रूप में प्रसिद्ध होता। इसकी कविताएँ अलकार, रस और भावों से भरी हैं। इसीलिए आलंकारिक लोग उसके पद्य प्रायः उद्धृत करते हैं।

**जयदेव**—जयदेव का प्रसिद्ध नाटक प्रसन्नराघव है। यह ठीक अनर्घ राघव के जैसा है। यह जयदेव गीतकार जयदेव से पृथक् है। आलंकारिक भी है और इसने चन्द्रालोक नामक अलंकार ग्रन्थ की रचना भी की थी। आलंकारिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



सौन्दर्य और पद्यों की स्निग्धता इसके नाटकों में पाई जाती है; किन्तु रामायण की कथा को अभिनयात्मक रूप देने में यह भी सफल नहीं हो सका है। इसने मुरारि के समान राम और सीता के पूर्वराग या पूर्वमिलन के कुछ दृश्य रक्खे हैं जिनको लेकर महाकवि तुलसीदास ने पुष्पवाटिका-मिलन-जैसी सुन्दर कविता की है।

इसका समय १२०० ई० के लगभग है। यह विदर्भ देश के कुण्डली नगर के निवासी था। इसके पिता का नाम महादेव तथा इसकी माता का नाम सुमित्रा था। संस्कृत भाषा पर इसका असामान्य अधिकार था। उसकी शैली प्रसादपूर्ण है। उसकी उपाधि पीयूषवर्ष थी। गोस्वामी तुलसीदास और महाकवि केशवदास इन दोनों ने इसके ग्रन्थों से विशेष प्रेरणा प्राप्त की है और बहुत से पद्यों के भाव ले लिए हैं।

---

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



# अपभ्रंश-साहित्य

'अपभ्रंश' शब्द का अर्थ है विकृत। इससे स्पष्ट है कि अपभ्रंश वह भाषा थी जो किसी भाषा या किन्हीं भाषाओं के विकृत रूप या रूपों से बनी हुई थी। भाषाविज्ञान की दृष्टि से प्रत्येक भाषा अपनी पूर्ववर्ती भाषा का विकृत रूप या अपभ्रंश है; किन्तु अपभ्रंश शब्द का प्रयोग भारतीय साहित्य में एक भाषा या भाषा-समुदाय विशेष के लिए होता है। ये भाषायें प्राकृतों के बोल-चाल के रूपों से विकसित हुई थीं। ये भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में सम्भवतः ५वीं सदी से ११वीं सदी तक बोली जाती थीं; किन्तु उनमें साहित्य-रचना उसके बहुत पीछे अर्थात् १२वीं सदी तक होती रही थी। लोकभाषा होने के कारण इन्हें साहित्य-रचना के लिए बड़े-बड़े प्रतिभाशाली पुरुषों ने तो नहीं अपनाया किन्तु जनसाधारण का साहित्य इन्हीं में रचा गया। जनसाहित्य होने के कारण इनमें वह क्षमता उत्पन्न हुई कि उनके कवि सरस, सरल, स्पष्ट और प्रभावशाली शब्दों में हृदयस्पर्शी साहित्य की सृष्टि कर सके।

इस का भाषा साहित्य भी खूब समृद्ध था। खेद की बात है कि इसके साहित्य की समृद्धि का पता लोगों को हाल तक भी न था। लगभग ५० वर्ष पूर्व लोग इसके साहित्य से प्रायः अपरिचित से थे। अपभ्रंश ग्रंथों के सम्बन्ध में उनकी जानकारी बहुत सीमित थी। वे केवल विक्रमोर्वशीय के अपभ्रंश अंश, प्राकृत पैंगलम, सिद्ध हैम व्याकरण का अपभ्रश अंश, कुमार पाल चरित, कालिकाचार्य कहा, द्वारावती विध्वंश, सरस्वतीकण्ठाभरण, वेताल पंचविंशति सिंहासन द्वात्रिंशिका तथा प्रबन्ध चिन्तामणि से हीपरिचित थे। किन्तु आज अपभ्रंश-साहित्य की श्री का बहुत कुछ पता चल गया है।

अपभ्रंश भाषा के साहित्य की खोज का प्रारम्भ हर्मन याकोबी नामक जर्मन विद्वान ने किया। उसे एक जैन भाण्डार में 'भविसयत्त कहा' मिली। यह बात १९१३-१४ की है। इन्हें 'नेमिनाह चरिउ' नामक दूसरा अपभ्रंश ग्रंथ भी उसी समय प्राप्त हुआ। इन ग्रंथों का प्रकाशन सन् १९१८ के आस पास हुआ। बड़ौदा-नरेश की आज्ञा से श्री दलाल ने सन्देश-रासक, वज्रस्वामि-चरित्र, अन्त रंग सन्धि, चौरंग सन्धि, सुलसाख्यान, चर्चरी, भावनासार, परमात्म-प्रकाश, आराधना, मयलरेहा सन्धि, पउमचरिउ आदि का पता चलाया। इसके पीछे भिन्न-भिन्न संस्थाओं या पुरुषों तथा खोज से पुष्पदन्त कृत तिसट्ठि लक्खण महापुराण, स्वयंभूकृत पउम चरिउ, हरिवंश पुराण, जसहरचरित्र, णायकुमार चरिउ, करण्डचरिउ, सावयधम्म दोहा, पाहुड दोहा, आदि कई ग्रंथों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



का पता चला। राहुल जी ने अपनी हिन्दी काव्यधारा में बहुत से अपभ्रंश कवियों की रचनायें प्रकाशित कीं। इस प्रकार इस बीसवीं सदी के मध्यकाल तक बहुत से अपभ्रंश भाषा के ग्रंथों का पता लग चुका है। कुछ प्राप्त भी हो चुके हैं और प्रकाशित भी। ये सब ग्रंथ प्रायः धार्मिक हैं और इनका पता जैनभाण्डारों से ही प्रायः चला है। इनके अतिरिक्त संजममंजरी भविकुटुम्ब चरिउ, संदेशरासक, भवनसंधि आदि ग्रंथों का भी पता चल चुका है। इन ग्रंथों की सारी रचना अपभ्रंश में ही है कुछ ऐसे ग्रंथ हैं जिनमें अपभ्रंश रचनायें आंशिक रूप में ही हैं और ये ग्रन्थ हैं—कुमारपालप्रतिबोध, सुपासनाहचरिउ, बौद्धगानओदोहा, प्रबन्धचिन्तामणि, शार्ङ्गधरपद्धति, कीर्तिलता इत्यादि। विक्रमोर्वशीय में कुछ अपभ्रंश के पद्य प्राप्त होते हैं। जब राजा पुरुरवा गंधमादन वन में अपनी प्रियतमा उर्वशी को जो कुमार के शाप से लता के रूप में परिणत हो गई थी—नहीं देखता तो पागलों-सा प्रलाप करने लगता है। उस प्रलाप के पद्यों में ही ये अपभ्रंश के पद्य मिलते हैं। कालिदास का समय यथार्थ में ५७ वर्ष ई०पू० है। ऐसी परिस्थिति में ये पद्य उस रूपक में पीछे से रक्खे गये होंगे। फिर भी ये बहुत पुराने हैं। इनका रचयिता कोई महान् कवि अवश्य होगा। इनमें जो स्वाद है वह अपूर्व है और उस कवि की प्रतिभा का उत्कर्ष सूचित करता है उनसे एक ही छोटा-सा उदाहरण उनके काव्य सौन्दर्य का अनुभव कराने के लिए पर्याप्त सिद्ध होगा।

परहुअ महुर पलाविणी कन्ति।
नन्दण वण सच्छन्द भमन्ति॥
जइ पइं पिअअम सा महु दिट्ठी।
ता आआक्खहि महु परपुट्ठी॥

अर्थात् अरी दूसरों से पाली जानेवाली कोयल! मेरी मधुरभाषिणी प्रियतमा कान्ता को यदि नन्दन वन में स्वच्छन्द घूमती हुई तू ने देखा हो तो मुझे बता। ये पद्य सम्भवतः पाँचवीं सदी के होंगे। भविसयत्तकहा या भविष्यदत्त कथा एक पद्यात्मक कहानी है। यह एक प्रेमाख्यानक काव्य है। इसका रचयिता धणवाल या धनपाल नामक दिगम्बर जैन गृहस्थ है। वह धरकट वैश्य था। उसका समय ठीक-ठीक नहीं बतलाया जा सकता। उसकी माता का नाम धनश्री और पिता का नाम माहेश्वर था। वह अपने को सरस्वती का पुत्र बतलाता है और सरस्वती से अनेक वरदान पाने का उल्लेख करता है। वह नवीं या दशवीं सदी में रहा होगा। पञ्चमी व्रत की पूर्ति से क्या लाभ होता है यही दिखलाने के लिए यह काव्य लिखा गया है।

इसकी कहानी सीधी सादी है। भविष्यदत्त अपने सौतेले भाई के साथ जहाज पर चढ़कर व्यापार करने चलता है। उसका सौतेला भाई धोखे में डालकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



उसे एकान्त द्वीप में छोड़ देता है। वहाँ उसे सौभाग्य से एक नवयौवना राजकन्या मिल जाती है। वहीं पर वह सुखपूर्वक बारह वर्ष बिता देता है। एक दिन उसका सौतेला भाई बारह वर्ष तक व्यापार कर अपने जहाज पर उस द्वीप के पास आता है और उसकी पत्नी को लेकर चल देता है। भविष्यदत्त एक यक्ष की सहायता से एक देव-विमान पर अपने घर आता है और अपनी सती पत्नी से मिलता है। धनपाल की वर्णन-शक्ति अपूर्व है। उसकी भाषा अलंकृत एवं काव्योपयुक्त है। उसकी उपमायें और उत्प्रेक्षायें नवीन तथा वैचित्र्यपूर्ण हैं। वह एक उत्कृष्ट कवि है। धार्मिक होते हुए भी शृङ्गार में उसकी रुचि विशेष है। ८४ बौद्ध सिद्धों में सरह और कण्ह भी अच्छे कवि थे। इनका समय भी ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता। ये ७०० ई० से १२०० ई० के बीच में कभी रहे होंगे। इनके पद्य सीधे-सादे पर चुभनेवाले हैं। वे धार्मिक प्रचारक अधिक हैं कवि कम। सरह तो कुछ-कुछ कबीर के समान अन्य धर्मवालों की कटु आलोचना करता हुआ मिलता है।

१०वीं से १२वीं सदी के बीच में ही श्रीचन्द्र नामक एक कवि ने ५३ अध्यायों में कथा—कोश की रचना की। जिनेश्वर नामक एक दूसरे कवि ने १०६२ ई० में कथानककोश की रचना की। चौदहवीं सदी में जिनपद्म ने षड्भाषा विभूषित शान्तिनाथ-स्तवन की रचना की। इसमें संस्कृत, महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी, पैशाची तथा अपभ्रंश इन छहों भाषाओं में स्तुतियाँ हैं। ११वीं सदी में हेमचन्द्र के समकालीन जिनवल्लभ सूरि के शिष्य जिनदत्त सूरि ने उपदेश रसायण रास, कालस्वरूपकुलकम् तथा चर्चरी की रचना की। सोमप्रभ सूरि ने इसी सदी में अपनी कुमारपाल प्रतिबोध लिखा। हेमचन्द्र के समय में ही हेमहंससूरि के शिष्य महेश्वर सूरि ने संजम मंजरी की रचना की। इसमें संयम की प्रशंसा में ३५ दोहे कहे गये हैं। सुप्रभाचार्य ने ७७ दोहों में वैराग्यसार नामक ग्रन्थ की रचना की।

स्वयं हेमचन्द्र ने कुमारपाल चरित नामक काव्य संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश नामक भाषाओं में लिखा। अपभ्रंश भाषा का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ प्राकृत-पैंगलम् है। यह ग्रन्थ १४वीं या १५वीं सदी में लिखा गया होगा; क्योंकि इसमें हम्मीर का वर्णन मिलता है। यह ग्रन्थ एक संग्रह ग्रन्थ जैसा है। इसमें बड़े ही मधुर-मधुर पद्य हैं।

उदाहरणार्थ :—

णच्चइ चंचल बिज्जुलिआ सहि जाणए।
मम्मह खग्ग किणीसइ जलहर साणए॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2



फुल्ल कअंबअ अंबर डंबर दीसए।
पाउस पाउ घणाघण सुमुहि बरीसए॥
णव मंजरि लिज्जिअ चूअह गाछे।
परिफुल्लअ केसु णआ वण आछे॥
जइ एत्थि दिगन्तर जाइहि कन्ता।
कि अ बम्मह णत्थि कि णत्थि बसन्ता॥
वहइ दक्खिन मारुअ सीअला।
रावइ पंचम कोमल कोइला॥
महुअरा महुपाण बहुस्सरा।
भमइ सुन्दरि! माहवसंभवा॥

अर्थात् "हे सखी! चंचल बिजली नाच रही है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे कामदेव मेघरूपी शाण पर अपनी तलवार पजा रहा है। कदंब फूला, आकाश में आडम्बर दिखाई पड़ा, पावस ऋतु आ गई और घने घन बरसने लगे।

आम्रवृक्ष ने नव मंजरी ली। नूतन किंशुकों के वन सम्यक् रूप से प्रफुल्लित हुए। इस वसन्तकाल में भी क्या मेरे कान्त देशान्तर जायँगे? क्या उनके लिए काम या वसन्त नहीं हैं?

हे सुन्दरि! माधव-संभव दक्षिण वायु वह रही है। कोयल कोमल पंचम स्वर से गा रही है। मधुपान करने से गम्भीर स्वरवाले भ्रमर भ्रमण कर रहे हैं।" प्राकृत-पैंगलम् की भाषा पुरानी हिन्दी का निकटतम रूप है। अतः इसे हम आसानी से समझ भी लेते हैं। हिन्दी का विकास समझने में इससे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

अपभ्रंश-भाषा के गद्य-स्वरूप का पता उज्जोयण या उद्योतन सूरि की कुवलयमाला कथा से चल जाता है। कहानी की भाषा कलात्मक होने पर भी सरल और सुन्दर है। इनका समय ७०० ई० के आस-पास है।*

॥ समाप्त ॥

* इस साहित्य की विशेष जानकारी के लिये मेरा अपभ्रंश-दर्पण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

iGuru ... Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon